परमपूज्य जगद्गुरु

श्री अभिनव विद्यातीर्थ महास्वामी जी की

शिक्षाप्रद नीतिकथाएँ

परमपूज्य जगद्गुरु श्री अभिनव विद्यातीर्थ महास्वामी जी

परमपूज्य जगद्गुरु
श्री अभिनव विद्यातीर्थ महास्वामी जी की

शिक्षाप्रद नीतिकथाएँ

अनुवादक — श्री दिव्यसानु पाण्डेय

Centre for Brahmavidya
Chennai 600032

Book Title:

Paramapujya Jagadguru
Sri Abhinava Vidyatheertha Mahaswami ji ki

Shikshaprad Neetikathaen

Translator:
Sri Divyasanu Pandey

Published by:
Centre for Brahmavidya
SVK Towers, 8th Floor, A25, Industrial Estate, Guindy
Chennai 600032
Email: contact@centreforbrahmavidya.org
Website: www.centreforbrahmavidya.org

ISBN: 978-81-957509-5-5

© **Centre for Brahmavidya**
All rights reserved

Digital Edition: 2022
(For free distribution only)

समर्पण

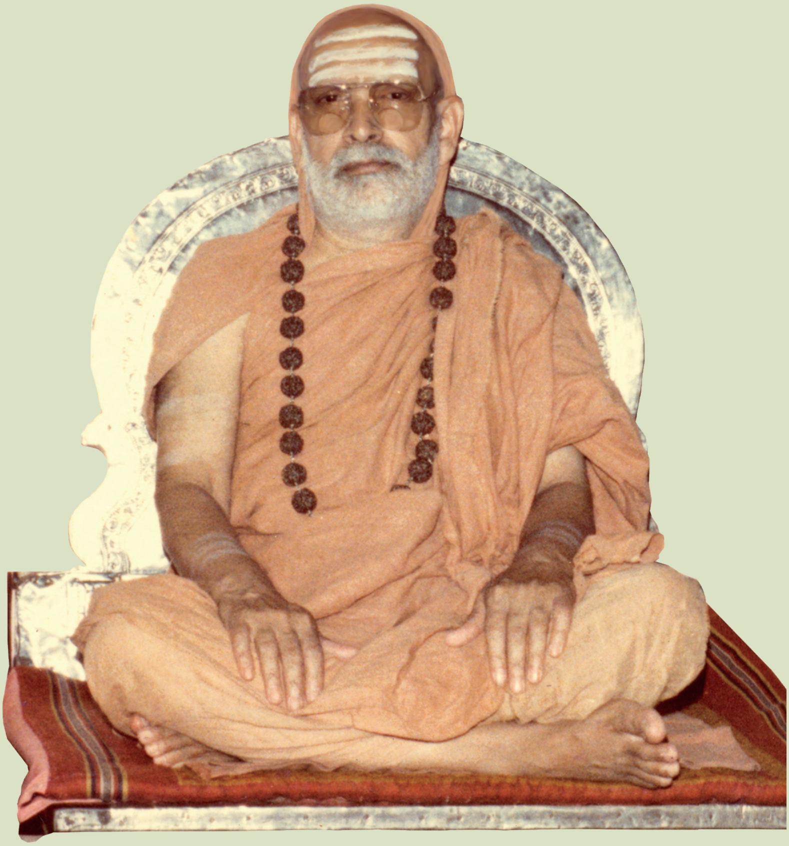

परमपूज्य जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्री अभिनव विद्यातीर्थ महास्वामी जी

भवत्सत्कथानां स्रजं सप्रणामम्।
इमामर्पयामो भवत्पादयुग्मे ॥

आपकी श्रेष्ठ कथाओं के इस पुष्पहार को आपके चरण-कमलों में
हम प्रणामपूर्वक समर्पित करते हैं।

जगद्गुरुओं को प्रणाम

श्री शृङ्गेरी शारदा पीठ के 36वें शङ्कराचार्य एवं वर्तमान पीठाधीश्वर
परमपूज्य जगद्गुरु श्री भारती तीर्थ महास्वामी जी को प्रणाम करते हुए
उनके करकमल-सञ्जात परमपूज्य जगद्गुरु श्री विधुशेखर भारती स्वामी जी

प्राक्कथन

परमपूज्य जगद्गुरु श्री अभिनव विद्यातीर्थ महास्वामी जी परमशिवावतार जगद्गुरु श्री आद्य शङ्कराचार्य जी द्वारा स्थापित दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी श्री शारदा पीठ पर 35वें पीठाधीश्वर के रूप में विराजमान थे। उनका उल्लेख इस ग्रन्थ में पूज्य भाव से 'गुरुजी' शब्द से किया गया है। बचपन से ही गुरुजी में सदाचार, धैर्य, सर्वप्राणिदया, ईश्वर पर श्रद्धा इत्यादि दैवी-सम्पत् देखने को मिलते थे। शृङ्गेरी श्री शारदा पीठ के तत्कालीन पीठाधीश्वर परमपूज्य जगद्गुरु श्री चन्द्रशेखर भारती महास्वामी जी के शिष्य बनकर, उनके प्रत्यक्ष मार्गदर्शन से, गुरुजी ने अपनी आध्यात्मिक साधनाओं को प्रारम्भ किया और अपनी 14 वर्ष की अवस्था से पहले ही, 1931 मई 22 को उनसे संन्यास दीक्षा प्राप्त की। भगवान शङ्कर एवं जगन्माता श्री शारदाम्बा के असाधारण दिव्य-दर्शन तथा उनसे योगाभ्यास के विशेष मार्गदर्शन गुरुजी को प्राप्त हुए। आध्यात्मिक साधनाओं के प्रत्येक प्रकार को सम्पूर्ण सिद्ध करते हुए, 18 वर्ष की आयु पूरी करने पर कुछ ही दिनों में उन्होंने योग की पराकाष्ठा निर्विकल्प-समाधि, परब्रह्म-साक्षात्कार और जीवन्मुक्ति (जीवित रहते हुए संसार बन्धन से मुक्ति) को प्राप्त कर लिया।

ब्रह्मनिष्ठ और तर्क, वेदान्त इत्यादि शास्त्रों में पारङ्गत गुरुजी, अत्यन्त सूक्ष्मदर्शी, प्रत्युत्पन्नमति (अति शीघ्र सोचने और समझने की शक्ति वाले), जन-मनोभाव की गहराई से अभिज्ञ, अहैतुक-करुणाशाली, सर्वप्राणि-हितकर्ता, अति सरल, अनेक भाषाओं में चतुर और प्रखर वाक्पटु थे — और इसलिए, इस कथन में आश्चर्य या अतिशयोक्ति सर्वथा नहीं है कि वे एक सद्गुरु के रूप में उपदेश देनेवालों में अग्रगण्य थे। चाहे मन्द-बुद्धियों को या बुद्धिमानों को, छोटे बच्चों को या बड़ों को, व्यक्तिगत रूप से या सार्वजनिक रूप से, उदात्त तत्त्व को या लौकिक जीवन से जुड़े परामर्शों को — गुरुजी बहुत सरलता से अवगत कराते थे; और ये सारी बातें उन्हीं श्रोताओं के स्वयं के अनुभवों द्वारा निस्सन्देह

विदित हैं। शृङ्गेरी श्री शारदा पीठ पर 35 वर्षों तक विराजमान गुरुजी की कृपा से उन्नीत लोग अनगिनत हैं।

विशेषकर, तत्क्षण स्वयं-प्रणीत कहानियों और वेदों, रामायण, महाभारत, पुराणों इत्यादि पर आधारित कथाओं के माध्यम से, शास्त्र के बहुत क्लिष्ट तत्त्वों को भी, सामान्य लोगों के द्वारा भी, आसानी से और समग्र रूप से, समझाए जाने योग्य ढंग से प्रस्तुत करने की स्वाभाविक क्षमता गुरुजी में थी। केवल उनके सार्वजनिक व्याख्यानों से ही नहीं, अपितु गुरुजी और उनके एक निकट शिष्य — इस हिन्दी अनुवाद के मूल अंग्रेज़ी ग्रन्थ, Edifying Parables के सङ्कलनकर्ता — के बीच निजी वार्तालाप से भी उद्धृत, 100 से अधिक शिक्षाप्रद नीतिकथाएँ, 98 शीर्षों में सम्मिलित करके, पहले ही उस अंग्रेज़ी पुस्तक में प्रकाशित हो चुकी हैं। उनका हिन्दी अनुवाद अब प्रस्तुत किया गया है।

Edifying Parables पुस्तक के प्रणयन में, उसके लेखक ने निम्नोक्त कुछ छोटी स्वतन्त्रताएँ ली हैं —

1. गुरुजी द्वारा एक से अधिक अनुग्रह व्याख्यानों में चित्रित नीतिकथाएँ, एक ही शीर्षक में सन्निहित की गईं हैं।

2. कभी-कभी कहानी के पात्रों को नाम दिए गए हैं, भले ही गुरुजी ने उन शिष्य से बातचीत करते समय, कहानी में पात्रों के नाम का उल्लेख न किया हो।

3. यदि गुरुजी ने एक ही कहानी के कई रूपान्तर सुनाए हैं, तो उन सभी की जानकारियों का उपयोग किया गया है।

इसके अतिरिक्त, इस पुस्तक के “विस्मयकारी अभिलक्षण” नामक पहले भाग में, जहाँ कहीं भी लेखक ने स्वयं को “मैं”, “मुझे”, “मेरे” इत्यादि शब्दों से निर्दिष्ट किया है, वे सारे इस ग्रन्थ के अंग्रेज़ी मूल Edifying Parables के सङ्कलनकर्ता पर ही लागू होते हैं।

श्री दिव्यसानु पाण्डेय जी ने महान परिश्रम उठाकर अपने शुद्ध समर्पण भाव से, इस हिन्दी भाषानुवाद यज्ञ को सम्पन्न किया है। सरल हृदय वाले तथा सुशिक्षित श्री पाण्डेय जी के प्रति हमारी भूरि-भूरि कृतज्ञता समर्पित है।

हिन्दी मार्तण्ड श्री के० वी० श्रीनिवास मूर्ति जी, जो सात्त्विक प्रकृति के और स्वाभाविक धर्मश्रद्धालु हैं, उनका योगदान इस पुस्तक के संस्करण कार्य में बहुत मूल्यवान रहा है। इसी दिशा में, श्री दुर्गाप्रसाद पण्डा, श्री अभिनन्द और डॉ० मञ्जुनाथ सुब्बण्ण ने अपने सार्थक पात्रों को बड़े उत्साह के साथ और स्वेच्छापूर्वक निभाया है। हम इन सारे गुरुभक्तों के प्रति उनके सुझावों के लिए हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं।

गुरुजी के श्रद्धालु शिष्य दम्पती, श्री एस० सुब्रमणियम् और श्रीमती इन्दिरा सुब्रमणियम् को हमारा धन्यवाद, जिन्होंने इस पुस्तक के प्रकाशन को उदारतापूर्वक प्रायोजित किया है।

परमपूज्य जगद्गुरु श्री भारती तीर्थ महास्वामी जी और तत्करकमल-सञ्जात परमपूज्य जगद्गुरु श्री विधुशेखर भारती स्वामी जी के आशीर्वाद से, इस

“परमपूज्य जगद्गुरु श्री अभिनव विद्यातीर्थ महास्वामी जी की

शिक्षाप्रद नीतिकथाएँ”

पुस्तक को प्रकाशित करने में हमें बहुत प्रसन्नता हो रही है। हम इस ज्ञानयज्ञ को गुरुजी के चरणकमलों में प्रणामपूर्वक समर्पित करते हैं।

विद्याशङ्कर कृष्णन्   के० सुरेश चन्दर

डॉ० एच्० एन्० शङ्कर   डॉ० मीनाक्षी लक्ष्मणन्

न्यासिगण, **सेंटर फ़ॉर ब्रह्मविद्या**

विषयसूची

प्राक्कथन iii

विस्मयकारी अभिलक्षण 1

परहितकारी 3

उत्सुक पर्यवेक्षक एवं प्रकृति-प्रेमी 5

जो चमत्कारी प्रतीत हो सकता है, उसके मर्म का प्रभेद 7

असाधारण अन्तर्दृष्टि और आशीर्वाद 10

एकाग्रता और सतर्कता 12

आदर्श शिष्य बने सिद्ध गुरु 14

तृष्णा, क्रोध और आतुरता से सावधान रहें 21

1. तृष्णा का जाल 22
2. इन्द्रिय-विषयों के प्रति आसक्ति से सङ्कट 26
3. कामवासना विनाशकारी है 27
4. लालसा का छलपूर्ण आक्रमण 28
5. क्रोध की हानिकारिता 34
6. सोच समझकर कदम उठाओ 40
7. सुधरने के लिए कभी देर नहीं होती 46

धर्म का मार्ग 55

8. धर्म का निर्णय वेद करते हैं 56
9. परम्परागत प्रथा का ज्ञान 57
10. सत्यकथन पर आलोक 58

11. सत्य और मौन 60
12. सत्यशीलता के सूक्ष्म पहलू 61
13. वेदोच्चारण त्रुटिहीन होना चाहिए 66
14. वैदिक मन्त्रों की शक्ति 67
15. माता-पिता और सन्तान 68
16. कृतज्ञता 70
17. दूसरों का भला करना 75
18. दूसरों की पीड़ा से प्रसन्नता का अनुभव 77
19. महान लोगों की प्रकृति 78
20. धार्मिक आचरण और दूसरों का उपकार करना 78
21. दानपुण्य के लाभ 79
22. उपहारों के हास्यास्पद प्रस्ताव 81
23. क्षमता के अनुरूप दान 82
24. आतिथ्य — तब और अब 83
25. नियम और अपवाद 84
26. भगवान राम और धर्म की गहराई 93
27. धर्मान्तरण — एक विसङ्गति 103

ईश्वर, सभी की शरण 105

28. अदृश्य होते हुए भी ईश्वर का अस्तित्व है 106
29. एक व्याकुलता में नास्तिक 106
30. भगवान सर्वोत्कृष्ट जादूगर 107
31. ईश्वर की दोषहीन रीतियाँ 108
32. भगवान उचित समय पर दण्ड देते हैं 110
33. भगवान का दयापूर्ण न्याय 111

34. भगवान के कारण सफलता और महिमा 114
35. हृदयनिवासी 116
36. जीव है प्रतिबिम्ब और ईश्वर हैं मूलरूप 117
37. भक्तिमार्ग पर कोई भी चल सकता है 118
38. ईश्वर किसी पर भी कृपा करते हैं जो उनके बारे में सोचता है 122
39. भगवान हमें स्वीकार करेंगे 126
40. भगवान अपने सच्चे भक्त को कभी भी नहीं छोड़ते 127
41. भक्ति के चरण 128
42. देवी माता बिना विलम्ब किए अनुग्रह करती हैं 129
43. सर्वव्यापी भगवान की लीला 129
44. भगवान के रूप 131
45. भक्त की भेंट 132
46. मूर्ति पूजा पर आलोक 133
47. अनेक लोगों का संयुक्त प्रभाव 136
48. गोपुरम नम्रता को प्रेरित करते हैं 138
49. शिवरात्रि का महत्त्व 139
50. किस देवता की प्रार्थना करें 140
51. महान भक्त का लक्षण 141
52. एकाग्रता 142

भाग्य और मानव प्रयत्न की परिधि 145

53. भाग्य और स्वतन्त्र इच्छा 146
54. भाग्य को टालने का एक अनुचित प्रयास 158
55. प्रतिकूल भाग्य से निपटने का मार्ग 159

चित्तशुद्धि और वैराग्य की ओर 161

56. चित्तशुद्धि आवश्यक है 162
57. महापावनी गङ्गा 163
58. मन पर आहार का प्रभाव 164
59. प्राण बचाने को छोड़ कर, अशुद्ध आहार से बचना चाहिए 166
60. गृहस्थ का आचरण कैसा होना चाहिए 168
61. आचरण और मानसिक प्रतिक्रियाओं में एकरूपता 170
62. कर्म-योग 172
63. सर्वोच्च के ज्ञान हेतु योग्यता 176
64. तृप्ति 178
65. ईर्ष्या का उदय तथा ह्रास 179
66. मूल्यवान वस्तु के स्वामित्व के कारण समस्या 180
67. धन-सम्पत्ति से मिलती हैं सुविधाएँ, आनन्द नहीं 181
68. जीवन क्षणभङ्गुर है 184
69. ममत्व शान्ति का विध्वंसक है 187
70. आनन्द का स्रोत 190

गुरु, प्रत्यक्ष परमेश्वर 193

71. भँवरों में फँसना 194
72. द्वार में आए अवसर को अनदेखा करना 195
73. गुरु की आवश्यकता 196
74. गुरु के लिए कोई दृष्टान्त नहीं 197
75. सद्गुरु सभी पर निर्दोष रूप से कृपा करते हैं 198
76. जहाँ निन्दा एक आशीर्वाद है 202

77. प्रचुर गुरुसेवा को सद्गुरु पुरस्कृत करते हैं 211
78. ईश्वर और देवगण सच्चे गुरुभक्त का पक्ष लेते हैं 214
79. मौन द्वारा शिक्षण 220
80. ब्रह्मा जी का परामर्श — "द, द, द" 222
81. विनम्रता की अनिवार्यता 222
82. आत्म-नियन्त्रण और गुरूपदेश का फलीभूत होना 224
83. अपर्याप्त आस्था का मूल्य 227
84. शिष्यों की कुछ त्रुटियाँ 229
85. जिन शिक्षकों से बचना चाहिए 231
86. छद्म-अद्वैतियों का पाखण्ड 237

परब्रह्म का साक्षात्कार 241

87. विघटन किए बिना अन्वेषण 242
88. सतही ज्ञान 242
89. सन्निकट वस्तु की उपेक्षा करना 243
90. उपनिषद् ज्ञान के निर्दोष साधन हैं 244
91. अवास्तविक वास्तविक को इङ्गित कर सकता है 245
92. पहचान का अभिज्ञान 246
93. बन्धन और मुक्ति का कारण — मन 247
94. सर्वस्व का परित्याग 252
95. जगत् का भ्रमात्मकत्व 256
96. मिथ्यात्व का अपरिज्ञान 262
97. एकत्व की दृष्टि 263
98. शुक जी के जीवन से शिक्षा 267

विस्मयकारी अभिलक्षण

परहितकारी

आँधी से उखड़ा हुआ एक वृक्ष सड़क पर गिर गया। उसके कारण, उस मार्ग पर चलने वाली सभी गाड़ियों को अड़चन से पार पाने हेतु, गति को कम करते हुए रेंगकर सड़क के किनारे तक धीरे-धीरे चलने के लिए बाध्य होना पड़ा। जिस कार में गुरुजी (परमपूज्य जगद्गुरु श्री अभिनव विद्यातीर्थ महास्वामी जी) यात्रा कर रहे थे, वह उस समय वृक्ष को पार कर चुकी थी जब उन्होंने उस कार के चालक को कार रोकने के लिए कहा। गुरुजी ने आदेश दिया, “यदि हम आगे बढ़ते हैं, जैसे हमसे पहले कई अन्य लोगों ने किया है, तो वाहन चालकों को इस स्थान पर असुविधा उठानी पड़ती रहेगी। इसलिए, हमें वृक्ष को सड़क के किनारे पर हटा देना चाहिए।” उनके निर्देश के अनुसार, मठ के कर्मचारियों ने स्वयं को वृक्ष के स्थानान्तरित करने के काम में लगाया। यद्यपि गुरुजी उस समय वृद्ध व अस्वस्थ थे, तथापि वे मूकदर्शक नहीं बने रहे। उन्होंने सुझाव दिया और अपने शारीरिक परिश्रम से भी योगदान दिया। कुछ ही समय में सड़क अड़चन से मुक्त हो गई। अच्छे काम को पूरा करने के बाद, गुरुजी ने अपनी यात्रा पुनः प्रारम्भ की।

1960 में आंध्र-प्रदेश की अपनी पहली यात्रा के समय, एक बार गुरुजी ने लगभग एक घंटे की यात्रा की थी जब उन्होंने दूर से देखा कि सड़क पर एक गाड़ी आंशिक रूप से पलटी हुई पड़ी है। कुछ वाहन चालक बिना रुके आगे बढ़ गए। गुरुजी ने अपनी कार को दुर्घटनास्थल के पास रुकवा लिया और तुरन्त बुरी तरह से क्षतिग्रस्त उस वाहन के पास गए। उन्होंने देखा कि एक गतिहीन एवं रक्त से लथपथ व्यक्ति उसके भीतर फँसा हुआ है। एक क्षण में उन्हें पता चला कि यह दुर्घटना केवल कुछ मिनट पहले ही हुई है और वह व्यक्ति केवल अचेत है, मरा नहीं। उन्होंने मठ के एक विश्वसनीय कर्मचारी को एक एम्बुलेंस की व्यवस्था करने के लिए मठ की एक गाड़ी में तेज़ी से चलने का निर्देश दिया।

यह निर्धारित करके कि उस कार को सीधा खड़ा करने के बाद ही उस दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति को बाहर निकाला जा सकता है, गुरुजी ने अपने परिजनों के साथ आवश्यक सहायतार्थ कठिन परिश्रम किया। वे तब अपने

40वें वर्ष में थे और अच्छी तरह से व्यायाम से पुष्ट माँसपेशियाँ कड़ी और शक्तिशाली थीं। फ़िर भी, चूँकि वाहन भारी था, उसे अन्ततः अपने पहियों पर खड़े करने से पहले बहुत प्रयास करना पड़ा। गुरुजी ने तब चोटिल व्यक्ति की सावधानी से जाँच की और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि एम्बुलेंस के आने की प्रतीक्षा किए बिना, उस घायल व्यक्ति को निकालना सुरक्षित होगा। एक कामचलाऊ स्ट्रेचर का उपयोग करते हुए, गुरुजी ने नरमी से उसे मठ के एक बड़े वाहन में स्थानान्तरित कर दिया और चालक को उस दिशा में अबाध गति से आगे बढ़ने का आदेश दिया, जिस दिशा से एम्बुलेंस के आने की आशा थी। उनके कार्यों ने यह सुनिश्चित किया कि दुर्घटना से घायल व्यक्ति को शीघ्रातिशीघ्र चिकित्सा की सहायता मिले। गुरुजी के समय पर किए गए उपकार के कारण, गम्भीर रूप से चोटिल व्यक्ति बच गया और उबर गया।

1970 के दशक की प्रारम्भ में कोयम्बत्तूर की यात्रा के समय, गुरुजी से अनुरोध किया गया था कि वे एक स्थल पर अनुग्रह-भाषण दें। उन्होंने अपनी स्वीकृति दे दी। उस स्थान पर उन्होंने देख पाया कि अस्थायी रूप से उनके भाषण के लिए लगाए हुए ध्वनिवर्धक ने उनके शब्दों को बहुत सुन्दर ढंग से पुनःप्रस्तुत किया। सदैव आसानी से प्रसन्न हो जाने वाले गुरुजी ने, आयोजकों के प्रयासों की सार्वजनिक रूप से सराहना की। अपने आसन पर बैठे-बैठे उन्होंने देखा कि लाउड-स्पीकर न केवल हॉल के भीतर, पर सड़क के किनारे पर भी, लगाए गए थे। उनकी तीक्ष्ण पर्यवेक्षण शक्ति से उन्हें ऐसा लगा कि बिना किसी कठिनाई के, कार्यक्रम स्थल के बाहर लगे ध्वनिवर्धकों को डिस्कनेक्ट करना सम्भव है।

उन्होंने कहा, "कृपया सड़क पर लगे ध्वनिवर्धकों को डिस्कनेक्ट करें। यह पर्याप्त है, और वास्तव में उचित भी, कि मेरा भाषण केवल यहाँ सुना जाए और बाहर नहीं। ऐसा इसलिए है क्योंकि रुचि रखने वाले लोग, पहले से ही अन्दर बैठे हैं। यह ठीक नहीं है कि सड़क पर चल रहे लोग, जिनकी इस व्याख्यान को सुनने में रुचि नहीं है, उन्हें इस भाषण को सुनने के लिए बाध्य किया जाए। प्रायः विवाह के समय, लाउड-स्पीकर इस तरह

से चलते हैं कि सड़क पर स्थित लोगों के कानों में सङ्गीत शोर मचाता है। उन्हें लगता है, 'यह समारोह कितना पीड़ाकर है!' सबकी शुभकामनाएँ प्राप्त करने के बदले, वर और वधू अनावश्यक रूप से कुछ ऐसे लोगों के वैमनस्य के पात्र बनते हैं जिन्हें वे जानते भी नहीं। समारोह, चाहे वे विवाहों के हों या इस तरह के आयोजनों के, ध्वनि प्रदूषण के कारण नहीं होने चाहिए।"

गुरुजी द्वारा दिए प्रस्ताव को आयोजकों ने सहज ही कार्यान्वित कर लिया; वैसे तो गुरुजी ने पहले ही समझ लिया था कि बाहरी ध्वनिवर्धकों को सरलता से अलग किया जा सकता है। जनता के प्रति गुरुजी के विचार और ध्वनि प्रदूषण — जो एक ऐसी समस्या, जिसे अब के विपरीत, 1970 के दशक के आरम्भ में भारत में अधिकतर अनदेखा किया गया था — उससे बचने की उनकी तत्परता उल्लेखनीय हैं।

उत्सुक पर्यवेक्षक एवं प्रकृति-प्रेमी

न केवल मनोज्ञ दृश्य, वृक्ष, फूल और फ़सल, अपितु पशु, पक्षी, मछलियाँ और यहाँ तक कि कीड़े-मकोड़े में भी गुरुजी की रुचि थी। एक दिन, जब वे 16 वर्ष के होने वाले थे, उन्होंने चलते समय एक ततैया को देखा। वह अपने बनाए छेद के मुँह में, एक गतिहीन टिड्डा ले आ रहा था। गुरुजी की अवलोकन की गहरी शक्ति और कीटों के विषय में ज्ञान के कारण, उन्हें पता चला कि टिड्डा मरा नहीं था; उसे ततैये के डंक से लकवा मार गया था। ततैया छेद में घुसा, उभरा और फ़िर उसने टिड्डे को अन्दर खींच लिया। तत्पश्चात्, उसने वह छेद बन्द कर दिया और चला गया। गुरुजी ने सुना था कि ततैया अंडे देती है और अंडे से निकलने वाले लार्वा के पोषण के लिए, भोजन के रूप में टिड्डा देती है।

वे छेद के भीतर के घटनाक्रम को देखना चाहते थे, परन्तु आंशिक रूप से इसे उजागर नहीं करना चाहते थे। हालाँकि, प्रकृति ने उनका साथ दिया।

अगली बार जब वे उस स्थान पर आए, तो उन्होंने पाया कि अज्ञात कारणों से, छेद की मिट्टी के आवरण में एक छोटा सा छेद हो गया था। वे अपना मुख उसके पास लाए और उन्होंने अन्दर झाँका। उन्होंने देखा कि लार्वा एक वयस्क ततैया से अलग दिखता है। गुरुजी ने लार्वा और टिड्डे की अधिक विस्तार से जाँच करने का निर्णय लिया। इस उद्देश्य के लिए, उन्हें एक लेंस की आवश्यकता थी, परन्तु वे उसे नहीं लाए थे। वे अपने अध्ययन को एक और दिन के लिए टालना नहीं चाहते थे। साधन-सम्पन्न होने के कारण, उन्होंने एक सूखा पत्ता उठाया, उसमें एक छोटा सा छेद किया व उस छेद पर वर्षा के पानी की एक बूँद डाल दी। पत्ते को उचित रूप से पकड़े हुए, उन्होंने पानी की बूँद को लेंस के रूप में प्रयोग किया और अपने अध्ययन को आगे बढ़ाया।

एक अन्य अवसर पर, उन्होंने एक बन्दर को पड़ोसी वृक्षों की दो बहुत नीची, क्षैतिज शाखाओं के बीच के छोटे से अन्तराल में अपना हाथ पकड़े, प्रतीयमानतः बहुत चिन्ताग्रस्त बैठे देखा। यह देखने के लिए कि बन्दर के हाथ में क्या है, गुरुजी ने अपना सिर धरती के पास रखा। उन्होंने देखा कि इसमें एक सेब था, जो सम्भवतः किसी ने वहाँ गिरा दिया था। चूँकि बन्दर अपनी मुट्ठी से फल को छोड़ना नहीं चाहता था, इसलिए वह अपना हाथ निकालने और स्वयं को छुड़वाने में असमर्थ था। गुरुजी ने सोचा, "अपनी बुद्धिमत्ता के होते हुए भी, यह बन्दर नहीं चाहता है कि फल को छोड़े, अपना हाथ उस अन्तराल में से बाहर निकाल ले व फ़िर उसी फल को नीचे से उठा ले।"

उन्हें बन्दर पर दया आ गई। तो, उन्होंने उस बन्दर को अपने स्वयं के बनाए बन्धन से मुक्त करने की योजना के साथ, एक केले को छीला और गूदे को उसके मुँह के पास ले गए। बन्दर आगे झुक गया और फल खाने लगा, परन्तु सेब को पकड़े रहा। गुरूजी ने दूसरा केला छीला। इस बार, उन्होंने इसे बन्दर से कुछ दूरी पर रख दिया। बन्दर के पास केला पाने के लिए सेब को छोड़ने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं था। जब वह केला खा रहा था, गुरुजी ने सेब बाहर निकाल दिया और उसे वापस बन्दर को सौंप दिया।

गुरुजी ने कहा है — “भगवान की रचना कितनी आकर्षक है। प्रकृति हमें ईश्वर की स्मृति दिलाती है और वास्तव में, यह सब के सामने उनकी अभिव्यक्ति है। जब कोई रात में आकाश या समुद्र को देखता है, तो वह शान्ति की भावना से आप्लावित हो जाता है और यह भी अनुभव करता है कि वह ब्रह्माण्ड में कितना नन्हा सा है। नदी की लहरों पर खेल रही सूर्य की किरणें, हरे भरे खेत, बन्दरों के खेल-कूद, गायों का स्नेह आदि आनन्ददायक हैं। यहाँ तक कि कीड़ों से भी, जिन्हें बहुत से लोग तुच्छ समझते हैं, हमें सीखने के लिए बहुत कुछ है। प्रकृति एक निःशुल्क रमणीय प्रदर्शनी है, जो सभी के अनुभव के लिए उपलब्ध है। विचित्र की बात है कि कई लोग इसे अनदेखा कर देते हैं और बहुत सारा पैसा और समय व्यर्थ करके, अश्लील चलचित्र देखकर और फूहड़ गीतों वाले शब्दावली सुनकर, अपने मन को दूषित कर देते हैं।”

जो चमत्कारी प्रतीत हो सकता है, उसके मर्म का प्रभेद

जब गुरुजी की आयु 21 वर्ष के आसपास की थी, एक जादूगर शृङ्गेरी आया और उसने गुरुजी के दर्शन प्राप्त किए। उसके बाद, उसने उन्हें एकान्त में अपना प्रदर्शन दिखाया जिसे वह “इन्द्रजाल की मेरी शक्ति” कहता था। उसने अपनी खुली हथेली के दोनों पहलुओं को गुरुजी को दिखाया। फ़िर उसने तुरन्त अपना हाथ लहराया और अपनी मुट्ठी बन्द कर ली। जब उसने अपनी मुट्ठी खोली तो गुरुजी ने उसमें एक सोने की अँगूठी देखी। उसके बाद, जादूगर ने ऐसी ही कई चालों का प्रदर्शन करके दिखाया। अन्त में, उसने एक काग़ज़ का शङ्कु सज्जित किया, इसे रिक्त दिखाया और फ़िर उसमें थोड़ा पानी डाला। कुछ क्षणों के बाद, उसने शङ्कु को झटका दिया जैसे कि वह गुरुजी पर पानी फेंकने वाला हो। परन्तु गुरुजी के पास विभिन्न प्रकार के छोटे फूल गिरे। गुरुजी को वह प्रदर्शन अच्छा लगा और उन्होंने

उस व्यक्ति को ऐसा ही कहा। हालाँकि, उन्होंने उस जादूगर से यह प्रश्न नहीं किया कि उसने वास्तव में अपनी चालें कैसे निभाईं, क्योंकि उन्होंने विचार किया, “मुझे उसकी वृत्ति के रहस्यों के बारे में प्रश्नों से उसे झंझट में नहीं डालना चाहिए।”

1980 के दशक में, एक दिन जब मैं गुरुजी की उपस्थिति में गया, उन्होंने अपना दाहिना हाथ बढ़ाया और मुझसे कहा, “मेरी हथेली की जाँच करो।” मैंने यही किया। “क्या यह रिक्त नहीं है?” उन्होंने पूछा। “हाँ, यह है,” मैंने उत्तर दिया। उन्होंने तेज़ी से हाथ हिलाया और ऐसा करते हुए अपनी मुट्ठी बन्द कर ली। तब वे ठहाके मारकर हँस पड़े और उन्होंने अपनी मुट्ठी खोल दी। उसमें कुङ्कुम था। मुझे कुछ देते हुए उन्होंने कहा, “यह कुङ्कुम शून्य से नहीं निकला। यह शारदाम्बा के मन्दिर से है।”

तब उन्होंने मुझसे कहा, “बिना किसी को बताए, एक कटोरी तेल ले आओ।” जब मैं तेल से भरा एक कटोरी लेकर लौटा, तो उन्होंने मुझे इसे एक छोटे विद्युत हीटर पर गर्म करने का निर्देश दिया। तेल शीघ्र ही खौलने लगा। मेरे देखते ही देखते, उन्होंने मुस्कुराते हुए अपना दाहिना हाथ तेल में डुबोया और उसे बाहर निकाला। तब गुरुजी ने मुझे उस जादूगर के बारे में बताया जो उनके पास तब आया था जब वे लगभग 21 वर्ष के थे।

गुरुजी ने विस्तार से बताया — “हालाँकि मैंने जादूगर से यह नहीं पूछा कि उसने अपनी जादुई चालें कैसे दिखाईं, तथापि मैंने जो देखा उसके आधार पर मैंने स्वयं उनका अनुमान लगाया। जैसे उस व्यक्ति ने एक अङ्गूठी दिखाई, मैंने कुङ्कुम को केवल हाथ की सफ़ाई से प्रकट किया। जो समझदार नहीं है, वह सम्भवतः सोच सकता है कि अङ्गूठियाँ और कुङ्कुम जैसी वस्तुएँ अलौकिक शक्तियों के माध्यम से ही ऐसे प्रकट हो सकती हैं। जब मैंने अपना हाथ तेल में डुबोया, तो वह इसलिए नहीं जला क्योंकि मैंने ऐसा करने से पहले, तुम्हारे बिना जाने ही, अपना हाथ गीला कर लिया था। पानी के कारण, मेरे हाथ की सतह का तापमान तेल के तापमान से बहुत कम था। मैंने पढ़ा है कि एक विदेशी अपना हाथ कुछ समय पिघली हुई धातु में

डुबाता है। दुर्भाग्य से, पिघली हुई धातु अभी मेरे पास उपलब्ध नहीं है, नहीं तो मैं तुम्हारे लिए उसके उस करतब को दोहराता।"

फ़िर, "मेरी नाड़ी की जाँच करो," उन्होंने कहा। जैसे ही मैंने ऐसा किया, उन्होंने अपनी आँखें मूँद लीं। शीघ्र ही, मैं उनकी बाईं कलाई में किसी भी नाड़ी का पता लगाने में असमर्थ था। कुछ समय बाद, नाड़ी फ़िर से पता लगाए जाने योग्य हो गई व उन्होंने अपनी आँखें खोल दीं। "तुमने सोचा होगा चूँकि मैं गहन ध्यान की स्थिति में चला गया था, तो तुम्हारे द्वारा मेरी नाड़ी का पता लगाया जाना बन्द हो गया था। वास्तव में, मैं ध्यान-मग्न नहीं था। अपितु, यह एक केवल शारीरिक माध्यम से था कि मैंने हाथ में रक्त के प्रवाह को कुछ समय के लिए रोक दिया। मेरा हृदय सामान्य रूप से धड़कता रहा।"

फ़िर उन्होंने अपनी आँखें एक बार और बन्द कर लीं और तरह-तरह की अलग-अलग ध्वनियों में बोलना प्रारम्भ कर दिया। अगर मुझे केवल ध्वनियों का एक रिकॉर्ड किया गया संस्करण दिया गया होता, तो मुझे विश्वास है कि मैं उन्हें एक ही स्रोत से निकलने वाले के रूप में नहीं पहचान पाता; वास्तव में, कुछ ध्वनियाँ स्पष्ट रूप से ऊँची स्वर वाली महिलाओं की लग रही थीं। गुरुजी ने अपनी आँखें खोलीं और कहा, "किसी आत्मा के वश में होने जैसे जो कुछ भी माना जाता है, वह सामान्य रूप से ऐसा नहीं होता है। एक व्यक्ति के लिए अलग-अलग लोगों की तरह जानबूझकर बोलना आसान होता है। तो, एक छली व्यक्ति किसी दिव्य शक्ति के आविष्ट होने का दिखावा कर सकता है और नाम, प्रसिद्धि एवं धन कमा सकता है।

"लोगों को सामान्यतः यह नहीं पता चलता है कि उनके मुखमण्डल और, विशेष रूप से, उनकी आँखें उनके मन के कामकाज के बारे में, उनकी कल्पना से कहीं अधिक प्रकट करती हैं। इसके साथ साथ, सहायकों के माध्यम से एकत्र की गई जानकारी, एक छली व्यक्ति को दूसरों के मन की बातों को जान लेनेवाले के रूप में दिखाने में सहायता कर सकती है। वातोन्माद की चपेट में आने वाले व्यक्ति के व्यवहार से यह आभास हो सकता है कि वह किसी आत्मा के वश में है। मेरा मानना है कि सच्चा वशीकरण विरल है।"

गुरुजी ने समझाया कि जब वे युवा थे, उन्होंने एक बार गुप्त रूप से कुछ जलते हुए कोयले को धरती पर फैलाने की व्यवस्था की थी और, अग्नि-चालकों के अनुकरण में, बिना किसी असुविधा का अनुभव किए, उसे पार कर लिया। उन्होंने कहा कि आग पर चलने से पहले, उन्होंने अपने तलवों को थोड़ा गीला कर लिया था। उनका हिरण “हरि” अप्रत्याशित रूप से घटनास्थल पर आ गया और, बिना किसी समस्या के, उसने आग के पार उनका पीछा किया। उन्होंने उसे केवल तभी देखा जब वह आधे से अधिक पार कर चुका था और इसलिए, वे उसे अपने साथ आने से रोकने की स्थिति में नहीं थे।

“यह स्पष्ट है कि आग पर चलने में अलौकिकता कुछ भी नहीं है,” गुरुजी ने टिप्पणी की। फ़िर उन्होंने बताया कि कैसे एक धूर्त के लिए यह सम्भव है कि वह अपने भावचित्र पर धीरे-धीरे भस्म जैसा चूर्ण बना ले। अन्त में, उन्होंने उस दिन मुझसे कहा, “आज तक, मैंने किसी के समाने भी इन चालों का प्रदर्शन नहीं किया है। मैं तुम्हें केवल कुछ ऐसी प्रविधियाँ दिखाना चाहता था जो लोग भोले-भाले लोगों को मूर्ख बनाने और अपने आपको विशेष शक्तियों से सम्पन्न होने के रूप में, प्रस्तुत करने के लिए उपयोग करते हैं। मैं निश्चित रूप से यह नहीं कह रहा हूँ कि वास्तविक चमत्कार नहीं होते हैं। जैसा कि तुम जानते हो, योग-सिद्धियाँ प्रकट होती हैं, परन्तु सन्त उनकी ओर ध्यान नहीं देते।”

असाधारण अन्तर्दृष्टि और आशीर्वाद

गुरुजी मंगलूरु के निकट कोटेकर में ठहरे हुए थे। समय अपराह्न 2.30 बजे के आसपास का था और वे अपने निजी कक्ष में बैठे थे। वे मुझे एक घटना के बारे में बता रहे थे कि वे सहसा उठकर, बंगले के सामने खुले बरामदे की ओर जाने वाले द्वार की ओर चले गए और उन्होंने उसे खोल दिया। कुछ ही समय बाद एक व्यक्ति दौड़ता हुआ वहाँ आया। उसे पसीना आ रहा था, उसके पतलून और शर्ट गन्दे थे और उसके माथे पर पट्टी बँधी हुई थी।

गुरूजी ने नरमी से उससे पूछा कि वह कौन है और क्या चाहता है। वह कन्नड़ में बोला, "कृपया बचाओ," परन्तु चूँकि वह सिसकने लगा, तो आगे नहीं बढ़ सका। गुरुजी ने उसके बिना कुछ और कहे भी, उससे कहा, "तुम्हारा बेटा शीघ्र ही ठीक हो जाएगा। चिन्ता मत करो।" फ़िर, उसे रुकने का सङ्केत करते हुए, गुरुजी अन्दर गए और काजू के दो बड़े पैकेट और बादाम का एक बड़ा पैकेट ले आए। उन्होंने उन्हें यह कहकर उसे दिया, "इनमें से कुछ दिनों के बाद, अपने बेटे को प्रतिदिन दो।" उस व्यक्ति ने आदरपूर्वक सूखे मेवे लेकर गुरुजी से कहा, "मेरा बेटा अस्पताल में है। डॉक्टर ने आज मुझे बताया कि मेरा बच्चा कैंसर से पीड़ित है।" "नहीं, उसे कैंसर नहीं है। वह शीघ्र ही अस्पताल से घर आ जाएगा और ठीक हो जाएगा," गुरुजी ने जोर से कहा। उस व्यक्ति ने हाथ जोड़कर गुरुजी को धन्यवाद दिया और चला गया। गुरुजी ने द्वार बन्द कर दिया, अपने आसन पर फ़िर बैठ गए और उन्होंने मुझसे बात वहीं से बनाए रखी जहाँ से रोकी थी।

अगली सन्ध्या, जब गुरुजी अपनी सायंकालीन सैर पूरी कर रहे थे, उन्होंने देखा कि वह व्यक्ति हाथ जोड़े कुछ दूर खड़ा है। गुरुजी उन्हें देखकर मुस्कुराए व बंगले में चले गए। वह व्यक्ति वहीं रहा जहाँ वह खड़ा था। गुरुजी के अपने सायं स्नान के लिए चले जाने के बाद, जब मैं बाहर आया, तो वह व्यक्ति मेरे पास आया और बोला, "कल सायंकाल, जब मैं यहाँ से अस्पताल लौटा, तो डॉक्टर साहब आए और बोले, 'त्रुटि हो गई थी, रिपोर्टों में घालमेल हो गया था। आपके बेटे को कैंसर नहीं है। हम उसे दो दिनों में छुट्टी दे सकते हैं। उसे घर ले जाने के बाद, उसे अच्छा पोषण दे।' कृपया इसे स्वामी को बताएँ। मैं उनका बहुत आभारी हूँ। चूँकि मैं आज उन्हें कष्ट पहुँचाना नहीं चाहता था, तो मैं दूर खड़ा रहा।" मैंने उत्तर दिया कि मैं उनकी जानकारी गुरुजी को दे दूँगा। जैसे ही मैं जाने लगा, उन्होंने कहा, "मैं एक ईसाई हूँ। मुझे यह सुनकर सदमा लगा कि मेरे बच्चे को कैंसर है; तब मेरे एक हिन्दू मित्र ने मुझे स्वामी से आशीर्वाद पाने हेतु जाने के लिए कहा। इसलिए मैं कल यहाँ पहुँचा। मुझे प्रसन्नता है कि मैंने ऐसा किया।" बाद में जब मैंने गुरुजी को इस विषय की सूचना दी, तो उन्होंने चुपचाप मेरी बात सुनी।

1963 में एक दम्पती शृङ्गेरी में बसने के लिए आए। उस वर्ष चातुर्मास्य के समय, गुरुजी ने शुद्ध संस्कृत में, उन दम्पती और कई विद्वानों को (अद्वैत वेदान्त पर एक प्रामाणिक और प्राविधिक प्रवेशिका) वेदान्त-परिभाषा की व्याख्या की। पहले दिन की कक्षा के बाद, महिला ने सन्ध्या के समय गुरुजी के पास आकर कहा, "मैं गुरुजी की कक्षा में उपस्थित होकर धन्य हूँ। हालाँकि, अन्य सभी के विपरीत, मैं संस्कृत की जानकार नहीं हूँ और इसलिए, गुरुजी की व्याख्या को समझने में असमर्थ हूँ।" उन महिला को आशीर्वाद देते हुए, गुरुजी ने करुणापूर्वक उत्तर दिया, "आप पाठ को समझने में सक्षम होंगी।" महिला स्वयं आश्चर्य चकित हुईं कि अगले दिन से, गुरुजी के व्याख्यान को समझ पाने में सक्षम रहीं, और वह भी, बिना किसी कठिनाई के। यहाँ तक कि पाठ का वह भाग भी स्पष्ट हो गया जो पहली कक्षा में पढ़ाया गया था। बाद में, गुरुजी ने दम्पती को वेदान्त-पञ्चदशी की व्याख्या करना प्रारम्भ किया। हालाँकि उन्होंने संस्कृत में पढ़ाया, वे स्पष्ट रूप से उनके शिक्षण को समझ पाने में सक्षम थीं। इस पाठ के एक भाग को पढ़ाने के बाद, गुरूजी ने उनसे कहा कि वे स्वयं से ग्रन्थ पढ़ सकती हैं और वह उनके लिए स्पष्ट होगा; और ऐसा ही हुआ। स्वयं उन महिला ने यह जानकारी मुझे दशकों बाद दी थी। तब मेरे द्वारा पढ़े गए कुछ अंशों के तात्पर्य को ठीक-ठीक तमिल में बताकर, उन्होंने मुझे यह भी दिखाया कि उन्होंने उन ग्रन्थों को समझ लिया है।

एकाग्रता और सतर्कता

एक दिन, गुरुजी नारियल के एक उपवन में बैठे थे और उन्होंने मुझे (धृतराष्ट्र को विदुर का नैतिक परामर्श) विदुर-नीति के पहले 50 श्लोकों और भगवत्पाद जी की चुनिन्दा रचनाओं को पढ़ने के लिए कहा। जैसे ही मैंने विदुर-नीति के श्लोकों का पाठ करना प्रारम्भ किया, गुरुजी ने आंशिक रूप से अपनी आँखें मूँद लीं। जब मैं 22वें श्लोक पर आया तो मैंने एक

सरसराहट का शोर सुना। इससे पहले कि मैं कुछ समझ पाता, पत्ते का एक बड़ा डंठल और एक नारियल पास के एक वृक्ष से गिरे, और गुरुजी से एक मीटर से भी कम दूरी पर एक बड़ी गड़गड़ाहट के साथ तल पर आ गिरे। गुरुजी छंदों के तात्पर्य पर इतने केन्द्रित थे कि जो कुछ भी घटित हुआ था, उससे पूरी तरह से अनजान थे।

विदुर-नीति पढ़ने के बाद, मैंने मनीषा-पञ्चकम् और ब्रह्मानुचिन्तनम् जैसी भगवत्पाद जी की रचनाओं को पढ़ा। मन्द हँसी के साथ निश्चल रहते हुए, गुरुजी सुन रहे थे। मेरे पाठ के समाप्त होने के कुछ ही क्षण बाद, उन्होंने अपनी आँखें खोलीं। अचानक, वे वेदना से चौंक उठे। मेरे द्वारा देखे बिना और उनके द्वारा अनुभव किए बिना, चींटियों का एक झुण्ड उनके पैरों और हाथों पर उन्हें काट रहा था। उनके पैर लाल और सूजे हुए थे।

उन्हें वे छंद कण्ठस्थ थे जिन्हें उन्होंने मुझे पढ़ने के लिए कहा था और स्वयं सैकड़ों अवसरों पर उन्हें मानसिक रूप से पढ़ा था। फ़िर भी, उन्होंने उन पर इतनी तीव्रता से ध्यान केन्द्रित किया कि वे बाहरी उच्च ध्वनियों और अपने शरीर पर लगी चोट से भी सर्वथा अनजान रहे। वे अपने द्वारा किए गए किसी भी कार्य के प्रति कभी भी असावधान नहीं रहते थे।

गुरुजी ने कहा है — “व्यक्ति को अपने सभी कार्यों को सतर्कतापूर्वक करना चाहिए। कोई छोटा सा काम भी असावधानी से नहीं करना चाहिए। उस काम के लिए आवंटित समय छोटा हो सकता है और उस पर अन्य कार्यों को प्राथमिकता मिल सकती है, परन्तु जब कोई उसमें लगा होता है, तो उसे उसको महत्त्वपूर्ण मानना चाहिए।”

सामान्यतः, गुरुजी कपास से बने गेरुए रूमाल का उपयोग करते थे। वह कभी-कभी सिकुड़ जाता था। हालाँकि, गुरुजी का इसे इस प्रकार पुनः मोड़ने का अभ्यास था कि यह तब ऐसा दिखाई देता था जैसे कि यह अभी अभी इस्त्री किया हुआ कपड़ा हो, जिसके किनारे एकदम सीधी रेखाएँ बनी हों। ऐसा नहीं था कि गुरुजी ने अन्य गतिविधियों को छोड़ते हुए तह किया। गम्भीर प्रवचन देते हुए या एक पुस्तक पढ़ते हुए भी, उन्होंने अपने रूमाल को त्रुटिहीन ढंग से मोड़ लिया।

अपने सायंकालीन आह्निक के समय, जैसे संन्यासियों के लिए निर्धारित है, वे एक पात्र से एक आचमनी में जल लेते थे, 'ॐ-कार' का जाप करते थे और जल को दूसरे पात्र में डालते थे; और इस प्रक्रिया को सौ से अधिक बार दोहराते थे। वे यह सब इतनी सुन्दरता से करते थे कि जल की एक बूँद भी तल पर नहीं गिरती थी। उनके हाथ की गति यथासम्भव कम थी और वह गति उनके 'ॐ-कार' के लयबद्ध जाप से पूर्णतः अनुकूल थी। जनता की उनके आह्निक-कक्ष तक पहुँच नहीं थी और इसलिए ऐसा नहीं था कि उनका युक्ततम कामकाज दूसरे के लिए एक शिक्षा के रूप में था।

गुरुजी ने एक बार कहा है — "लोग कहते हैं कि उनके मन में विचार आते रहते हैं। वे कदाचित् ही ऐसी स्थिति की कल्पना कर सकते हैं जहाँ मन शान्त हो। हालाँकि, यह मुझे आश्चर्यचकित करता है। जैसा कि मैं देखता हूँ, मन शान्त होना चाहिए और बस आत्मा पर रहना चाहिए, जब तक कि किसी कार्य के लिए विचार की आवश्यकता न हो। जब आवश्यकता समाप्त हो जाती है, तब मन को शान्ति की स्थिति में वापस आना चाहिए। यहाँ तक कि जब कोई कार्य किया जाना होता है, तब भी प्रायः सक्रिय सोच की हर समय आवश्यकता नहीं होती। उदाहरण के लिए, पुस्तक पढ़ते समय, पन्ना पलटते समय चित्त शान्त हो जाना चाहिए।" ध्यान में लीन न होने पर भी उनके मन का शान्त स्वभाव ऐसा ही था।

आदर्श शिष्य बने सिद्ध गुरु

परमगुरुजी (परमपूज्य जगद्गुरु श्री चन्द्रशेखर भारती महास्वामी जी) के 1954 में महासमाधि प्राप्त करने के कुछ समय बाद, उत्तर भारत की एक महिला शृङ्गेरी में आईं और उन्होंने गुरुजी के दर्शन किए। उन्होंने अपने कुछ धार्मिक सन्देह उनसे व्यक्त किए और यह भी कहा कि वे उनके सन्तोषजनक उत्तर प्राप्त करने में असमर्थ रही हैं। गुरुजी ने अपनी अनुपम

शैली में उनका स्पष्टीकरण दिया। महिला ने आनन्दपूर्वक कहा कि उनकी शङ्काओं का पूर्ण रूप से समाधान हो गया है।

सहजता से अहङ्कार-मुक्त और अपने गुरु के प्रति महान आदर भाव से प्रेरित, गुरुजी ने कहा, "यदि आप कुछ समय पहले आई होतीं, तो आप मेरे गुरु के पवित्र दर्शन कर सकती थीं। आपको मुझसे अपना सन्देह व्यक्त करना पड़ा और मेरे उत्तर सुनने पड़े। परन्तु अगर आप मेरे गुरु के दर्शन प्राप्त कर लेतीं, तो उतना ही आपके उत्तर के लिए पर्याप्त होता। ऐसी उनकी महानता थी।"

गुरुजी ने अपने गुरु के बारे में जो बात कही, वह पूरी तरह से उन पर भी लागू थी। वह वर्ष 1984 था। गुरुजी को शृङ्गेरी से बेंगलूरु होते हुए कालडी के लिए प्रस्थान करना था। ऋषिकेश के एक ब्रह्मचारी अपराह्न के कुछ समय बाद गुरुजी के दर्शन के लिए आए। उससे पहले ही गुरुजी मध्याह्न के स्नान के लिए चले गए थे। ब्रह्मचारी ने मुझसे कहा, "मेरे पास योग और वेदान्त से सम्बन्धित सात प्रश्न हैं, जिन्हें मैं परमपूज्य गुरुजी के समक्ष रखना चाहता हूँ। वे मेरे लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। मैंने ऋषिकेश, उत्तरकाशी, हरिद्वार और काशी में विद्वानों, योग-साधकों और संन्यासियों से सम्पर्क किया; परन्तु कोई भी मुझे सन्तुष्ट नहीं कर पाया। काशी के एक विद्वान ने मुझे यह कहकर शृङ्गेरी जाने का निर्देश दिया कि यदि शृङ्गेरी के जगद्गुरु आपको सन्तोषजनक उत्तर नहीं दे पाएँगे, तो विश्व में कोई भी यह काम नहीं कर सकता। इसीलिए बड़ी उत्सुकता से मैं शृङ्गेरी आया हूँ।"

मैंने उनसे कहा, "गुरुजी आज से यात्रा पर जा रहे हैं। यदि आप यहाँ प्रतीक्षा करते हैं, तो आप उनके प्रस्थान से ठीक पहले, उनका दर्शन कर सकते हैं। हालाँकि, आज उनके पास आपके साथ एक लम्बे निजी वार्तालाप के लिए समय नहीं है।" उन्होंने कहा, "मैं प्रसन्नता से उनके दर्शन की प्रतीक्षा करूँगा भले ही वह मात्र एक पल के लिए भी क्यों न हो।" फ़िर उन्होंने मुझे वह प्रश्न बताया जो उनके मन में था और मुझसे गुरुजी को उनके बारे में बताने का अनुरोध किया। मैंने गुरुजी की भिक्षा पूरी होने के तुरन्त बाद, उनके अनुरोध को पूरा किया।

गुरुजी ने कहा, "उसने जिस प्रश्न के बारे में तुम्हें बताया है वह अच्छा और प्रासङ्गिक है। आज तनिक भी समयावकाश न होने के कारण, यदि वह चाहे तो मुझसे बेंगलूरु में मिल सकता है और वहाँ मुझसे अपने प्रश्न पूछ सकता है। अगर मुझे उत्तर का पता हो, तो मैं उसे बता दूँगा। नहीं तो मैं तुरन्त स्वीकार कर लूँगा कि मैं उसकी सहायता करने की स्थिति में नहीं हूँ।" लगभग आधे घंटे में, गुरुजी अपने निवास स्थान सच्चिदानन्द-विलास के सामने वाले बरामदे में आ गए। उस ब्रह्मचारी सहित कुछ भक्त वहाँ थे।

ब्रह्मचारी ने गुरुजी के समक्ष दण्डवत् प्रणाम किया। गुरुजी ने उनकी ओर दयापूर्ण दृष्टि से देखा, आशीर्वाद की मुद्रा में अपना दाहिना हाथ उठाया और हिन्दी में कहा, "सुखी रहो।" फ़िर वे आगे बढ़ गए। मैंने शीघ्र ही उन्हें बताया जैसा कि गुरुजी ने मुझसे कहा था। मेरी बात समाप्त होने से पहले ही उन्होंने कहा, "मेरे सभी प्रश्नों के उत्तर मुझे उसी क्षण पूरी तरह से अवगत हो गए, जब गुरुजी ने मुझे आशीर्वाद दिया।" कार में बैठने के बाद, अपने स्वयं के शब्दों में गुरुजी ने मुझे सूचित किया, "जब मैंने उस ब्रह्मचारी को देखा, तो मैं उसकी निष्ठा से प्रभावित हो गया। इसलिए, मैंने जगदम्बा से अनुरोध किया, 'कृपया उसे जिन उत्तरों की इच्छा है, उन्हें अभी स्वयं प्रदान करें।' वैसी निष्ठा उस आध्यात्मिक आकाङ्क्षी में है, जिसके कारण, वह पुरस्कृत होने योग्य है।" जब मैंने गुरुजी को बताया कि ब्रह्मचारी ने क्या कहा, तो गुरुजी ने अपनी हथेलियों को जोड़ा और कहा, "अम्बा बहुत दयामयी है।"

गुरुजी को 1931 मई 22 में परमगुरुजी द्वारा संन्यास की दीक्षा दी गई थी। उस सन्ध्या, मठ की परम्परा के अनुसार, परमगुरुजी और गुरुजी को क्रमशः सोने और चाँदी की पालकियों में शृङ्गेरी की गलियों से ले जाया जाना था। वे दरबार के परिधानों में थे। परमगुरुजी ने अपनी उङ्गली बढ़ाई और गुरुजी ने नरमी से उसे पकड़ लिया। जब तक परमगुरुजी चाँदी की पालकी तक नहीं पहुँचे, तब तक वे आगे चलते रहे। पहुँचते ही एकाएक उन्होंने अपनी उङ्गली छुड़ा ली और उस पालकी में आसीन हो गए। फ़िर, उन्होंने गुरुजी को आगे स्थित स्वर्ण पालकी में बैठने को कहा। यह बहुत ही असाधारण था।

शास्त्र कहते हैं कि एक शिष्य को अपने गुरु का अनुसरण करना चाहिए और उनसे आगे नहीं जाना चाहिए। परमगुरुजी की आज्ञा के अनुपालन करने के लिए, गुरुजी को इस नियम को तोड़ने की आवश्यकता पड़ी। गुरु के आसन का सम्मान किया जाना चाहिए और एक शिष्य द्वारा, उस पर आसीन नहीं होना चाहिए। सोने की पालकी वह थी जिसका परमगुरुजी ने वर्षों से उपयोग किया था। लोगों से गुरुजी के सोने की पालकी में बैठने के कारण को जानने की आशा नहीं की जा सकती थी। औचित्य के इस घोर उल्लङ्घन के लिए, वे कम से कम मानसिक रूप से गुरुजी की निन्दा तो कर ही सकते थे। ऐसे विचारों के होते हुए भी, और यद्यपि गुरुजी ने तब 14 वर्ष की आयु भी पूरी नहीं की थी, उन्हें किसी भी प्रकार का भ्रम नहीं हुआ। जहाँ तक उनका सम्बन्ध था, गुरु की आज्ञा का पालन करना ही था, बिना किसी झिझक के। वे उस दिन सोने की पालकी में बैठे। गुरुजी की अपने संन्यास के दिन भी अपने गुरु के प्रति आज्ञाकारिता ऐसी थी।

1970 के दशक के आरम्भ में, मैंने इस घटना का उल्लेख किया और गुरुजी से पूछा, “परमगुरुजी से इतना कठिन निर्देश प्राप्त करने पर, गुरुजी को क्या प्रतीत हुआ?” “प्रतीत होने के लिए क्या विचार था? ‘मेरे गुरुजी की आज्ञा अनुल्लङ्घनीय है। एक शिष्य के नाते, इसे पालन करना मेरा कर्तव्य है।’ बस, तब मेरा केवल यही विचार था,” गुरुजी ने उत्तर दिया, अपने गुरु के प्रति बिना किसी प्रतिबन्ध के, अपने आज्ञापालन के महान प्रदर्शन को कोई भी महत्त्व दर्शाए बिना।

एक दिन, भोर से ठीक पहले, एक विद्वान संन्यासी ने, जो परमगुरुजी और गुरुजी के एक उत्कट शिष्य थे, गुरुजी को उस कमरे के बाहर बैठे देखा, जहाँ परमगुरुजी विश्राम कर रहे थे। यह उनके लिए स्पष्ट था कि गुरुजी ने पूरी रात वहीं जागते हुए बिताई थी। पूछने पर गुरुजी ने उनसे कहा, “कल रात हमारे गुरुजी का परिचारक नहीं आया था। इसलिए मैंने यदि कोई आवश्यकताएँ हों, तो उन्हें पूरा करने के लिए यहाँ बैठने का निश्चय किया।” गुरुजी किसी और को परिचारक के रूप में सेवा करने के लिए लगा सकते थे और मठ के अन्य परिचारकों जैसे सो सकते थे; और परमगुरुजी के

बुलाने पर ही जाग सकते थे। परन्तु गुरुसेवा के प्रति उनके समर्पण ने उन्हें वह करने के लिए प्रेरित किया जो उन्होंने किया था।

यहाँ तक कि कई कठिन परिस्थितियों में भी, गुरुजी ने पूर्ण रूप से अपने गुरु की सेवा की; कोई अन्य — चाहे कितनी भी सीमा तक उसकी भक्ति या समर्पण क्यों न हो — कम से कम कभी-कभी ही सही, लड़खड़ा जाता। अपनी ओर से, परमगुरुजी ने गुरुजी को सर्वोच्च सम्मान दिया। उन्होंने गुरुजी के बारे में एक भक्त से घोषणा की, "यह मत सोचो कि वे केवल एक स्वामीजी हैं। वे भगवान हैं। वे मेरे गुरु हैं।" परमगुरुजी ने यहाँ तक कि सुभानु-संवत्सर (1943-44) में, गुरुजी पर श्लोकों की रचना की और उन्हें गुरुजी को दिया। उन सात श्लोकों में से दो श्लोक यहाँ प्रस्तुत किए गए हैं —

दयासान्द्रं बालं निखिलजगतीरक्षणचणं
हरन्तं विघ्नाद्रिं विमलविमलैर्वीक्षणचयैः।
परब्रह्माकारं प्रणवविदितं शान्तमनसं
गुरुं विद्यातीर्थं कलयत बुधाश्चित्तकमले॥

(हे बुद्धिमान् लोगों, बालक और शान्त मन वाले, अत्यन्त दयावान, अपनी अत्यन्त विमल दृष्टियों से विघ्नों के पर्वत को हर लेने वाले, सम्पूर्ण संसार की रक्षा करने में कुशल, प्रणव (ॐ-कार) के द्वारा विदित और परब्रह्म के मूर्तिमान स्वरूप — ऐसे गुरु विद्यातीर्थ को अपने हृदय-कमल में धारण कीजिए।)

शरीरेन्द्रियचित्तानां शुद्धये कल्पिता महाः।
बहवो गुरुदेवानां तत्फलं भवतां तनुः॥

(शरीर, इन्द्रियों और मन की शुद्धि के लिए, गुरुओं और देवताओं से जुड़े हुए अनेक उत्सवों को निरूपित किया गया है। आपका शरीर उनका फल है।)

परमगुरुजी ने इन श्लोकों को देते समय गुरुजी से कहा, "मैंने केवल वही लिखा है जो मैं निश्चित रूप से जानता हूँ कि वह आपके बारे में सच है। इसमें

कोई स्तुति नहीं है।" गुरुजी ने अपनी ओर से ऐसा माना कि यह उनके प्रति परमगुरुजी का अत्यधिक प्रेम था, जिसके कारण परमगुरुजी उन्हें इस प्रकार देखा करते थे। एक अनन्य गुरु-शिष्य सम्बन्ध!

मई 1931 में गुरुजी के संन्यास से एक साल पहले से ही परमगुरुजी के विशेष आशीर्वाद एवं मार्गदर्शन तथा कई असाधारण दिव्य मध्यवर्तनों ने, न केवल गुरुजी के गहन और समर्पित आध्यात्मिक साधनाओं के अभ्यास को, अपितु दिसंबर 1935 में ब्रह्म-साक्षात्कार और जीवन्मुक्ति (जीवित रहते हुए संसार बन्धन से मुक्ति) की प्राप्ति के रूप में, उनके परमोत्कर्ष को भी, चिह्नित किया। अपनी साधना के समय, उन्होंने हठ-योग, कर्म-योग, कुण्डलिनी-योग, नाद-अनुसन्धान, आत्म-चिन्तन और देवता रूपों पर ध्यान एवं समाधि — इन सभी प्रकारों में पूरी तरह से महारत प्राप्त किया। फ़िर, आत्मा के बारे में शास्त्रों की शिक्षा के आधार पर और उसी तत्त्व पर गहन चिन्तन-मन्थन के माध्यम से, उन्होंने अद्वैत सत्य के बारे में एक स्पष्ट समझ एवं निश्चितता को प्राप्त कर लिया। अनात्म-वासनाओं को निष्प्रभावित करके, उन्होंने अपने भीतर और बाहर स्थित तथ्य पर ऐसी तीव्रता से अपने मन को अटल ध्यान में केन्द्रित किया कि उन्होंने सत्य पर सविकल्प-समाधि प्राप्त कर ली। सविकल्प-समाधि में बार-बार रहने के बाद, वे योग की पराकाष्ठा निर्विकल्प-समाधि में लीन हो गए। चूँकि वे बिना किसी प्रयास के बार-बार निर्विकल्प समाधि में लीन हुए, उनकी ज्ञान-प्राप्ति में आने वाली सभी बाधाओं को दूर करने के साथ, उपनिषदों द्वारा बताए गए अद्वैत सत्य का ज्ञान उन्हें पूरी तरह से प्राप्त हो गया। वे पूर्णतः प्रबुद्ध हो गए और निरन्तर परब्रह्म में बने रहे। इसके तुरन्त बाद, परमगुरुजी ने अपने आप निर्णायक रूप से गुरुजी के परब्रह्म-साक्षात्कार और उनकी जीवन्मुक्ति की प्राप्ति की पहचान की और आनन्दातिरेकपूर्वक गुरुजी को गले लगा लिया एवं उनकी प्रशंसा की।

यह अनोखा दीख सकता है कि गुरुजी ने परमगुरुजी की देख-रेख में वेदान्त का औपचारिक अध्ययन प्रारम्भ करने से पहले ही, परम-सत्य का साक्षात्कार प्राप्त कर लिया था। परमगुरुजी को पारम्परिक पण्डितों द्वारा अत्युत्कृष्ट

विद्वान और वेदान्त शास्त्र के प्रमुख प्रतिपादक के रूप में सर्वत्र मान्यता दी गई थी। परमगुरुजी द्वारा व्यक्तिगत रूप से सिखाए गए गुरुजी ने श्री शङ्कर भगवत्पाद जी के भाष्य के साथ उपनिषदों, भगवद्गीता और ब्रह्मसूत्रों में पूर्ण दक्षता प्राप्त की। परमगुरुजी के शिक्षण की विधि के बारे में, गुरुजी ने कहा है — "उन्होंने भगवत्पाद जी के एक-एक शब्द को ध्यान में रखा और उसका विश्लेषण करके, उसके वास्तविक तात्पर्य को बताया। उन्होंने शास्त्र को भगवत्पाद जी के भाष्य के अनुसार सख्ती से समझाया। वेदान्त के अपने शिक्षण में, उन्होंने न्याय, मीमांसा और योग से प्रासङ्गिक बिन्दुओं को सहजता से जोड़ा," और, "जब वेदान्त-शास्त्र पढ़ाया जाता है, तो एक प्रकार यह है कि किसी पाठ की, पङ्क्ति दर पङ्क्ति, व्याख्या करना। दूसरा है अपने अनुभव के साथ-साथ पङ्क्तियों की व्याख्या करना। उनके शिक्षण की विशेषता, दूसरी प्रकार की विधि थी; इससे बहुत आनन्द मिलता था।"

वे न केवल आध्यात्मिक विषयों के सभी पहलुओं में से प्रत्येक का चरम पर पहुँचे और उन्होंने पूर्ण ज्ञान और जीवनमुक्ति प्राप्त की; वे न केवल वेदान्त, न्याय और योग शास्त्रों के स्वामी थे, अपितु धर्म शास्त्र, रामायण, महाभारत और पुराणों में भी निष्णात थे। परमपूज्य जगद्गुरु श्री अभिनव विद्यातीर्थ महास्वामी जी स्वाभाविक रूप से अहैतुक करुणा से भरे हुए थे, लोगों की गहरी समझ रखते थे और अमोघ आशीर्वाद देने में सक्षम थे। कोई आश्चर्य नहीं कि वे एक परिपूर्ण सद्गुरु थे।

- सङ्कलनकर्ता

तृष्णा, क्रोध और आतुरता से सावधान रहें

1. तृष्णा का जाल

लड़कों का एक समूह किसी प्रतियोगिता के लिए एक कहानी लिखना चाहता था। बहुत चर्चा के बाद, उन लड़कों ने उसे पूरा किया और उनमें से एक ने उस कहानी को उसके अन्तिम रूप में समूह के दूसरे लड़कों को सुनाया। जब वह कहानी सुना रहा था, तभी तीन लोग, जो वहीं पास से होकर जा रहे थे, उस कहानी को सुनने के लिए रुक गए। उन्होंने उसे वास्तविक घटना के रूप में स्वीकार करने की भूल नहीं की; तथापि उन्होंने जो कुछ सुना, उन्हें अच्छा लगा। जब वे आगे बढ़े, तो उन्होंने आपस में उस कहानी पर चर्चा की। जब वे लोग 500 किलोमीटर दूर जंगल में बरगद के वृक्ष के नीचे छिपे सोने के पात्र के बारे में बात कर रहे थे, तभी एक किशोर ने उनकी बात चुपके से सुन ली।

उस बालक में तुरन्त ही एक इच्छा जाग्रत हो गई कि किसी प्रकार वह सोना उसका हो जाए। बिना किसी को बताए, वह उस जंगल में चला गया। वहाँ उसने एक मनुष्य को छोटे मुँह वाले पात्र में एक फल रखते हुए और उस पात्र को लम्बी रस्सी के माध्यम से एक वृक्ष से बाँध लेते हुए देखा। उत्सुकता से प्रेरित, वह किशोर उस व्यक्ति के साथ बात करने लगा।

किशोर - आप क्या कर रहे हैं?

पुरुष - मैं बन्दर पकड़ने के लिए एक फन्दा बना रहा हूँ। मैं एक बन्दर को करतब दिखाने के लिए प्रशिक्षण देना चाहता हूँ।

किशोर - आपकी यह जुगत आपके उद्देश्य को कैसे पूरा करेगी?

पुरुष - यह प्रदेश बन्दरों से आक्रान्त है। उनमें से कोई न कोई एक अवश्य इस पात्र पर ध्यान देगा और इसमें रखे हुए फल को देखेगा। फ़िर, वह इसमें हाथ डालकर फल को पकड़ लेगा। पात्र का मुँह इतना छोटा है कि अपनी मुट्ठी में फल पकड़े, वह बन्दर अपने हाथ को बाहर नहीं निकाल पाएगा। चूँकि यह पात्र वृक्ष से बँधा हुआ है, इसलिए बन्दर इसे अपने साथ नहीं ले जा पाएगा।

किशोर - क्या आप उपहास कर रहे हैं? बन्दर फल छोड़ देगा, अपना हाथ निकालेगा और भाग जाएगा।

पुरुष - नहीं, वह ऐसा नहीं करेगा। वह फल को छोड़ने से मना कर देगा।

किशोर - मैं यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि एक बन्दर अपनी फल की इच्छा के कारण, इतना मूर्खतापूर्ण व्यवहार कर सकता है।

पुरुष - मेरे पास खड़े रहो और देखो।

दोनों कुछ दूर जाकर छिप गए। शीघ्र ही एक बन्दर आया और उसने ठीक वैसा ही किया जैसा उस व्यक्ति ने पूर्वानुमान किया था। वह लड़का बोला, “कितना मूर्ख और पागल है यह बन्दर!” और अपने मार्ग पर चला गया।

कुछ समय बाद, उसने एक मेढक को अपनी जीभ बढ़ाकर एक मक्खी पकड़ते हुए देखा। आश्चर्यचकित होकर, उसने अपना ध्यान समीप के ही एक और मेढक की ओर किया। जैसे ही वह मेढक मक्खी को पकड़ने ही वाला था, एक साँप चोरी छुपे मेढक के समीप आ गया और बड़ी तेज़ी से मेढक को अपने मुँह में पकड़ लिया। मेढक की जीभ बाहर आ गई और वह मक्खी उसमें चिपक गई। इस बीच, साँप ने आगे बढ़कर मेढक को निगल लिया। उस किशोर ने मन ही मन सोचा, “ये कैसा अनोखा दृश्य है! अपनी मृत्यु के समय भी, यह मूर्ख मेढक मक्खी पकड़ने में लगा हुआ था!”

वह आगे बढ़ा और एक वनपाल से उसकी भेंट हो गई। वनरक्षक ने कहा, “इस दिशा में और आगे मत जाना। आगे एक जंगली हाथी रहता है जो तुम पर प्रहार कर सकता है।” तथापि, उस किशोर की सोना पाने की इच्छा इतनी तीव्र थी कि उसने वनपाल के परामर्श पर ध्यान नहीं दिया। लगभग आधे घंटे में, वह एक घने जंगले में था। जब वह चारों ओर उस बरगद के वृक्ष को ढूँढ़ रहा था — जिसके बारे में उसने सुना था कि वह वहीं कहीं स्थित है — तभी उसने हाथी के चिंघाड़ने की ध्वनि सुनी।

कुछ ही क्षणों में उसने देखा कि मद बहाता हुआ एक हाथी उसकी ओर चला आ रहा है। वह तुरन्त सरपट दौड़ने लगा। हालाँकि, वह उतना तेज़

दौड़ा जितनी तेज़ी से भाग सकता था, तथापि वह हाथी निरन्तर उसके निकट आता गया। विपदग्रस्त होकर वह फिसला और एक गड्ढे में गिरने लगा, जिस पर उसने ध्यान ही नहीं दिया था। अपने हाथों से घिसटते हुए, उसने भाग्यवशात् किसी प्रकार एक लता को पकड़ने में और अपने को गिरने से रोकने में सफल रहा। इतने में वह हाथी गड्ढे के किनारे पर पहुँचा और उसकी ओर घूरने लगा।

बालक ने नीचे देखा और पाया कि वह गड्ढा गहरा है। इतना ही नहीं, उसने नीचे तली में अपना फन फैलाए एक नाग को भी देखा। इधर कुआँ, उधर खाई! उसे लगा कि लता से ऊपर चढ़ने या नीचे उतरने के विकल्प के बिना, वह गहरा क्लेश में फँस चुका है। उसकी समस्याएँ और भी भयानक होती जा रही थी, क्योंकि वह लता ढहने लगी; कुछ कीड़े उसे काटने में व्यस्त थे।

अप्रत्याशित रूप से, ऊपर पेड़ पर लगे मधुमक्खी के छत्ते से मधु की एक बूँद उसकी नाक पर गिरी और धीरे-धीरे उसके होठों की ओर बहने लगी। लड़के ने अपनी जीभ फैलाकर उसे चाटा। वह मधु उसे अमृत जैसा लग रहा था। तभी उसने दूरस्थ शेर की दहाड़ सुनी। हाथी को डर लगा और वह तेज़ी से वहाँ से चला गया। लड़का लता की सहायता से, ऊपर चढ़ने लगा। वह गड्ढे के शीर्ष तक पहुँचने वाला ही था कि वह लता टूट गई। परन्तु, किसी तरह, वह गड्ढे के किनारे को पकड़ने में सफल रहा।

कुछ ही पलों में उसे लगा कि उसके हाथ फिसल रहे हैं। हालाँकि, तब उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब उसने पाया कि वह उस वनरक्षक द्वारा उठाया जा रहा था, जिसने उसे परामर्श दिया था कि वह उस क्षेत्र में न जाए। वनपाल ने लड़के से कहा, “जब मैंने हाथी की चिंघाड़ने कि ध्वनि सुनी, तो मुझे पता था कि हो न हो, तुम किसी विपत्ति में पड़ गए हो। मैं इस वनक्षेत्र से तुम जैसे लोगों की तुलना में कहीं अधिक सुपरिचित हूँ। इसलिए, मैं तुम्हारी सहायता के लिए झटपट उसी दिशा में आगे बढ़ा जिसमें कि तुम गए थे। लगता है कि मैं ठीक समय पर आ पहुँचा हूँ।”

उस लड़के ने उसे भूरि-भूरि धन्यवाद दिया। अभी भी सोने की लालसा से ग्रसित, उसने अपने उस वनक्षेत्र में आने के कारण का विवरण दिया और उस वनवासी से उस क्षेत्र में उस बरगद के वृक्ष का पता लगाने के लिए सहायता माँगी। उसके त्राता ने ऐसा कहकर कि उसे वहाँ कोई सोना मिलने वाला नहीं है, उसे उस मदवाले हाथी के आ जाने से पहले, घर वापस लौटने के लिए समझाने का प्रयास किया। परन्तु, उस किशोर को अडिग पाकर, वह उसे बरगद के वृक्ष तक ले गया। उन दोनों ने वहाँ पर सोने के लिए बहुत ढूँढा, परन्तु उन्हें कोई सफलता हाथ नहीं लगी।

अन्त में, वह लड़का अपने वतन लौट आया। उसने इस दुस्साहस का पूरा विवरण अपने एक ज्येष्ठ को सुनाया। उस ज्येष्ठ ने हँसते हुए उसे बताया कि जो उसने संयोग से सुन लिया था, वह तो एक प्रतियोगिता के लिए लड़कों के एक समूह द्वारा लिखी गई केवल एक कहानी का एक भाग था। फ़िर, उसने उस लड़के को यह भी बताया, “तुमने ऐसा सोचा था कि बन्दर और मेढक ने अपनी लालसा के कारण मूर्खतापूर्ण व्यवहार किया था। तुम्हारा व्यवहार तो उससे भी बहुत हीनतर था। वह बेचारा बन्दर तो उस फल को नहीं छोड़ पाया, जोकि उसके हाथ में था। वहीं दूसरी ओर, तुम उस सोने की तीव्र लालसा के वशीभूत थे, जोकि वास्तव में अस्तित्वहीन था। उस मेढक ने अपने मृत्यु के समय, अपनी जीभ को बढ़ाया, परन्तु सम्भवतः केवल प्रवृत्तिवश ऐसा किया। वहीं दूसरी ओर, तुम्हारे एक विवेक-सम्पन्न मनुष्य होने पर भी, जब तुम मरने ही वाले थे, तब तुमने अपनी नाक पर गिरने वाली मधु की बूँद का स्वाद चखा। लालसा की शक्ति देखो।”

लड़के को लालसा की विनाशकारी शक्ति का बोध हुआ और उसने अपना सिर लज्जा से झुका लिया।

2. इन्द्रिय-विषयों के प्रति आसक्ति से सङ्कट

हिरण का पीछा करते समय एक आखेटी शङ्ख बजाता है। शङ्ख की वह ध्वनि हिरण को मोहित कर देती है और वह कुछ समय रुक जाता है। इस अवसर का लाभ उठाकर, आखेटी उस हिरण को मार देता है। इस प्रकार, वह हिरण ध्वनि के प्रति अपने आकर्षण के कारण, अपना जीवन खो बैठता है।

एक हाथी को फँसाने के लिए, लोग उसे पहले से खोदे गए और घासफूस के छलावरण से ढँके गए गड्ढे की जाल तक फुसलाकर, उस गड्ढे में गिरवाते हैं और फ़िर, बाँध देते हैं। इस पर भी वह हाथी अदम्य और हठीला बना रहता है। इसे पालतू बनाने और प्रशिक्षित करने के लिए, वे एक भली प्रकार से प्रशिक्षित हथिनी को इसके पास भेजते हैं। हथिनी के अपने सम्पर्क में आते ही, वह हाथी प्रसन्न हो जाता है और नरम बन जाता है। उसके विनम्र बन जाने पर लोग उसे प्रशिक्षण देना प्रारम्भ करते हैं और उससे अपने कार्य करवाते हैं। इस प्रकार, एक हथिनी के स्पर्श के प्रभाव से झुककर एक हाथी अपनी स्वतन्त्रता खो बैठता है।

जब दीया जलाया जाता है, तो कीट-पतङ्गे लौ के रूप में आकर्षित हो जाते हैं। वे उस ज् वाला में घुसते हैं और जलकर मर जाते हैं। इस तरह, रूप के प्रति कीड़ों के सम्मोहित होने के कारण, उनका विनाश हो जाता है।

एक मछुआरा अपनी कांटी के छोर पर कीड़े को फँसाकर, उसे जल में फेंक देता है। एक मछली, कृमि के कल्पित स्वाद से आकर्षित होकर, उस कांटे को मुँह से काटती है और फँस जाती है। परिणामस्वरूप, मछली अपने जीवन से हाथ धो बैठती है।

एक मधुमक्खी कमल पर बैठ गई और मकरन्द चूसने लगी। सन्ध्या ढलते ही, कमल अपनी पङ्खुड़ियों को समेटकर बन्द करने लगा। कमल की सुगन्ध से मोहित होकर, वह मधुमक्खी नहीं उड़ी। “रात में कमल मुरझा जाता है, परन्तु यह रात अवश्य बीत जाएगी और फ़िर सूर्योदय तो होने वाला ही है। भोर होते ही, कमल खिल जाएगा। मैं तब बच सकती हूँ” — ऐसा उस

मधुमक्खी ने सोचा। दुर्भाग्य से, उस रात, हाथियों का एक झुण्ड उसी कमल वाले सरोवर में आया और जल में खेलने लगा। हाथी अपनी सूँड़ों से सरोवर के कमलों को पकड़कर चारों ओर जोर से फेंकने लगे। इसका प्रभाव यह हुआ कि मधुमक्खी मर गई।

इन प्राणियों में से प्रत्येक, किसी न किसी इन्द्रिय-विषय के प्रभाव में आने के कारण नष्ट हो गया। वहीं दूसरी ओर, मनुष्य तो मनभावन ध्वनियों, सुखद स्पर्श, सुन्दर रूपों, स्वादिष्ट व्यञ्जनों और सुगन्धों से आकर्षित होता है। इसलिए, उसे बहुत सतर्क रहना चाहिए और अपनी इन्द्रियों को नियन्त्रण में रखना चाहिए। अन्यथा, वह विपत्ति को निमन्त्रण दे रहा होगा।

भर्तृहरि ने कहा है, “आग की जलाने की शक्ति से अनभिज्ञ होने के कारण, पतङ्गों को ज् वाला में प्रवेश करने दें। एक मछली को अपनी अज्ञानता के कारण, चारा सहित कांटे को काटने दें। हालाँकि, हम विषयभोग की वस्तुओं को त्यागने से पीछे हटते हैं, भले ही हम जानते हैं कि वे बहुत पीड़ाकारक हैं। हाय! भ्रम का प्रभाव कितना अभेद्य है!”

3. कामवासना विनाशकारी है

सुन्द और उपसुन्द नाम के दो राक्षस भाइयों ने घोर तपस्या की। उस तपस्या के फलस्वरूप, भगवान ब्रह्मा जी उनके समक्ष प्रकट हुए और उनसे पूछा कि उन्हें क्या वरदान चाहिए। राक्षसों ने उत्तर दिया, “हम दोनों सदैव जीना चाहते हैं।” ब्रह्मा जी बोले, “किसी व्यक्ति के लिए मृत्यु से पूरी तरह से बचना असम्भव है।” फ़िर उन्होंने माँगा, “हमें मरना ही हो, तो हमें ही अपनी मृत्यु का कारण बनना चाहिए।” उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली गई। सुन्द और उपसुन्द ने सोचा, “हम दोनों का एक दूसरे के प्रति बहुत अनुराग है। हम कभी आपस में नहीं झगड़ेंगे; तो, मृत्यु हमारे पास नहीं आ सकती।”

उन दोनों भाइयों ने लोगों को आतन्कित करना प्रारम्भ कर दिया। इन्द्र, अन्य लोगों के साथ, ब्रह्मा जी के पास गए और उन्होंने उनसे उन राक्षसों से छुटकारा दिलाने का अनुरोध किया। ब्रह्मा जी ने दिव्य वास्तुकार विश्वकर्मा को एक आकर्षक युवती बनाने का निर्देश दिया। फ़िर, सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा जी ने उस मनमोहिनी अप्सरा तिलोत्तमा को सुन्द और उपसुन्द के पास भेजा।

तिलोत्तमा को देखते ही वे दोनों उसे पाने की उत्कट इच्छा की पकड़ में आ गए। सुन्द ने कहा, "वह मेरी है, क्योंकि मैंने उसे पहले देखा है।" "नहीं, नहीं," उपसुन्द चिल्लाया, "मैंने उसे पहले छुआ। वह अनन्य रूप से मेरी ही होने योग्य है।" उन दोनों को वाग्युद्ध में लगे देखकर, तिलोत्तमा ने कहा, "मैं तो उसी भाई से विवाह करूँगी जो अधिक बलवान होगा।" सुन्द और उपसुन्द कामवासना से इतने अन्धे हो गए थे कि वे एक-दूसरे पर झपट पड़े। एक भयङ्कर लड़ाई छिड़ गई। उसके अन्त में, दोनों भाई मृत पड़ गए।

कोई व्यक्ति कितना भी शक्तिशाली क्यों न हो और उनसे चाहे कितनी ही तपस्या क्यों न कर ली गई हो, यदि वह कामी और अभिमानी है तो उसका पतन सुनिश्चित है।

4. लालसा का छलपूर्ण आक्रमण

एक ब्रह्मचारी एक महान प्रबुद्ध योगी के आश्रम में शिष्य के रूप में रहता था। उसका आशय योग में निपुण बनने और अपना अधिकांश समय निर्विकल्प-समाधि के आनन्द में बिताने का था। एक दिन, योगी अपने शिष्य से यह कहकर कहीं बाहर गए कि वे कुछ दिनों बाद वापस लौटेंगे। उस सन्ध्या, ब्रह्मचारी नदी में जल लाने के लिए निकला। वहाँ उसने सिसकती हुई एक किशोरी को देखा। उसने उससे पूछा कि उसकी पीड़ा क्या है।

वह बोली, “मैं नदी के दूसरे किनारे पर यहाँ से दो मील दूर स्थित गाँव की रहने वाली हूँ। आज बड़े सबेरे, मैं और मेरी सहेलियाँ नदी के इस किनारे के एक गाँव में हो रहे एक समारोह में भाग लेने निकल पड़े। हमारे लौटते समय, हम एक उपवन के पास रुके। एक तितली ने मेरा ध्यान खींच लिया। मेरे मन में यह इच्छा उत्पन्न हो गई कि मैं उसे अपने हाथों में पकड़ लूँ। इसलिए, मैं उस फूल के पास चली गई जहाँ वह बैठी थी। तभी वह उड़ गई और मेरी मुट्ठी की पहुँच से दूर चली गई। मैंने तब तक उसका पीछा किया जब तक कि वह किसी दूसरे पौधे पर नहीं बैठी। दोबारा, मैंने उसे पकड़ने का प्रयास किया, परन्तु असफल रही। उसका इसी प्रकार असफलतापूर्वक पीछा करती हुई, मैं अपनी सहेलियों की दृष्टि से दूर हो गई। कुछ समय पश्चात्, मैंने हार मान ली और थकान अनुभव करती हुई, बैठ गई।

“न चाहते हुए, मैं सो गई। मैंने अवश्य ही एक घंटे की नींद ली होगी। जब मैं जागी, तो पाई कि सूरज डूब चुका है। मैं वहाँ भागी जहाँ मेरी सहेलियाँ बैठी थीं, परन्तु वहाँ कोई न मिली। मैंने पूरे क्षेत्र में उनका अन्वेषण किया, किन्तु उनका पता नहीं लगा पाई। मेरा अनुमान यह है कि कुछ समय मेरी प्रतीक्षा करने के बाद, उन्होंने मुझे पुकारा होगा। वे इस बात से अनजान थीं कि मैं तितली के पीछे चली गई थी। परन्तु वे जानती थीं कि मैं आसानी से गृहातुर हो जाती हूँ। इसलिए, यह मानकर कि मैं अकेले ही घर पहुँचने के लिए पहले निकल गई हुई होऊँगी, वे घर की ओर वापस लौट गई होंगीं। मेरा अनुमान है कि यही हुआ होगा। मैं इस सोच से घबरा गई थी कि मुझे पीछे छोड़ दिया गया है। मुझे यह लगा कि घर की ओर आगे बढ़ने के लिए अब बहुत विलम्ब हो चुका है। इतना ही नहीं, जब मैं वापस नदी की ओर भागी, तो नाविक कहीं नहीं दिख रहा था। वह घर चला गया होगा। अब अँधेरा छा रहा है और स्पष्ट रूप से, मैं यहाँ रात नहीं बिता सकती। वहीं दूसरी ओर, मैं घर भी नहीं जा सकती। इसलिए, मैं असहाय और दुःखी अनुभव कर रही हूँ।”

ब्रह्मचारी को उस पर दया आ गई। उसने उस किशोरी से कहा, “तुम चाहो तो जिस आश्रम में मैं रहता हूँ, वहाँ चलकर रात बिता सकती हो और कल बड़े सबेरे निकल सकती हो।” लड़की आभारी, परन्तु सावधान, दिखाई दी।

"आश्रम में कौन-कौन रहते हैं?" उसने पूछा। "मेरे गुरु और मैं," ब्रह्मचारी ने उत्तर दिया, "परन्तु वर्तमान में, मेरे गुरु कहीं और चले गए हैं और कुछ दिनों बाद ही वापस लौटेंगे।" लड़की बोली, "ऐसी स्थिति में क्या मेरा वहाँ आना उचित होगा? मुझे सन्देह है।" ब्रह्मचारी हँसा और घोषणा की, "डरो मत। मैंने आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत पालन करने की प्रतिज्ञा ली है। कामुक इच्छाओं का मेरे मन में कोई स्थान नहीं है और मेरा वैराग्य अडिग है। यहाँ तक कि अप्सरा उर्वशी भी मुझे लुभा नहीं सकती। इसलिए, तुम मेरे साथ बिना किसी हिचकिचाहट के आ सकती हो।" "मेरी सहायता करने का प्रस्ताव करने के लिए बहुत बहुत धन्यवाद," लड़की ने उत्तर दिया और निःसंकोच उसके साथ चल पड़ी।

आश्रम में उसने उस किशोरी को फल दिए। फ़िर उसने उस किशोरी से कहा, "इस उपलब्ध एकमात्र कमरे में तुम अकेले रात बिताओ, जबकि मैं बाहर खुले में सो जाता हूँ।" उस किशोरी ने उसके प्रति पुनः अपनी कृतज्ञता प्रकट की और किवाड़ बन्द कर ली। ब्रह्मचारी ने अपनी कुश की चटाई भूमि पर बिछा दी और सोने के लिए लेट गया। आधे घंटे में, बूँदा-बाँदी होने लगी। ब्रह्मचारी जाग गया और द्वार खटखटाया। लड़की ने द्वार खोला। ब्रह्मचारी ने उस लड़की को सूचित किया कि रिमझिम वर्षा होने के कारण, वह अन्दर सोना चाहता है। उसने उस लड़की से कहा कि वह अपना कुश का बिछौना कमरे के एक किनारे ले जाए और उसने दूसरी ओर अपनी चटाई बिछा दी। वह उस लड़की की ओर पीठ करके लेट गया।

कुछ ही मिनटों में, बूँदा-बाँदी घनघोर बरसात में बदल गई। ब्रह्मचारी के पास खिड़की के माध्यम से स्पष्ट रूप से दिखाई देने वाली बिजली की अनवरत चमक ने उसे सोने से रोक दिया। इसलिए उसने खिड़की से मुँह फेर लिया। अब वह उस लड़की को देख सकता था और उसने यह पाया कि वह काँप रही है। "बेचारी लड़की, उसका दिन बुरा रहा और अब वह रात को अच्छी नींद भी नहीं ले सकती। मुझे उसकी सहायता करनी चाहिए," उसने सोचा। उसने उसके कन्धे पर थपथपाया और कहा, "मेरे पास एक कंबल है। चलो इसे साझा करें।" वह उसे कंबल देकर बिना

कंबल के नहीं रहा, क्योंकि उसे लगा, “ठण्ड बढ़ती ही जा रही है। बिना कंबल के मैं सो नहीं सकता। यदि मैं आज रात जागता रहा, तो मुझे प्रातःकाल उनींदा लगेगा और मेरे ध्यानाभ्यास में बाधा पड़ेगी। निश्चय ही, कल का ध्यान, इस कन्या के पार्श्व में सोने की असुविधा से अधिक महत्त्वपूर्ण है। किसी भी स्थिति में, उसका शरीर मेरे लिए एक लकड़ी के लट्ठे से अधिक प्रलोभक नहीं है।” लड़की ब्रह्मचारी के प्रस्ताव पर आश्चर्यचकित हुई; फ़िर भी उसने कोई आपत्ति नहीं जताई। इसलिए, वे शीघ्र ही एक कंबल साझा कर रहे थे।

लड़की के शरीर के सम्पर्क में आने के कुछ समय बाद, ब्रह्मचारी ने कामुक विचारों को फूटते अनुभव किया। हालाँकि, वह नहीं घबराया। उसने स्वयं से कहा, “कई ऐसे अवसर थे जब मुझे भूख लगी थी और पार्श्व में रखे फल खाने की इच्छा हुई थी, परन्तु मैंने ऐसा करने से अपने आप को आराम से रोक लिया था। उसी तरह, कई बार मेरे मन में क्रोध भड़क उठा था। तब भी मैं न केवल कठोर शब्दों को बोलने से दूर रहा हूँ, अपितु मैं चुप भी रहा हूँ। निश्चित रूप से, ये यौन विचार मुझे कुछ भी अनुचित करने के लिए प्रेरित नहीं कर सकते।” तथापि, कुछ ही मिनटों में, कामुक इच्छाएँ तीव्र हो गईं। उस लड़की के साथ समागम की उत्कट लालसा से प्रेरित होकर, उसने अपनी बाँह से उसे घेर लिया।

जिस क्षण उसने ऐसा किया, उसे अपने जीवन का सदमा लगा। उस किशोरी के स्थान पर उसने अपने गुरु को पाया। कुछ क्षण के लिए तो ब्रह्मचारी इतना स्तब्ध रहा कि हिल भी न सका। उसका मुखमण्डल लज्जा के मारे लाल हो गया था। फ़िर वह शीघ्रता से उठा और अपने गुरु के चरणों में साष्टाङ्ग प्रणाम किया। योगीजी ने उससे कहा, “मैंने तुमसे बार-बार कहा कि तुम अभी जीवन्मुक्त (जीवित रहते हुए संसार बन्धन से मुक्त) नहीं हुए हो; तुम्हें अपने ब्रह्मचर्य को असावधानी में नहीं लेना चाहिए। हालाँकि, मेरे शब्द तुम्हारे पल्ले नहीं पड़े। ऐसा इस कारण से हुआ कि तुम सुनिश्चित थे कि तुम लुभाए नहीं जा सकते हो। एक अलग विकल्प के माध्यम से, मैंने तुम्हें

बन्दरों के एक समूह की टोली की कथा सुनाकर अवगत कराने का प्रयास किया था, जिसने एकादशी के दिन उपवास रखने का निर्णय किया था। क्या तुम्हें उसकी स्मृति है?" अपने गुरु के शब्दों को सुनते ही, योगीजी ने ब्रह्मचारी को जो कहानी सुनाई थी, वह उसके मन में आ गई।

बन्दरों का एक झुण्ड एक जंगल में रहता था। एक दिन, उनके नेता ने घोषणा की, "मनुष्य एकादशी के दिन उपवास रखते हैं और ऐसा करके पुण्य कमाते हैं। हम भी एकादशी के अवसर पर व्रत करेंगे।" अतः अगली एकादशी के अवसर पर, सभी इकट्ठे हुए और भूमि पर बैठ गए। कुछ समय बाद, उनमें से एक ने कहा, "हम यहाँ भूमि पर अचल बैठे हुए असुरक्षित हैं। यहाँ से होकर जाता हुआ हाथियों का झुण्ड हमें रौंद सकता है। यह भी सम्भव है कि यहाँ से होकर जाता हुआ कोई बाघ हम पर झपट्टा मार दे। और तो और, चूँकि हम वृक्ष-निवासी हैं, निरन्तर भूमि पर रहना हमारे लिए असुविधाजनक है। अतः, क्यों न हम पेड़ों के तनों पर चढ़ जाएँ और शाखाओं के मूल में बने रहें? इससे हम और अधिक सुरक्षित रहेंगे और साथ ही, शाखाओं के अन्तिम भाग में लगे फलों से दूर भी रहेंगे।" उसका सुझाव सभी को अच्छा लगा और उन्होंने उस सुझाव को कार्यान्वित कर दिया।

कुछ समय बीता। दूसरा बन्दर बोला, "कोई चीता हम पर यहाँ आक्रमण कर सकता है। यदि हम शाखाओं के अन्तिम छोर पर चले जाते, तो हमारे लिए और अच्छा होगा। चीते वहाँ न आ सकेंगे क्योंकि वह भाग उनके भार को नहीं वहन कर पाएगा। इसके अतिरिक्त, हम अगले वृक्ष पर कूदकर आसानी से स्वयं को बचा सकते हैं। हम स्वयं को साँपों से भी आसानी से बचा सकते हैं। हम फलों की ओर पीठ करके, भूमि और पेड़ों के तनों पर ध्यान लगाए हुए बैठ सकते हैं।" इस विचार को भी सभी ने सराहा और तुरन्त इसे लागू किया।

कुछ और वक्त बीता। तब एक बन्दर ने कहा, "निरन्तर भूमि को देखते रहना बहुत उबाऊ है। क्यों न हम बारी-बारी से विपत्ति को चिह्नित कर लें? हममें से शेष लोग चारों ओर देखने के लिए स्वतन्त्र हो सकें और अपनी

ऊबन टाल सकें। निश्चित रूप से, कोई व्रत तोड़ा नहीं जाएगा, भले ही हमारी दृष्टि क्षणमात्र के लिए फलों पर क्यों न पड़ जाए।" "हाँ, सही है," दूसरों ने माना। शीघ्र ही वे बार-बार फलों पर अपनी दृष्टि लगा रहे थे।

अधिक समय नहीं बीता कि एक बन्दर ने अपना मन्तव्य दिया — "जब हम यहाँ बैठे हैं, हम फलों के विषय में यह जानने के लिए निरीक्षण कर सकते हैं कि कौन से फल पक गए हैं और रसीले हैं। यह कार्य कल हमारे आहार ढूँढने को सरल बना देगा। अन्ततोगत्वा, हम तब भूखे रहेंगे और खाने के लिए सही फल चुनने में अधिक समय नहीं लगाना चाहेंगे।" अस्वीकृति की कोई ध्वनि सुनाई न पड़ी। शीघ्र ही, बन्दर फलों को छूने लगे और उनके हाथ अच्छे वाले फलों पर कुछ समय तक रुकने लगे।

तब एक बूढ़े बन्दर ने कहा, "हम कल प्रातःकाल न केवल भूखे होंगे, किन्तु निर्बल भी। तब चारा खोजने के लिए निकलना कठिन होगा। अतः, आइए हम अच्छे फल अभी तोड़ लें और उन्हें कल खाए जाने के लिए उपयुक्त रखें।" "एक बुद्धिमत्तापूर्ण सुझाव" — ऐसा दूसरे बन्दरों ने सोचा और फल तोड़ना प्रारम्भ कर दिया।

कुछ समय बाद, एक दूसरा बूढ़ा बन्दर बोला, "अच्छे फलों को मात्र हाथों से छूकर और परखने से ही नहीं पहचाना जा सकता। उन्हें सूँघना भी आवश्यक है। वैसे भी, कोई फल छूने में तो अच्छा लग सकता है, परन्तु उसकी गन्ध बुरी हो सकती है। निश्चय ही, हम सभी बदबूदार फल को खाना नहीं चाहेंगे।" दूसरे वानर भी सहमत हो गए। अतः, वे सब के सब तोड़े हुए फलों को सूँघने लगे, और जिनकी गन्ध उन्हें अच्छी न लगी, उन्हें फेंक देने लगे।

कुछ और समय बीता। एक और बूढ़े बन्दर ने कहा, "अपने अनुभव से तो मैं यह जानता हूँ कि यहाँ तक कि कोई अच्छा दिखने वाला, छूने में अच्छा लगने वाला और सुगन्धित फल भी अन्दर से सड़ा हुआ अथवा कीड़ा लगा हुआ हो सकता है। इसलिए, यह निश्चित करने के लिए कि हम जो फल कल खा रहे होंगे, वे सच में अच्छे हों, यह आवश्यक है कि हम प्रत्येक फल को

दाँतों से काटकर चखें। निश्चित रूप से, कल प्रातः हम दोषपूर्ण फलों को खाकर पेट में पीड़ा नहीं झेलना चाहते हैं। हमारा एकादशी-व्रत अटूट बना रहेगा, भले ही हम में से प्रत्येक बन्दर फल के एक टुकड़े को यह ध्यान रखते हुए चखे कि वह टुकड़ा उसके द्वारा निगला न जाए।" यह सुझाव बुद्धिमानी-भरा माना गया और लागू भी हो गया।

परन्तु, कुछ ही क्षणों में, बन्दरों ने फलों के स्वादिष्ट टुकड़ों को गटकना प्रारम्भ कर दिया और उसी से उनका उपवास समाप्त हो गया।

अपने शिष्य को कहानी का स्मरण दिलाकर, योगीजी ने कहा, "मैंने यह समझ लिया था कि इस कहानी का भी तुम पर कोई प्रभाव नहीं हुआ है। अन्ततः, तुम्हें मार्ग दिखाने के लिए, मैंने अपनी योगशक्ति का प्रयोग किया और तुम्हारे समक्ष एक किशोरी के रूप में प्रकट हो गया। फ़िर जो कुछ हुआ, उससे तुम भली-भाँति परिचित हो।" वे बोलते रहे, "मन को अस्थिर करने में इन्द्रियों की शक्ति को कम आँकना, अपने कृत्यों का त्रुटिपूर्ण प्रकार से स्वयं ही पुष्टि करना, अति-आत्मविश्वास रखना और वहाँ समझौता कर लेना जहाँ नहीं होना चाहिए — ये उन कारकों में से हैं जो व्यक्ति का नैतिक अथवा आध्यात्मिक पतन कराते हैं।" ब्रह्मचारी ने अपना पाठ सीख लिया।

5. क्रोध की हानिकारिता

शङ्कर और हरि एक पाठशाला में संस्कृत साहित्य के आवासीय छात्र थे। वे दो अन्य विद्यार्थियों के साथ एक कक्ष में रहते थे। वह पूर्णिमा का दिन था। उस दिन अनध्याय था और छात्र अपने अपने कमरों में थे। कमरे के एक कोने में बैठा हुआ शङ्कर, महाकवि कालिदास के रघुवंश के उस अंश को पढ़ रहा था जिसे उसे उसके गुरुजी ने दो दिन पहले पढ़ाया था। हरि और उसके कमरे में रहने वाले अन्य दोनों मित्र आपस में बातें कर रहे थे।

हरि - क्या तुमने किसी हाथी के बारे में सुना है जो कि चूहों से डरता हो और जो किसी चूहे के दिख जाने पर कूदता हो, दौड़ता हो और धरती पर भूचाल मचा देता हो?

साथी - नहीं।

हरि - मैं एक ऐसे हाथी को जानता हूँ। ऐसा हाथी है शङ्कर! वह इतना मोटा है कि उसका भार लगभग एक हाथी के समान होगा। वह चूहों से तो बहुत डरता है। कल सन्ध्या, जब वह पीपल के पेड़ के नीचे बैठा था, तभी पास से एक चूहा निकला। हमारा हाथी तो कूद पड़ा और भाग लिया। तभी वह एक केले के छिलके पर फिसल गया और गिर पड़ा। एक छोटा सा भूकम्प ही हुआ। बेचारी धरती माता! उसे कितनी चोट लगी होगी!

हरि और उसके मित्र ठठाकर हँसने लगे। शङ्कर, जो वहाँ बैठा सब सुन रहा था, क्रोधित हो गया। उसका मुखमण्डल लाल हो गया और साँसें चढ़ गईं; उसने हरि को झिड़ककर अपशब्द कहे। हरि मुड़ा और कमरे से बाहर चला गया। कुछ मिनटों के बाद, शङ्कर के दूसरे दोनों मित्र भी किसी काम से कमरे से बाहर चले गए।

जैसे ही वे दोनों बाहर गए, शङ्कर दबे पाँव कमरे में हरि वाले कोने में गया, उसने हरि की रघुवंश पुस्तक उठाई, उसे छिपा दिया और फ़िर से अपने स्थान पर बैठ गया। हरि ने प्रवेश किया। वह अपनी पुस्तक के न मिलने पर व्याकुल हो उठा, परन्तु उसने कुछ नहीं कहा। उसने अपने आप मान लिया कि यह तो शङ्कर की ही करतूत है। अतः, जब शङ्कर लघुशङ्का के लिए बाहर गया, तब हरि ने जल ले आकर शङ्कर की खाट पर डाल दिया। जब शङ्कर लौटा, तब उसने नहीं पहचाना कि उसकी अनुपस्थिति में क्या हो गया था।

हरि और शङ्कर को पढ़ाने वाले एक शिक्षक ने हॉल से वह सब देखा जो हुआ था। वे कमरे में आए। दोनों लड़कों ने उन्हें प्रणाम किया। वे बैठ गए और उन दोनों को भी बैठने को बोले। फ़िर, उन्होंने दोनों को एक कहानी सुनाई।

शिक्षक - कँपकँपाती हुई जाड़े की एक रात में, एक व्यक्ति अपने शरीर को गर्म रखने के लिए, कंबल ओढ़कर सो रहा था। तभी जब उसे ऐसा अनुभव हुआ कि उसके टखनों के पास कुछ घूम रहा है, वह उठ गया। मन्द प्रकाश में उसे ऐसा लगा कि वहाँ कोई चूहा है। बिना विचार किए, उसने अपने पास में रखी पानी की बोतल उठाई और उस चूहे की ओर दे मारी। उस बोतल से चूहे की पूँछ तो छिल गई, साथ ही वह उस व्यक्ति के पैर से टकराकर टूट गई। वह वेदना से कराह उठा और उसका बिछौना भी गीला हो गया। उसने चूहे को अपशब्द कहते हुए चारों ओर ढूँढ़ा। उसने उस चूहे को एक कोने में छिपा हुआ पाया जो उससे बहुत दूर न था। चूहे को मार डालने की इच्छा से, उसने तेज़ी से अपना हाथ चलाया और उस चूहे की पूँछ को हाथ से पकड़ लिया। भाग जाने के लिए आतुर, उस चूहे ने उसे दाँतों से काँटा। तीव्र वेदना का अनुभव करते हुए, उस व्यक्ति ने अपनी पकड़ ढीली कर दी। चूहा भाग गया। अच्छा, शङ्कर, अब बताओ कि उस व्यक्ति के विषय में तुम क्या सोचते हो?

शङ्कर - वह तो एकदम मूर्ख था।

शिक्षक - तुमने ऐसा क्यों कहा?

शङ्कर - उस व्यक्ति ने उस चूहे को बोतल से मारना चाहा, जोकि उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए निश्चित रूप से उचित निर्णय नहीं था। वह यह नहीं समझ पाया कि इस क्रिया के फलस्वरूप, वह स्वयं को ही घायल कर बैठेगा और चूँकि उसका बिछौना भीग जाएगा, इसलिए वह आराम से सो भी नहीं पाएगा। चूहे को पूँछ से पकड़ना भी एक मूर्खतापूर्ण कृत्य था, क्योंकि वास्तव में इससे उसने ही चूहे को उसे दाँतों से काटने को विवश किया।

शिक्षक - जब हरि ने तुम्हारी हँसी उड़ाई, तब तुम स्वयं पर ही हँस सकते थे। नहीं तो तुम पूरे विषय को ऐसा विचार कर छोड़ सकते थे — "मैं मोटा तो हूँ सही। यह भी सच है कि मुझे चूहों से डर लगता है, और तो और, कल ही, चूहे को देखते ही, मैं कूद उठा, भागा और गिर भी गया। हरि का कहा हुआ यद्यपि व्यंग्यात्मक अतिशयोक्ति था, तथापि असत्य तो नहीं था।" इसके बदले, तुम तो अपने आप को ही खो बैठे। ठीक वैसे ही जैसे कहानी के उस व्यक्ति को चूहे ने विक्षुब्ध कर दिया था, हरि के उपहास ने तुम्हें व्याकुल कर दिया। बोतल

ने उस व्यक्ति को चोटिल किया और उसकी शय्या को भिगा दिया। तुम्हारे क्रोध ने भी तुम्हें दो प्रकार से प्रभावित किया।

शङ्कर - सो कैसे?

शिक्षक - क्या तुमने क्रोध में हरि को जो कुछ कहा, उन सभी से तुम तात्पर्य रखते हो?

शङ्कर - नहीं, मैं तो इतना भड़क गया था कि तर्कसङ्गत ढंग से सोचकर, अपने शब्दों का चयन नहीं कर पाया।

शिक्षक - तर्कपूर्वक सोचने और बुद्धिमत्ता से कार्य करने की क्षमता मनुष्य की बहुत मूल्यवान सम्पत्ति है। तुमने अस्थायी रूप से वह क्षमता खो दी थी। क्या ऐसा नहीं हुआ था?

शङ्कर - मैं स्वीकार करता हूँ कि मैंने अपनी तर्कसङ्गत विवेचन की क्षमता तब खो दी थी।

शिक्षक - वह तुम्हारी एक बड़ी तात्कालिक असफलता थी ठीक उस व्यक्ति के पैर पर चोट लगने के समान। हरि को भलाबुरा कहने के बाद, तुम अपने अध्ययन को चालू रखना चाहते थे। क्या तुम पहले जैसे ही पढ़ाई पर ध्यान एकाग्र रख पाए?

शङ्कर - कुछ समय के लिए तो ऐसा नहीं कर सका। मेरा मन उत्तेजना से भर उठा था और हरि द्वारा मेरे मित्रों की उपस्थिति में मेरी खिल्ली उड़ाए जाने का विचार बार-बार आता ही रहा।

शिक्षक - जैसे वह व्यक्ति उस रात आराम से सो नहीं पाया क्योंकि शय्या गीली हो गई थी, ठीक वैसे ही तुम भी अपनी मानसिक उत्तेजना के कारण कुछ समय के लिए अपनी पढ़ाई पर ध्यान नहीं केन्द्रित कर पाए। वह व्यक्ति अपने द्वारा बोतल फेंके जाने के फल को समझ नहीं पाया। उसने केवल यही सोचा कि उसे उस चूहे से छुटकारा मिलने वाला है। तुम अपने क्रोध के फल के बारे में न सोच सके। तुम केवल हरि को नीचा करना चाहते थे। क्या तुम सहमत हो?

शङ्कर - हाँ।

शिक्षक - हरि, शङ्कर को बताओ कि तुमने उसके बिछौने के साथ क्या और क्यों किया है।

हरि - शङ्कर, तुमने मेरी पुस्तक छिपाई थी। उसके प्रतिकार में, मैंने तुम्हारे बिछौने पर पानी डाल दिया।

शिक्षक - चूहे से खीझकर, उस व्यक्ति ने चूहे की पूँछ को पकड़ लिया था और चूहे ने उस व्यक्ति को काट लिया था। हरि के द्वारा चिढ़ाए जाने पर, उसे दण्ड देने के लिए तुमने उसकी पुस्तक छिपा दी। चूँकि तुमने ऐसा किया, इसलिए अब तुम्हारी शय्या गीली है।

शङ्कर - मैं अब स्पष्ट देख पा रहा हूँ कि उस मूर्ख व्यक्ति और मुझमें बहुत समानता है।

शिक्षक - मैं यह जानता हूँ कि क्रोध तुम्हारी नाक पर रहता है। अपने आपको बदलने का प्रयास करो। स्मरण रखना, क्रोध उसी व्यक्ति के लिए हानिकारक होता है जो उसे स्थान देता है। यह अस्थायी रूप से उसे तर्कसङ्गत सोच और समझदार व्यवहार के अपने बहुमूल्य ईश्वर प्रदत्त उपहार से वञ्चित करता है। वह मन को उत्तेजित कर देता है एवं शान्ति को नष्ट कर देता है। वह न्यूनतम मात्रा में भी प्रसन्नता नहीं देता है। क्रोधित होने पर, कोई भी व्यक्ति प्रसन्न नहीं होता है। भगवान कृष्ण ने क्रोध को नरक के द्वारों में से एक बताया है।

शङ्कर - यदि मैं क्रोध करना छोड़ दूँ तो क्या लोग मेरी परिणामी विनम्रता का बुरा लाभ नहीं उठाएँगे?

शिक्षक - व्यक्ति को धैर्य रखना चाहिए और गुस्से को अवसर नहीं देना चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं है कि वह लोगों को अपने ऊपर धमधमाने दे। वह अडिग रह सकता है और यहाँ तक कि जब स्थिति के अनुसार आवश्यक हो, तब कड़े मौखिक उत्तर दे सकता है। एक अधिकारी उस आलसी व्यक्ति को डाँट सकता है जो कि मृदु भाषा में दिए गए निर्देशों का पालन नहीं करता हो। ऐसी स्थितियों में, क्रोध को बहाना बनाया जा सकता है, परन्तु मानसिक सन्तुलन को बनाए रखना चाहिए।

शङ्कर - क्रोध पर विजय के महत्त्व को मैं समझता हूँ और स्वयं में सुधार लाने का मैं पूरा प्रयास करूँगा।

शिक्षक - हरि, शङ्कर की खिल्ली उड़ाना या उसे भड़काना तुम्हारे लिए कदापि आवश्यक नहीं था। प्रायः, लोग निन्दा और अपमान को बुरा मानते हैं। तुमने जो किया, उसके कारण शङ्कर ने तुम्हें बहुत फटकार लगाई। उसकी डाँट ने तुम्हें चोट पहुँचाई। क्या ऐसा नहीं हुआ?

हरि - हाँ, तभी तो मैं कमरे से बाहर चला गया था। कुछ समय के लिए मुझे बहुत व्यग्र अनुभव होता रहा।

शिक्षक - शङ्कर ने मूर्खतापूर्वक तुम्हारी पुस्तक छिपा दी थी, परन्तु तुम्हारा प्रत्युत्तर भी तो विवेक-शून्य ही था। यदि शङ्कर बाद में यह जान जाता कि तुमने ही उसके बिछौने को भिगोया था, तो उसने तुम्हारे इस कृत्य के लिए तुम्हें चोट पहुँचाई होती। तुम तो महाभारत से परिचित हो। तुम जानते हो कि जब द्रोण ने द्रुपद से सहायता माँगी, तो द्रुपद ने उनका अपमान कर दिया। इसी कारण, कौरवों और पाण्डवों को प्रशिक्षित करने के उपरान्त, द्रोण ने अर्जुन के हाथों द्रुपद को बँदी बनवा लिया और उसके राज्य का आधा भाग भी ले लिया। वहीं दूसरी ओर, द्रुपद ने एक यज्ञ का आयोजन किया और एक ऐसा पुत्र पाया जोकि द्रोण का वध कर सके। महाभारत के युद्ध में जब युधिष्ठिर द्वारा यह बताए जाने पर कि उनका पुत्र अश्वत्थामा मारा गया, द्रोण ने अपने शस्त्र नीचे रख दिए, तभी धृष्टद्युम्न ने उनका वध कर दिया। इसके बाद, अश्वत्थामा ने धृष्टद्युम्न का वध करके अपने पिता की मृत्यु का प्रतिशोध ले लिया। प्रतिक्रियाओं की कैसी अनोखी शृङ्खला है!

हरि - भविष्य में मैं दूसरों की भावनाओं को ध्यान में रखने का प्रयास करूँगा और मूर्खतापूर्ण रीति से प्रतिशोध की कार्यवाही प्रारम्भ करने से दूर रहूँगा।

शिक्षक - तुम दोनों को एक-दूसरे से क्षमा माँगनी चाहिए और अपनी मित्रता यथापूर्व बनाए रखनी चाहिए।

लड़कों ने जैसा कहा गया, वैसे ही किया। तत्पश्चात्, शङ्कर ने हरि की पुस्तक लौटा दी; हरि ने शङ्कर के बिछौने को धूप में सूखने के लिए रख दिया।

क्रोध उस व्यक्ति को अनेक विधियों से हानि पहुँचाता है जो उसे स्थान देता है। जैसा कि स्वयं भगवान ने घोषित किया है, क्रोध नरक का एक द्वार है। इस प्रकार, यह सभी के लिए श्रेयस्कर है कि क्रोध को कोई स्थान न दिया जाए। व्यक्ति को धैर्य रखना चाहिए। हालाँकि, यदि स्थिति की आवश्यकता होती है, तो वह बनावटी क्रोध दिखा सकता है, तब भी उसे मानसिक रूप से उत्तेजित नहीं होना चाहिए।

6. सोच समझकर कदम उठाओ

सदियों पहले, दक्षिण भारत के एक नगर में एक युवा व्यापारी अपनी पत्नी के साथ रहता था। विवाह के बाद चार साल हो चुके थे, परन्तु उसकी कोई सन्तान नहीं थी। उसके कारोबार से उसे जो आय प्राप्त होती थी वह बहुत अधिक तो न थी, परन्तु एक सुखी जीवन जीने के लिए पर्याप्त थी। एक दिन, एक बना ठना दिखने वाला व्यक्ति — जिसे उस व्यापारी ने पहले कभी नहीं देखा था — उसके प्रतिष्ठान पर आया और उससे चर्चा करने लग गया। उस अनजान व्यक्ति ने पूछा, “तुम्हारा व्यापार कैसा चल रहा है?”

व्यापारी - अच्छे से आगे बढ़ रहा है।

अनजान - आप हीरे का व्यापार क्यों नहीं करते?

व्यापारी - यह सच है कि हमारे राज्य की राजधानी में हीरे की बहुत माँग है, परन्तु मेरे पास न तो हीरों का भण्डार है और न ही मैं किसी ऐसे व्यक्ति को जानता हूँ, जिससे मैं उन्हें ऐसे मूल्य पर क्रय कर सकूं जिससे मुझे बहुत लाभ हो।

उस अनजान व्यक्ति ने अपनी थैली से एक हीरा निकाला और व्यापारी को दिखाया। व्यापारी को हीरा चमकीला, अच्छी तरह से तराशा हुआ और प्रभावशाली लगा।

अनजान - आपको क्या लगता है कि यह हीरा कितने में बेचा जाएगा?

व्यापारी - इससे आपको राजधानी में चाँदी के 100 निष्क मिल जाएँगे।

अनजान - मान लीजिए कि आपको ये हीरे चाँदी के 20 निष्क प्रति नग की दर से मिलें तो क्या आपकी रुचि होगी?

व्यापारी - अवश्य ही, परन्तु उस मूल्य पर मुझे वे हीरे कहाँ मिल पाएँगे?

अनजान - मैं एक ऐसे व्यक्ति को जानता हूँ जो इस प्रकार के हीरे को चाँदी के 20 निष्कों में बेचता है।

व्यापारी - कृपया मुझे बताइए कि वह कहाँ रहता है?

अनजान ने उस स्थल का नाम तो बताया, परन्तु व्यापारी उस स्थल से परिचित नहीं था।

व्यापारी - वह स्थल कहाँ है?

अनजान - कश्मीर में।

उस व्यापारी का उत्साह कुछ फ़ीका पड़ गया क्योंकि कश्मीर बहुत दूर था और उसे वहाँ जाने का मार्ग भी अवगत नहीं था। "वह व्यक्ति जिसके पास हीरे हैं, अनजान व्यक्तियों से सौदा नहीं करता," वह अपरिचित व्यक्ति बोलता रहा। उस व्यापारी की आशाएँ धूमिल हो गईं। उसकी निराशा को समझकर, वह अपरिचित व्यक्ति मन्दहास सहित बोला, "आप बहुत भले व्यक्ति लगते हैं। मैं आपकी सहायता करना चाहूँगा। मैं दो दिनों में उस व्यापारी से मिलने के लिए जाने की योजना बना रहा हूँ। आप मेरे साथ क्यों नहीं आते? आप जितने हीरे चाहे उस व्यक्ति से क्रय कर सकते हैं, जिससे मैं आपका परिचय कराऊँगा। हम दोनों वहाँ एक पखवाड़े तक रुककर साथ ही वापस आ सकते हैं।" व्यापारी को इस प्रस्ताव में बहुत रुचि हो गई और उसने सीधे इस प्रस्ताव के प्रति सहमति जता दी।

व्यापारी घर आया और उसने अपनी पत्नी से बड़ी उत्सुकता से आशान्वित होकर कहा, "हम धनी बनने जा रहे हैं!" इसके बाद, उसने उस अपरिचित

व्यक्ति के प्रस्ताव का वर्णन किया। उसने कहा कि वह अपने कारोबार और चाँदी के बरतन बेचना चाहता है। बिक्री से होने वाली आय को लेकर वह दो दिनों में कश्मीर के लिए प्रस्थान करेगा। उसने यह भी कहा कि उसकी पत्नी तब तक गाँव में अपने पिता के घर में जाकर रहे और उसके लौटने की वहीं प्रतीक्षा करे। उसने विश्वास दिलाया कि वह कुछ मास बीतने पर लौट आएगा। हालाँकि, उसकी पत्नी ने उस प्रस्ताव पर उत्साह नहीं दिखाया। वह बोली, "वह व्यक्ति आपके लिए अनजान है। आप यह भी नहीं जानते कि वह विश्वसनीय है या नहीं। साथ ही, यह प्रस्ताव इतना अधिक अच्छा लगता है कि झूठा हो सकता है। अतः सम्भाव्य हानि को क्यों अवसर दें? इसके अतिरिक्त, हमारी आय हमारे लिए पर्याप्त है।"

व्यापारी सुनने की मन:स्थिति में नहीं था और उसने तुरन्त ही योजना को कार्यान्वित कर दिया। व्यापारी और अनजान व्यक्ति घोड़े पर बैठकर कश्मीर की यात्रा पर निकल पड़े। वे कुछ दिनों तक चलते रहे। एक दिन, जब वे एक जंगल से होकर जा रहे थे, तो रुके क्योंकि व्यापारी को प्यास लगी थी और वह पास में बह रही सरिता के पानी से अपनी प्यास बुझाना चाहता था। वह स्वयं को धारा में स्वच्छ करना चाहता था। वह कुछ ही समय बाद वापस आया, परन्तु अपने घोड़े, पैसे और उस अनजान व्यक्ति को वहाँ न पाकर उसे गहरा धक्का लगा। उसने उनका बहुत खोज किया, परन्तु वह असफल रहा। उसे तब पता चला कि उसके साथ छल हुआ है। बहुत उदास होकर, वह एक पेड़ के नीचे बैठ गया। उसे कुछ सूझ नहीं रहा था कि उसे क्या करना चाहिए।

कुछ समय बाद, जब वह खोया-खोया चारों ओर देख रहा था, तो जिस वृक्ष के नीचे वह बैठा था, उसके तने में उसने एक कोटर देखा। उसकी दृष्टि वहाँ एक धातु की वस्तु पर पड़ी। उसने अपना हाथ डाला और एक चाबी को बाहर निकाला। अपने हाथों में इसे घुमाता हुआ, वहाँ से लक्ष्यहीन चला गया। शीघ्र ही, वह एक पुराने छोटे भवन के समीप पहुँचा, जिसके द्वार पर ताला लगा था। बिना सोचे विचारे, उसने उस चाबी से ताला खोलने का प्रयास किया और पाया कि वह खुल गया। वह अन्दर चला गया।

वह स्थल सामान्य रूप से सुसज्जित था। उसने एक मेज पर कुछ खाने-पीने के पदार्थ पाए और तुरन्त अपनी भूख शान्त की। जब वह उस घर की जाँच कर रहा था, तो उसने बाहर से कुछ शब्द सुने। वह खिड़की के पास गया और बाहर देखा। उसने एक व्यक्ति को कटार लिए तीव्र गति से दौड़ते हुए देखा, जिसका सैनिक जैसे दिखने वाले दो सशस्त्र व्यक्ति पीछा कर रहे थे। चूँकि वह उस व्यक्ति को घर में प्रवेश करने का अवसर नहीं देना चाहता था, इसलिए उसने द्वार बन्द कर दिया। कुछ क्षण बाद, उसने जोर की चीख सुनी, जिसके बाद सन्नाटा छा गया। चूँकि वह आपत्ति से बचना चाहता था, इसलिए वह चुप और निश्चल रहा।

यूँ ही कुछ मिनट बीत जाने के बाद, उसने आराम करने का निश्चय किया और तल पर पड़े बड़े और कोमल तकिए पर सिर रखकर लेट गया। उसे अभी नींद आई ही थी कि घर के द्वार के टूटने की ध्वनि से उसकी नींद खुल गई। दोनों सैनिक दौड़ते हुए अन्दर आ गए और उन्होंने उसे पकड़ लिया। वह अचम्भे में पड़ गया और उसने उन सैनिकों से स्पष्टीकरण माँगा। सैनिक केवल ठहाका मारकर हँस पड़े।

जबकि एक सैनिक ने उसे जकड़ रखा था, तभी दूसरे ने उस भवन के कोने कोने की बारीकी से खोजना प्रारम्भ कर दिया। उसने उस तकिए को उठा लिया। उसे सामान्य से अधिक भारी पाकर, उसने उसे अपने खड्ग से काटकर खोल दिया। कुछ रत्न उससे नीचे गिर पड़े। उस सैनिक ने व्यापारी को थप्पड़ जड़ दिया और गुर्राया, “चोर! हम तुम्हें अपने राजा के पास दण्ड दिलवाने ले चलेंगे।” उस व्यापारी ने यथाशक्ति विनीतस्वर में निर्दोष होने की बात कही। “चुप रहो!” एक सैनिक ने गुस्से से कहा, “जो कुछ तुम्हें कहना है, हमारे राजा से कहना।” जैसे ही उसे सैनिकों द्वारा घर से बाहर निकाला जा रहा था, उसने देखा कि वह व्यक्ति, जिसे उसने पहले दौड़ते हुए देखा था, कुछ दूरी पर मृत पड़ा हुआ है। उसे बलपूर्वक राजा के पास ले जाया गया। वहाँ, सैनिकों ने उसके विरुद्ध आरोप प्रस्तुत किया।

व्यापारी को पता चला कि लुटेरों का एक गिरोह उस राज्य में बहुत सी चोरियाँ करता आ रहा था और यहाँ तक कि रानी के भी कुछ आभूषणों की चोरी हुई थी। सैनिकों द्वारा उनमें से एक चोर का पता लगा लिया गया था और उसका पीछा किया गया था। अन्ततः, जब वह जंगल में पकड़ लिया गया, तब वह लड़ने लगा और फ़िर, हताशा में, उसने स्वयं को चाकू से मार लिया। सैनिकों ने यह मानकर उस प्रदेश की सघन जाँच की थी कि चोर छिपने के स्थल की ओर दौड़ रहा होगा। उन्होंने उस भवन को चिह्नित किया था जिसमें कि अस्थायी रूप से उस व्यापारी ने निवास किया था। चूँकि वे उस घर में रहने वालों को आश्चर्यचकित करना चाहते थे, इसलिए उन्होंने द्वार को तोड़कर खोल दिया था। उन्होंने एक व्यक्ति को अन्दर आराम करते पाया था। उस व्यक्ति द्वारा उपयोग किए गए तकिए से रानी के चुराए गए आभूषण निकल गए थे। इस विश्वास के साथ कि वह चोरों के गिरोह का ही व्यक्ति है, उन्होंने उसे राजा के समक्ष प्रस्तुत किया था।

व्यापारी ने निवेदन किया कि वह सर्वथा भी दोषी नहीं है और उसने अपनी कहानी सुनाई। परन्तु किसी को भी उसकी बात पर विश्वास नहीं हुआ। अन्ततोगत्वा, वह लुटेरों की गुप्त अड्डे से पकड़ा गया था; ताला और चाबी उसके पार्श्व में थे; वह अपना सिर उसी तकिए पर रखकर सो रहा था जिससे कि रानी के आभूषण पाए गए थे। क्योंकि साक्ष्य उसके विरुद्ध प्रबल ही थे, राजा ने उसे आजीवन कारावास का दण्ड सुनाया। उस व्यक्ति ने मन दहला देने वाले प्रकार से और अपनी पूरी क्षमता से गुहार लगाई, परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। उसे कठोर अपराधियों के साथ बँदी बनाया गया और उससे हर दिन कई घंटों तक कठिन परिश्रम कराया गया।

सोलह वर्ष बीत गए। एक दिन, कुछ रक्षक उसकी कोठरी में आए। वे उससे बोले कि राजा ने उसे बुलाया है और उसे मुक्त किया जा रहा है। वह व्यापारी अचरज में पड़ा, परन्तु बहुत मुदित हो गया। जब वह राजा के सामने उपस्थित हुआ, तो राजा ने उससे कहा, “मुझे बहुत खेद है कि मैंने तुम्हें दण्डित किया। अब मैं जान गया हूँ कि तुम निर्दोष हो।” तब उसने समझाया कि उसी दिन एक लुटेरे ने अपना यह अपराध स्वीकार किया था

कि वह कई वर्षों से राज्य में कई चोरियाँ करता आ रहा था, तथा उसने एवं उसके साथियों ने लगभग सोलह वर्षों पूर्व रानी के आभूषण चुरा लिए थे। यहाँ तक कि वह सैनिकों को अपने पुराने ठिकाने तक भी ले गया था, जहाँ पकड़े जाने के समय व्यापारी आराम कर रहा था। अपने पछतावे के प्रतीक के रूप में, राजा ने व्यापारी को बहुत सारा सोना, आत्मरक्षा हेतु कटारें और एक घोड़ा दिया।

व्यापारी तुरन्त ही अपने घोड़े पर सवार हुआ और नियत समय में अपने राज्य में लौट आया। वह अपने माता-पिता के घर चला गया। घोड़े को घुड़साल में बाँधकर, वह सामने के द्वार की ओर चल पड़ा। जैसे ही उसने ऐसा किया, चाँदनी में, वह पार्श्व की खिड़की से घर के भीतर देख सकता था। उसने देखा कि उसकी पत्नी खिड़की के पास तल पर उसकी दिशा की ओर मुँह करके लेटी हुई है। उसने उससे थोड़ी दूरी पर सो रहे एक पुरुष की आकृति भी देखी। उस व्यक्ति का मुख उसे दिखाई नहीं दे रहा था। उसने तुरन्त निष्कर्ष निकाला, "यहाँ मैं इतने कष्ट झेलकर एक ऐसी महिला के पास आ रहा हूँ जो मेरे प्रति विश्वासघातिनी है! यह कितनी निर्लज्ज है कि वह अपने प्रेमी के साथ मेरे माता-पिता के घर में खुले रूप में रह रही है।" क्रोध से जलते हुए, उसने अपने दो कटारों को निकालकर, उनमें से एक को अपनी पत्नी के सीने में और दूसरे को उसके प्रेमी के पीठ में — जोकि खिड़की से दूसरी ओर मुँह करके सोया था — भोंकने को उद्यत हो गया।

तथापि, वह यह सोचकर रुक गया — "मुझे उतावलेपन से काम नहीं करना चाहिए। बिना योजना के, मैं एक अनजान व्यक्ति के साथ सौदा करने के लिए आगे बढ़ गया और फलस्वरूप अपने घोड़े और पैसों को खो दिया। पुनः, सहसा, मैं जंगल के उस भवन में प्रविष्ट हो गया और इसके लिए सोलह वर्ष के कारावास के रूप में मुझे इसका मूल्य चुकाना पड़ा। अपनी आतुरता से मैं दो बार विध्वस्त हो चुका हूँ। क्या अब भी मुझे उतावली दिखानी चाहिए?" इस प्रकार सोचते हुए, वह धीरे-धीरे कुछ शान्त हुआ और द्वार तक पहुँचकर उसे खटखटाया। कुछ ही क्षणों में उसकी पत्नी ने द्वार खोला। वह अपने पति को देखकर प्रमोद से अवाक रह गई। उस

व्यक्ति की ओर मुड़कर — जो उसके पास सो रहा था और अब उसके पीछे खड़ा था — वह बोली, “हरि, ये तुम्हारे पिताजी हैं। इनके आशीर्वाद लो।” व्यापारी अब तो भौंचक्का रह गया। “मेरा बेटा?” उसने पूछा। उसकी पत्नी ने समझाया, “हाँ, आपके जाने के कुछ सप्ताह बाद, मुझे पता चला कि मैं गर्भवती हूँ। यह हमारा बेटा है।” जिसे उसने भूल से अपनी पत्नी का प्रेमी समझ लिया था, उस पर समीप से दृष्टि डालने पर, उसने पाया कि वह अभी मात्र एक किशोर है।

जैसे ही हरि ने अपने पिता के चरणों को स्पर्श किया, तो व्यापारी ने यह सोचते हुए अपने भाग्य को बहुत धन्यवाद दिया कि उसने मूर्खता से अपनी पत्नी और बेटे को नहीं मार डाला था। उसने अपने बेटे को गले लगाते हुए, उससे कहा, “मेरे पास तुम्हारे लिए एक बहुमूल्य परामर्श है। अपने कार्यों के परिणामों का विचार किए बिना, सहसा कार्य करने की त्रुटि कभी मत करना। मैंने अपने उतावलापन की बहुत भारी मूल्य चुकाया है। यही कारण है कि मैं हमारी इस पहली ही भेंट के अवसर पर तुम्हें यह परामर्श दे रहा हूँ।”

7. सुधरने के लिए कभी देर नहीं होती

एक बार की बात है कि दो मित्र थे जो आलसी और अशिक्षित थे। वे एक गाँव से दूसरे गाँव घूमते हुए भीख माँगकर अथवा चोरी करके अपना जीवनयापन करते थे। जहाँ भी उन्हें आश्रय मिलता था, वे रात बिता लेते थे। एक दिन जब वे किसी घर से कुछ पैसे चुराकर निकल रहे थे, उन्हें, “चोर, चोर!” चिल्लाने का शोर सुनाई दिया, तब वे घबराकर तुरन्त अलग अलग दिशाओं में तेज़ी से भाग खड़े हुए।

उनमें से एक दौड़ते दौड़ते, किसी एक गाँव के बाहर स्थित बरगद के पेड़ के पास पहुँचकर रुका। वह उस गाँव में पहले कभी भी नहीं आया था। चूँकि

अपराह्न में गर्मी बहुत थी और वह बहुत थक गया था, वह उस वृक्ष की छाया में अपनी पीठ को उसके तने पर टिकाकर बैठ गया। शीघ्र ही वह सो गया। जागने पर उसने देखा कि उसके सामने केले के पत्ते पर विभिन्न प्रकार के फल रखे हुए हैं। वह आश्चर्य में पड़ गया, परन्तु भूखा होने के कारण, वह बिना विलम्ब किए फलों को खाने लगा। खाते समय वह सोचने लगा कि किसी ने उसे इतना स्वादिष्ट भोजन देने के लिए क्यों चुना।

उसने अनुमान लगाया — "पेड़ पर मेरे टिके रहने के कारण, मेरी पीठ और गर्दन तब भी सीधी रही जब मैं सो रहा था। परिणामस्वरूप, किसी ने भूल से मुझे समाधिस्थ मानकर सम्मानपूर्वक ये फल मुझे समर्पित कर दिए होंगे।" तभी उसके मन में यह विचार कौंधा कि यदि कोई व्यक्ति यह त्रुटि कर सकता है, तो निश्चय ही अन्य लोग भी कर सकते हैं। उसने शीघ्र ही योगी बनकर ढोंग रचाने का मन बना लिया।

उसे लगा कि उसके लिए पूरा दिन सोते हुए, वह भी अपनी पीठ और गर्दन सीधा रखते हुए, वृक्ष पर टिकाकर बिताना असम्भव है। इसके अतिरिक्त, वह जानता था कि उसके पास इतनी क्षमता नहीं है कि वह जागते हुए अपनी आँखें बन्द करके घंटों अचल बैठ सके। इसलिए, उसने अपने इस विचार का लाभ उठाने का निर्णय लिया कि उस मार्ग से बहुत लोग नहीं गुज़रते हैं। उसने वृक्ष की ओर आने वाले मार्ग पर सचेत होकर दृष्टि रखना प्रारम्भ कर दिया और जैसे ही वह किसी को पास आते देखता, वह अपनी आँखें मूँद लेता, और शान्ति से योग करने का ढोंग करने लगता। कुछ लोग उसे भूल से योगी समझ बैठे, उसके पैर छुए, उसके समक्ष कुछ खाने-पीने की वस्तुएँ एवं कुछ पैसे रखे व फ़िर आगे बढ़ते रहे; तथा वह इसीसे प्रसन्न रहा।

तथापि, उसने यह भी देखा कि बहुत से लोगों ने उसको अनदेखा किया। उसने इसके सम्भावित कारण के बारे में सोचा और तय किया, "अधिकतर लोगों को, मैं ध्यान की अवस्था में बैठा हुआ व्यक्ति नहीं, अपितु आलसी अथवा गहरी नींद में सोया हुआ व्यक्ति लग रहा होऊँगा। मुझे यह प्रभाव डालने के लिए कि मैं एक योगी हूँ, कुछ तो करना होगा।" सौभाग्य से, किसी

ने माला और जप की थैली उसके सामने छोड़ रखी। उस रात, पास के ही एक जंगल जाकर, अपने हाथों के आलम्बन के लिए एक ब्रह्मदण्ड का भी जुगाड़ कर लिया। अगले दिन से, जैसे ही उसे कोई पथिक पास से होकर जाता हुआ प्रतीत हुआ, तो वह न केवल अपनी आँखें मूँद लीं, अपितु अपने दाहिने हाथ को ब्रह्मदण्ड पर रखकर थैली में मनके फेरने लगा। उसकी अपेक्षा के अनुसार, उसके प्रति आदर दिखाने वाले लोगों की सङ्ख्या बहुत बढ़ गई। उसने लोगों से बातचीत न करने और अन्तिम पथिक के चले जाने के बाद ही, रात को सोने का निश्चय किया। यद्यपि उसके प्रति सम्मान प्रदर्शित करने वालों की सङ्ख्या में तो वृद्धि हुई थी, हालाँकि उसने पाया कि अभी भी कुछ ऐसे लोग हैं जो उस पर ध्यान नहीं देते हैं।

तब उसने सोचा, "हो सकता है कि कुछ लोगों को मैं ऐसा व्यक्ति लगता हूँ जो अभी साधना का प्रयास कर रहा हो, न कि योग में पारङ्गत, जिसने तत्त्व-साक्षात्कार प्राप्त कर लिया हो।" उसने एक जुगत लगाई। अगले दिन से, अपनी आँखें बन्द करके माला फेरने के साथ साथ, वह कभी-कभी कुछ बोलता था, जैसे कि वह स्वयं से अपने अनुभव को कह रहा हो, "ॐ। सर्वं ब्रह्म।" उसकी यह युक्ति बहुत ही सफल सिद्ध हुई। इसके लागू करने के बाद, बहुत कम ही ऐसे लोग थे जो उसे बिना प्रणाम किए और कुछ भी समर्पित किए, उसके सामने से आगे बढ़ जाते। वह बहुत प्रसन्न था और दो महीनों तक इसी प्रकार बने रहा।

एक सायंकाल, वह ऊबन अनुभव करने लगा। लम्बे समय से उसने न तो ठीक से शारीरिक व्यायाम किया था और न ही किसी से खुलकर बात की थी। वह जानता था कि वह स्थानीय ग्रामीणों के साथ अपने अज्ञान को प्रकट किए बिना, बातचीत में संलग्न नहीं हो सकता था। इसलिए, जब उस दिन का आख़िरी पथिक चला गया, वह वृक्षों से भरे पास की एक पहाड़ी की ओर दौड़ा और, बिना अधिक परिश्रम के, इसे पार कर गया। उसने स्वयं को एक श्मशान में पाया। पूर्णिमा के आलोक में, वह कुछ दूरी पर स्थित एक मन्दिर को देख पा रहा था। वह इसके पास टहलते हुए गया, और उसने वहाँ

पर किसी और को नहीं, अपितु अपने पुराने मित्र को, विश्राम करते हुए देखा। वे एक-दूसरे को देखकर प्रमुदित होकर लम्बी बतकही करने लगे।

उनकी बातचीत के समय, छद्मयोगी को उसके मित्र ने अपने अनुभव के बारे में बताया। वह बोला, "जब मैं उस गाँव से भागा, जहाँ लोगों को हमारी चोरी की भनक लग गई थी, मेरे मन में कोई विशिष्ट गन्तव्य स्थान नहीं था। बहुत समय तक दौड़ने के बाद, मैंने अन्ततः स्वयं को पास के एक श्मशान में पाया। मैं बहुत थक गया था और इसलिए वहीं लेट गया तथा सो भी गया। जब मैं जगा तो सन्ध्या बीत चुकी थी। जब मैं उठा, तब मैंने देखा कि कुछ लोग दूर से मेरी ही ओर देख रहे हैं। अचानक, वे डर के मारे चिल्लाए और वे जितनी तेज़ी से भाग सकते थे, भाग खड़े हुए। मैंने अपने मन ही मन सोचा कि सम्भवतः उन्होंने भूलवश मुझे भूत समझ लिया होगा।

"मैंने इस स्थिति का लाभ उठाने का निर्णय लिया। अगले कुछ दिनों तक, मैं उस श्मशान में भटकने वाले भूत का नाटक करता रहा, एवं कुछ दूर से गुज़रने वाले लोगों को डरा दिया। लोगों के मन में यह स्थापित करने के बाद कि यह श्मशान एक शक्तिशाली और दुष्ट भूत द्वारा प्रेतवाधित है, मैंने अपने केश-पाश को जटाजूट बना लिया और स्वयं को ग्रामवासियों के समक्ष मन्त्रशास्त्र में पारङ्गत तान्त्रिक के रूप में प्रस्तुत किया। मैंने उनसे कहा कि मैं उस भूत से छुटकारा दिलाने के लिए एक तान्त्रिक अनुष्ठान का आयोजन करूँगा। एक अमावास्या की रात में, मैं कुछ-कुछ यज्ञ जैसा अनुष्ठान करता गया और अन्ततः, एकत्र सङ्कलित ग्रामीणों के समक्ष यह घोषणा कर दिया कि अब वह भूत श्मशान में कभी नहीं आ सकेगा। उस दिन के बाद, उन ग्रामवासियों का श्मशान में कभी किसी भूत से सामना नहीं हुआ और मैं एक आदरणीय व्यक्ति बन गया।

"मुझे पता चला कि मुझे जो सीमित भेंट मिल रहे थे, उनके साथ मैं स्वयं को आराम से नहीं रख पाता था, और इसलिए, मैंने अपनी भूत वाली युक्ति को नए ढंग से खेलने की योजना बनाई। मैं एक घर की छत पर चढ़ गया और मैंने एक-दो खपरैल हटा दीं। फ़िर मैंने उससे कुछ पत्थरों के साथ जलती हुई

रुई की गेंद नीचे गिरायी। इससे घर में कोलाहल मच गया। कोई मुझे देख न सका, क्योंकि रात का समय था और चाँद मेघों की ओट में छिप गया था। मैंने यही काम उस घर में अगली रात में भी किया। अन्ततः, उस घर के लोग अगले दिन मेरे पास आए, जिनके लिए मैं भूत भगाने में समर्थ एक तान्त्रिक था।

"उन्होंने मुझसे कुछ करने की प्रार्थना की। मैंने तुरन्त स्वीकृति दे दी। उनके घर जाकर मैंने कुछ अनुष्ठान किए और उन्हें सुदृढ़ विश्वास दिया कि वह भूत उन्हें अब और पीड़ा नहीं देगा। मेरी ही चेष्टा पर निर्भर उस भूत ने भी, उसके बाद उन्हें कोई कष्ट नहीं पहुँचाया। स्पष्ट रूप से, ऐसा नहीं हुआ और मुझे खूब पुरस्कार और बहुत धन्यवाद मिला। कुछ दिन बीत जाने के बाद, मैंने अपने भूत-प्रेत के कर्म को, कुछ छोटे बदलावों के साथ, दूसरे घर में किया। फ़िर से, मुझ पर कृतज्ञता, उपहार और द्रव्य की बौछार की गई। मैं अपने इस खेल कुलेल को बनाए रखता हूँ, परन्तु कभी-कभी ही।

"एक समर्पित तान्त्रिक के रूप में मेरी उपस्थिति को बनाए रखने के लिए, मैं इस उजाड़ से काली मन्दिर में रहता हूँ और यह अभ्यास रखता हूँ कि मैं प्रत्येक रात्रि में, पास के श्मशान में, नर-कपाल हाथ में लिए, मदिरा पान करते हुए और जो कुछ मुँह में आता है, उसे मन्त्र जैसे बड़बड़ाते हुए कुछ समय बिताता हूँ।"

वह छद्म-योगी अपने मित्र की कहानी सुनकर प्रसन्नतापूर्वक आश्चर्यचकित हुआ और उसे बधाई दी। उसने तब छद्म-तान्त्रिक से पूछा, "तुम मन्त्रों के विषय में कुछ भी नहीं जानते। अतः, क्या कभी ऐसा अवसर आया कि तान्त्रिक क्रिया अथवा झाड़-फूँक करते समय, तुम्हारी चोरी लगभग पकड़ी जाने वाली थी?" "हाँ," छद्म-तान्त्रिक ने उत्तर दिया, "एक अवसर पर। तब मैं ढोंगी के रूप में पकड़े जाने के बहुत निकट आ गया था। एक घर के निवासी जहाँ मैं गया था, अनाड़ी थे। तथापि, एक व्यक्ति, जो उस ग्राम से होकर जा रहा था, कुछ समय वहाँ रुक गया जहाँ मैं अनुष्ठान कर रहा था। मैं समझ सकता था कि वह जानकार व्यक्ति है। वह मेरी पोल खोलने वाला ही था जब मैंने किसी प्रकार उसे चुप करा लिया।

"उसके हाव-भाव से मैंने अनुमान लगाया कि वह वस्तुतः एक लालची व्यक्ति है। इसलिए, एक लम्बे मन्त्र का जाप करने का नाटक करते हुए, मैंने उसे कुछ निरर्थक शब्दांशों के साथ एक वाक्य सुनाया, जिससे मैंने यह स्पष्ट कर दिया कि मुझे जो दक्षिणा मिल रही है, मैं उसके साथ साझा करने को उद्यत हूँ। उसने न केवल मुझे समझा अपितु मेरे अनुष्ठान में मेरे सहायतार्थ भी आगे आया। उसने मेरी और मेरे ज्ञान की उस घर के लोगों के समक्ष भूरि-भूरि प्रशंसा की। उस रात, वह इस मन्दिर में आया और जो कुछ मुझे मिला था, उसका कुछ भाग मैंने उसके साथ साझा किया। चूँकि वह केवल एक पथिक था जो दूसरे गाँव का था, वह चला गया और वापस नहीं आया। किसी अन्य अवसर पर मुझे किसी बड़ी समस्या का सामना नहीं करना पड़ा। मैं यहाँ बहुत अच्छे से रह रहा हूँ।"

अपने मित्र की सङ्गति में कुछ घंटे बिताने के बाद, छद्म-योगी को स्मृति आई कि उन्हें भोर में, बरगद के पेड़ के नीचे अपने स्थान पर पहुँच जाना चाहिए। इसलिए, उसने अपने मित्र को विदाई दी और अपने गाँव लौट आया।

एक दिन, एक मुनि उस बरगद के पेड़ के पास आए जहाँ वह ढोंगी योगी बैठा था। अपने अभ्यास के अनुसार, छद्म-योगी अपनी माला फेरने लगा और बोला, "ॐ। सब ब्रह्म है।" वे मुनि मुस्कुराए और उसके पास में बैठ गए। छद्म-योगी असहज अनुभव करने लगा। उसे शान्त करते हुए, मुनि बोले, "मैं जानता हूँ कि तुम कोई योगी नहीं हो। अतः, अपनी आँखें खोलो। मैं यहाँ तुम्हारी कलई खोलने नहीं आया हूँ।" वे शब्द इतनी दयालुता के साथ कहे गए थे कि ढोंगी योगी को अपनी आँखें खोलने में और साधु से बातें करने में कोई हिचकिचाहट नहीं हुई।

मुनि ने पूछा, "क्या इस तरह लोगों के साथ छल करना तुम्हारी ओर से त्रुटि नहीं है? तुम जीवन जीने का कोई न्याय मार्ग क्यों नहीं अपनाते?" छद्म-योगी ने उत्तर दिया, "मैं अशिक्षित हूँ और स्वभाव से आलसी भी। मैं यहाँ बहुत समृद्ध हूँ और सम्मानित भी। तो, मैं इस वटवृक्ष के नीचे बने रहना चाहता हूँ।" मुनि ने उससे पूछा, "तुम यहाँ इतने लम्बे समय से बैठे हो, वस्तुतः बिना

कुछ किए। क्या तुम्हें ऊब नहीं लगती?" "हाँ, लगती तो है," ढोंगी योगी ने उत्तर दिया, "किन्तु मेरे पास विकल्प ही क्या है?" वे मुनि बोले, "तुम्हारे पास एक अच्छा विकल्प है। तुम्हें गायत्री-मन्त्र में दीक्षित किया गया है। तुम इस वृक्ष के नीचे बैठे हुए अधिकतर समय माला फेरते रहते हो। हर बार मनका फेरने पर, एक बार गायत्री-मन्त्र का जाप क्यों नहीं करते? उससे तुम स्वयं को मानसिक रूप से व्यस्त भी रख पाओगे।"

ढोंग रचाए हुए योगी को यह परामर्श चित्ताकर्षक लगा। वैसे भी, वह कुछ भी खोने वाला नहीं था और ऊबन उसे बहुत खीझा भी रही थी। इसलिए उसके बाद, हर बार जब भी उसने माला के मनके से अपनी उङ्गली को अगले मनके की ओर बढ़ाया, तब गायत्री-मन्त्र का जाप किया। प्रारम्भ में यह जप तो केवल यान्त्रिक क्रिया जैसा था। परन्तु, समय बीतते बीतते, उसे यह आनन्ददायक लगने लगा।

पवित्रतम गायत्री-मन्त्र की शक्ति और मुनि के आशीर्वाद के फलस्वरूप, उसका मन धीरे-धीरे शान्त और आनन्दपूर्ण हो गया। उसने लोगों के आने को समझने के लिए चारों ओर देखना और कभी-कभी किसी की उपस्थिति को जान पाते ही, "ॐ। सब कुछ ब्रह्म ही है," कहना बन्द कर दिया। उसने गायत्री-मन्त्र जाप के अभ्यास को बनाए रखा, क्योंकि उससे उसे बहुत आनन्द मिलता था और उसने उसका ध्यान पूरी तरह से आकर्षित कर लिया था। लोग उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति सदैव की भाँति करते ही रहे। वे नहीं जानते थे कि वे जिसकी पूजा करते आ रहे थे, वह अब छद्म-योगी नहीं प्रत्युत सच्चा योगी है।

कुछ महीनों के बाद, वे मुनि फ़िर से उस मार्ग से आए। उस योगी ने उनका बहुत बहुत धन्यवाद किया और उन्हें अपने मित्र छद्म-तान्त्रिक के बारे में बताया। उसने मुनि से अपने पुराने मित्र के भी उत्थान करने की याचना की। मुनि उस गाँव में गए जहाँ वह छद्म-तान्त्रिक जीर्ण-शीर्ण काली मन्दिर में रहता था। उन्होंने उससे दयापूर्ण शब्दों में बात की और उसका विश्वास जीत लिया।

फ़िर साधु ने उससे कहा, “मैं जानता हूँ कि तुम इन लोगों को छल देकर समृद्ध हो रहे हो। क्या तुम्हें इस बात का बोध नहीं है कि एक न एक दिन, तुम पकड़े जा सकते हो? और एक बार पकड़े जाने पर, तुम गम्भीर सङ्कट में पड़ जाओगे।” छद्म-तान्त्रिक ने उत्तर दिया, “हाँ, मैं भेद खुलने के भय के साये में अपना जीवन बिता रहा हूँ। मैं वैसे तो इस बारे में क्या ही कर सकता हूँ? मैं तो यहाँ अपनी आजीविका कमाने का कोई सच्चा मार्ग नहीं जानता हूँ।” मुनि ने कहा, “मैं तुम्हें सिखाऊँगा कि माता काली की पूजा कैसे की जाती है। उसके बाद, तुम गाँव के लोगों से इस मन्दिर का कुम्भाभिषेक करवाकर, यहाँ के पुजारी बन सकते हो।” यह युक्ति छद्म-तान्त्रिक को अच्छी लगी। उसने कहा कि वह सीखने के लिए इस अनुबन्ध के अधीन उद्यत है कि पाठ देर रात में आयोजित किया जाए, ताकि लोगों को किसी भी बात पर सन्देह न हो। साधु सहमत हो गए। एक पखवाड़े में ही छद्म-तान्त्रिक ने मन्दिर की पूजनविधि का प्रारम्भिक ज्ञान साधु से प्राप्त कर लिया।

फ़िर दो दिन बाद, वह गाँव के एक धनी व्यक्ति के पास गया और उसने कहा, “हमारा काली मन्दिर बहुत प्राचीन है। दुर्भाग्य से, वहाँ पूजा नहीं की जा रही है और वह जीर्ण-शीर्ण स्थिति में है। आप इसका नेतृत्व कर सकते हैं और इसके कुम्भाभिषेक की व्यवस्था कर सकते हैं। अन्ततोगत्वा, देवी की पूजा से सभी को उनकी कृपा प्राप्त होगी।” वह धनिक छद्म-तान्त्रिक का बहुत आदर करता था और साथ ही, उसे यह परामर्श भी बहुत अच्छा लगा। अतः, उसने मन्दिर के जीर्णोद्धार की व्यवस्था की। शीघ्र ही, उसका कुम्भाभिषेक निकट के गाँव के विद्वान पण्डितों की सहायता से, भव्य ढंग से किया गया।

छद्म-तान्त्रिक ने उस मन्दिर के पुजारी बनने की इच्छा व्यक्त की। उन गाँववालों ने, जो उसका आदर करते थे, तुरन्त सहमति व्यक्त की। उसके बाद, वह छद्म-तान्त्रिक देवी की पूजा करने लगा। प्रारम्भ में, पूजा सम्भवतः ही उनके लिए रूचिकर थी। परन्तु, शीघ्र ही, उसे इसमें आनन्द आने लगा। लोग उसकी आवश्यकताओं को पूरा करते रहे। हालाँकि, अब

उसकी पूजा उससे प्रेरित नहीं थी जिन्हें वह प्राप्त किया करता था, अपितु देवी के प्रति सदा बढ़ती हुई उसकी भक्ति से प्रेरित थी। वह उत्तरोत्तर एक महान भक्त बन गया।

मनुष्य को अपने आचरण में सुधार लाने के लिए कभी भी देर नहीं होती। ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं जिनमें लोगों को सुधारने में सन्तों की भूमिका रही है।

धर्म का मार्ग

"तृष्णा, क्रोध और आतुरता से सावधान रहें" नामक पिछले खण्ड ने, उन गुप्त संकटों पर प्रकाश डाला जिनसे बचा जाना चाहिए। वह इस आश्वासन के साथ समाप्त हुआ कि अधर्म से धर्म की ओर मुड़ने में कभी देर नहीं होती। यह विभाग धर्म के मार्ग की व्याख्या करता है, जिस पर चलना चाहिए।

8. धर्म का निर्णय वेद करते हैं

एक न्यायवादी ने तर्क दिया, "महामहिम, मेरे मुवक्किल को दोषी नहीं ठहराया जाना चाहिए। यह सच है कि उसने चोरी की है। परन्तु उसका एक कारण है। वह चोरी करने के लिए विवश था क्योंकि उसका परिवार भूख से मर रहा था। उन चुराए गए पैसों से, उसने न केवल स्वयं की, अपितु अपने परिवार की भी सहायता की। जब वह चोरी कर रहा था, तब उसने किसी सम्पत्ति को हानि नहीं पहुँचाई। यहाँ तक कि वास्तव में उसने ताले को भी नहीं तोड़ा, क्योंकि उसने नकली चाबी का प्रयोग किया। उसने जितना पैसा चुराया, वह तो उस धनिक व्यक्ति के काले धन के भण्डार की तुलना में कुछ भी नहीं था। मेरे मुवक्किल ने काले धन को खुले में लाकर, वस्तुतः शासन की सेवा की है। इतना ही नहीं, उस धनी व्यक्ति के पास इतना धन है कि यह छोटी सी धनहानि से, उसका कुछ भी नहीं होना चाहिए।"

न्यायाधीश इस प्रकार के तर्क पर कैसे प्रतिक्रिया देंगे? वे सम्भवतः घोषणा करेंगे, "मेरी इस तरह के तर्कों में कोई रुचि नहीं है जो देश के नियमों की अवहेलना करते हैं। भारतीय दण्ड संहिता के अधीन, चोरी करना एक अपराध है। यहाँ तक कि आप भी स्वीकार कर रहे हैं कि आपके मुवक्किल ने चोरी की है। इसलिए, मैं आपके मुवक्किल को दण्ड देने के लिए नियमबद्ध हूँ।" फ़िर, वे उस न्यायवादी के मुवक्किल को दोषी ठहराते और चोर को जेल भेज देते।

किसी कार्य के दण्डनीय अपराध होने अथवा न होने का निश्चय, न्यायाधीश दण्ड संहिता के आधार पर ही करते हैं, न कि दण्ड संहिता से विरुद्ध काल्पनिक तर्क के आधार पर।

इसी तरह, धर्म क्या है और अधर्म क्या है — इसका निर्णय करने के लिए, किसी व्यक्ति को वेद की ओर मुड़ना चाहिए, न कि केवल शास्त्रों से स्वतन्त्र तर्क की ओर। चूँकि दण्ड संहिता मनुष्यों की ही बनाई हुई है, उसमें कुछ

अवसरों पर सुधार की आवश्यकता पड़ती है। मगर ईश्वर से निकले हुए वेद सदैव दोषरहित हैं।

9. परम्परागत प्रथा का ज्ञान

एक व्यक्ति एक मन्दिर गया और उसने पुजारी से तीर्थ-प्रसाद प्राप्त किया। मन्दिर जाना उसकी प्रवृति में नहीं था, अतः उसने पहले सोचा कि वह जल हाथ धोने के लिए है। यह सुनिश्चित कर लेने पर कि वह ग्रहण करने के लिए है, उसने उसे पी लिया। उसने अपने मुँह में कुछ ठोस वस्तु को पाया। उस अप्रिय पदार्थ को बाहर निकालने पर, उसने देखा कि वह एक तुलसी का पत्ता था। उसे यह जानकारी नहीं थी कि कुछ मन्दिरों में दिए जाने वाले तीर्थ-प्रसाद में तुलसी-दल भी पाया जाता है। यह मानकर कि अर्चक ने उसे भूल से यह दे दिया था, उसने वह पत्ता वहीं थूक दिया। पुजारी यह देखकर चीख उठे, "यह तुम क्या कर रहे हो? मन्दिर के अन्दर मत थूको और उस स्थान की पवित्रता को भङ्ग न करो।"

चकित और यह देखते हुए कि वह आकर्षण का केन्द्र बन गया है, उस व्यक्ति ने झट से पत्ता उठा लिया। इससे छुटकारा पाने की इच्छा से उसने उसे अपने पास की एक मूर्ति के ऊपर रख दिया। इस अपवित्र कृत्य से पण्डितजी का धैर्य टूट गया। गुस्से में तमतमाए हुए, वे चिल्लाकर बोले, "अरे मूर्ख! इस पत्ते को अपने मुँह में डालने के बाद, भगवान पर उसे रखने की तुम्हारी धृष्टता कैसे हुई? हट जा यहाँ से!" बेचारा! उसने फ़िर से पत्ता उठाया और और अधिक अपमान के भय के मारे, उसे अपनी जेब में डाल लिया। फ़िर वह फुर्ती से चला गया; जैसे ही उसने ऐसा किया, मन्दिर में उपस्थित लोग उसकी अज्ञानता पर हँसने से अपने आप को नहीं रोक सके।

ऐसे लोग भी हैं जो अपना गोत्र भूल चुके होते हैं। एक व्यक्ति ने अपने पुत्र के उपनयन के समय, अपने पण्डितजी से पूछा, “मेरा गोत्र क्या है?” “मुझे नहीं पता; वस्तुतः आपको मुझे इसके बारे में सूचित करना चाहिए,” पण्डितजी ने उत्तर दिया। उस व्यक्ति ने विरोध करते हुए कहा, “आपको एक शास्त्रवेत्ता पण्डितजी माना जाता है। आप इतने अज्ञानी कैसे हो सकते हैं?” यह समझकर कि उत्तर देना व्यर्थ होगा, पुरोहित ने उस व्यक्ति के कुल के एक वृद्ध से बात की और उसका गोत्र पता कर लिया। फ़िर, उन्होंने उस व्यक्ति के पुत्र के उपनयन समारोह को बनाए रखा।

हर एक व्यक्ति के लिए अपने सम्प्रदाय या अपनी परम्परागत प्रथा से पूरी तरह परिचित होना उसके हित में है। अन्यथा, मन्दिर में और उपनयन समारोह में घटी घटनाओं जैसी स्थितियाँ अपरिहार्य होंगी।

10. सत्यकथन पर आलोक

एक व्यक्ति ने कुछ वस्तुएँ चुरा लीं। वह पकड़ा गया और उससे यह शपथ लिया गया कि वह सच ही सच उत्तर देगा। वह बोला, “जब तक प्राण है, मैं सत्य बोलूँगा।” फ़िर, उसकी प्रतिपरीक्षा की गई। उसने स्पष्टतः इससे मना कर दिया कि उसने कुछ भी चुराया था। उसके साक्ष्य के आधार पर, उसे छोड़ दिया गया। उसका एक मित्र, जिसने उस नीच कृत्य में भाग लिया था, उससे पूछा, “यह शपथ लेने के बाद भी, तुमने इतनी ढिठाई से क्यों असत्य बोल दिया?” उस व्यक्ति ने उदासीनतापूर्वक उत्तर दिया, “मैंने झूठ नहीं बोला। जो कुछ भी मैंने कहा, वह सब सत्य ही था। मैं प्राण रहने तक सत्य बोलने के लिए वचनबद्ध था। मेरे हाथ में एक कीड़ा था। उत्तर देने के पहले, मैंने उस कीड़े को मसलकर मार डाला। इस प्रकार मेरा कथन, ‘जब तक प्राण है, मैं सत्य बोलूँगा,’ बना ही रहा।”

यह सत्य-आभास का उदाहरण है। जब किसी व्यक्ति के मन में कुछ होता है, परन्तु वह ऐसे वक्तव्य की सहायता लेता है कि सुनने वाले को कुछ और समझ में आ जाए या वह भ्रमित हो जाए, तो वह सच्चाई से भटकने का दोषी है। शास्त्र नियम के अनुसार, सत्य बोलने के लिए व्यक्ति को अपने शब्दों का अपने विचारों से तालमेल बैठाना चाहिए। सत्यता के सम्बन्ध में ध्यान में रखा जाने वाला अगला बिन्दु यह है कि व्यक्ति प्रिय वाणी में बोले। किन्तु मीठा बोलने का यह तात्पर्य कभी भी नहीं है कि असत्य बात बोली जाए।

एक उत्पाती व्यक्ति ने अपने एक मित्र को मूर्ख बनाने का निश्चय किया। वह अपने मित्र के पास गया और उत्साहित स्वर में बोला, "क्या तुम्हें यह पता है कि तुमने लॉटरी में दस लाख रूपये जीते हैं? तुम यहाँ इतनी शान्ति से कैसे बैठे हो?" वह मित्र अवाक् रह गया। उसके आश्चर्य के कुछ कम होने पर, उसने सपनों के महल बनाना प्रारम्भ कर दिया। इस बीच, वह नटखट व्यक्ति वहाँ से चला गया। अन्त में, उस व्यक्ति ने अपने लॉटरी टिकट की सङ्ख्या को देखकर प्रसन्न होने के लिए समाचार पत्र उठाया। जब वह उस सङ्ख्या को न पा सका, तो उसका हर्ष निराशा में बदल गया। यह एक सुखद असत्य का उदाहरण है।

किसी को दायित्वहीन ढंग से व्यथित करने वाले सत्य को नहीं बोलना चाहिए। एक व्यक्ति भारी हृदयाघात के बाद अस्पताल में स्वास्थ्यलाभ कर रहा था। तब एक दिन, सड़क दुर्घटना में उसके बेटे की मृत्यु हो गई। जिस व्यक्ति ने इस दुर्घटना को प्रत्यक्ष देखा था, वह अस्पताल पहुँचा और उस हृदय-रोगी से चिल्लाते हुए कहा, "क्या तुम जानते हो कि क्या हो गया है? तुम्हारा बेटा मर गया है!" अपने बेटे से बहुत प्यार करने वाला वह रोगी, इस हृदय-विदारक समाचार को सहन नहीं कर सका। उसका हृदय तो पहले से ही दुर्बल था और उसने अपनी आख़िरी साँस ली। जिस व्यक्ति ने यह अप्रिय समाचार दिया, उसका आचरण निन्दनीय था।

इसकी सारभूत शिक्षा यही है कि व्यक्ति को सत्य बोलना चाहिए। इसके अतिरिक्त, व्यक्ति के शब्द दूसरों के लिए प्रिय एवं हितकारक होने चाहिए।

व्यथित करने वाले सत्य को असावधानी से नहीं बोलना चाहिए और दूसरों को भटकाने के उद्देश्य से शब्दों का चयन नहीं करना चाहिए।

11. सत्य और मौन

एक बार, तीन व्यक्ति उन्हें ले जाने के लिए आए दिव्य यान पर बैठकर स्वर्ग की ओर जा रहे थे। मार्ग में उन्होंने एक साँप को देखा, जो अपने आहेर, एक मेढक को निगलने ही वाला था। उनमें से एक ने ताना दिया, "अरे साँप, क्या तुम्हें इस मेढक पर दया नहीं आती? इसे जीवनदान दे दो।" चिड़चिड़े साँप ने शाप देते हुए कहा, "तुमने मुझे मेरे आहार से वञ्चित करने की धृष्टता कैसे की? तुम नरक में जाओ।" दुःख की बात है कि वह व्यक्ति नरक में चला गया।

इसे देखकर सम्भ्रान्त दूसरे व्यक्ति ने साँप का पक्ष लिया और बोला, "हे नाग, मेढक तुम्हारा प्राकृतिक आहार है। तुम इसे अवश्य खा सकते हो।" अब उस मेढक की त्योरी चढ़ गई और उसने कहा, "तुम्हारा ऐसा सुझाव देने का साहस कैसे हुआ कि मुझे खा लिया जाए! तुम्हें कोई दया नहीं है। तुम्हें नरक की यातनाएँ झेलनी पड़ें।" वह व्यक्ति उस दिव्य वाहन से गिर गया।

तीसरा व्यक्ति मौन रहा और स्वर्ग पहुँच गया।

यह कहानी दर्शाती है कि कुछ अवसरों पर मौन रहना सत्य बोलने की अपेक्षा कहीं श्रेष्ठतर है।

12. सत्यशीलता के सूक्ष्म पहलू

द्रोणाचार्य की मृत्यु के बाद, कर्ण कौरव सेना का सेनापति बन गया। कर्ण के साथ युद्ध में युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव पराजित हुए और घायल हो गए। अपमानित और बहुत वेदनाग्रस्त, युधिष्ठिर कुछ विश्रान्ति के लिए युद्धभूमि से अपने शिविर में वापस चले गए। लड़ाई तो चलती रही। कुछ समय बाद, अर्जुन युधिष्ठिर के बारे में चिन्तित होकर, उन्हें देखना चाहता था। इसलिए, उसने पाण्डव-सेना को भीम के सञ्चालन में छोड़कर, युधिष्ठिर के शिविर में उसे ले चलने को कृष्ण से कहा।

जब कृष्ण और अर्जुन अपना अभिवादन कहने के लिए आए, तब युधिष्ठिर ने भूल से मान लिया कि कर्ण को अर्जुन ने मार दिया है। उन्होंने विवरण जानना चाहा। अर्जुन ने उन्हें विस्तारपूर्वक बताया कि उस समय तक, वह कर्ण की इहलीला समाप्त करने में सफल नहीं हुआ था। उसने कहा कि वह अवश्य ऐसा करेगा।

अर्जुन की बात सुनकर युधिष्ठिर बहुत असन्तुष्ट होकर क्रोधित हो उठे। उन्होंने अर्जुन की कठोर निन्दा करते हुए कहा, “कर्ण को हराने में असमर्थ और भयभीत होकर, तुम भीम के हाथ सेना का आधिपत्य सौंपकर यहाँ भाग आए हो। अगर तुमने बहुत पहले ही मुझसे कह दिया होता कि तुम कर्ण से नहीं लड़ोगे, तो मैं अपना निर्णय अलग प्रकार से लेता। तुमने वचन दिया धट कि तुम कर्ण को मार दोगे, परन्तु तुमने अपनी प्रतिज्ञा पूरी नहीं की। तुम्हारा रथ विश्वकर्मा द्वारा बनाया गया है और उस पर हनुमान जी के प्रतीक वाला एक ध्वज है। तुम्हारे पास गाण्डीव धनुष है। श्रीकृष्ण स्वयं तुम्हारे सारथि हैं। फ़िर भी, कर्ण के भय के मारे यहाँ भाग आए हो। अपना गाण्डीव कृष्ण को दे दो। कर्ण का वध करके उन्हें यथोचित आवश्यक कार्य करने दो। अथवा, अपना गाण्डीव किसी और को दे दो। तुम इसके योग्य नहीं हो। तुम्हें लज्जा आनी चाहिए! धिक्कार है तुम्हारी शूरता पर! धिक्कार है तुम्हारे गाण्डीव पर!”

युधिष्ठिर की फटकार ने अर्जुन को इतना डंक मार दिया कि वह रोष में आ गया। वह अपना खड्ग निकालने लगा। यह देखकर कृष्ण ने उससे कहा, “यह तुम क्या करना चाहते हो? यहाँ कोई शत्रु नहीं है। तुम अपने खड्ग क्यों निकालना चाहते हो?” अर्जुन ने कहा, “मैं युधिष्ठिर को मारने जा रहा हूँ। मैंने गुप्त रूप से यह प्रतिज्ञा की थी कि यदि कोई मुझसे कहे, ‘अपना गाण्डीव दे दो,’ तो मैं निश्चित रूप से उसे मार डालूँगा। अब, अपने वचन की पूर्ति में, मैं युधिष्ठिर का वध करने जा रहा हूँ, क्योंकि उसने मुझे दूसरे को गाण्डीव देने के लिए कहकर मेरा अपमान किया है और मुझे इसके सन्धान के लिए अयोग्य माना है।”

कृष्ण ने कहा, “लज्जा करो अर्जुन, कोई भी व्यक्ति जो धर्म के वास्तविक स्वरूप को जानता है, वह वैसा बर्ताव नहीं करेगा जैसा तुम करना चाहते हो। सत्य का पालन करना सर्वोच्च है। तथापि, सत्य का स्वरूप, जैसा महान लोगों द्वारा समर्थित है, आसानी से समझ में नहीं आता है। ऐसे अवसर आते हैं जब कोई व्यक्ति बिना पाप किए, झूठ बोल सकता है। उदाहरणार्थ, किसी को बचाने के लिए या स्वयं को पूर्ण विनाश से बचाने के लिए या किसी पवित्र व्यक्ति की भलाई के लिए, वह झूठ बोल सकता है। ऐसा करने से वह व्यक्ति अधर्म का दोषी नहीं बन जाता। कई बार ऐसे भी अवसर होते हैं कि जब बिना किसी बनावट के सत्य बोलने से पुण्य नहीं मिलता, प्रत्युत पाप लगता है।”

कृष्ण ने तब कौशिक नामक एक व्यक्ति की कथा सुनाई, जो अधिक विद्वान नहीं था, परन्तु सत्यशील होना चाहता था। वह सत्यवक्ता के रूप में प्रसिद्ध था। एक दिन जब वह बैठा था, तब कुछ लोग उसके पास से भागकर निकले। कुछ समय बाद, उसे डकैतों का एक गिरोह दिखाई दिया। डकैत उसके पास आए और उन लोगों के ठिकाने के बारे में पूछा, जिनका वे पीछा कर रहे थे। कौशिक ने सत्य के कथन को अमूल्य मानते हुए, उस ओर सूचित किया जिधर वे लोग गए थे। डाकुओं ने उनका पीछा फ़िर से प्रारम्भ किया और अन्ततः उन लोगों का वध कर दिया। तब कृष्ण ने बताया कि तथ्यपूर्ण कथन मात्र से, कौशिक को न केवल कोई पुण्य नहीं मिला, अपितु

उसने पाप अर्जित किया। भगवान ने कहा कि ऐसी परिस्थिति में, कौशिक को चुप रहना चाहिए था। अन्यथा, यदि उसका शान्त रहना भी इसका सूचक हो जाता कि वे लोग किस दिशा में गए हैं, तो वह उन्हें त्रुटिपूर्ण मार्ग बता सकता था।

कृष्ण ने अर्जुन को स्पष्टीकरण देते हुए बताया कि युधिष्ठिर गहरी वेदना से आकुलित थे और कर्ण द्वारा अपमानित थे। कर्ण ने युधिष्ठिर पर आक्रमण कर दिया था, तब भी जबकि युधिष्ठिर ने लड़ाई रोक दी थी। इस प्रकार, युधिष्ठिर एक दुःखित मनःस्थिति में थे जब उन्होंने अर्जुन को भलाबुरा कहा। इसके अतिरिक्त, अपने कठोर वचनों से, उन्होंने अर्जुन को कर्ण का वध करने के लिए उत्तेजित किया, क्योंकि वे जानते थे कि अर्जुन में उतनी पर्याप्त क्षमता है। भगवान ने समझाया कि चूँकि युधिष्ठिर एक श्रेष्ठ व्यक्ति हैं — जो अर्जुन के लिए सम्मानयोग्य हैं और उनके शब्दों की पर्याप्त रूप में पुष्टि की जा सकती है — तो यह अर्जुन के लिए अत्यन्त अनुचित होगा कि वह युधिष्ठिर का वध कर दें; इस प्रकार का कृत्य तो अहिंसा का घोर उल्लङ्घन होगा, जो सर्वोच्च धर्म है।

अर्जुन ने कृष्ण से यह स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट करने का अनुरोध किया कि उसे क्या करना चाहिए, क्योंकि एक ओर, युधिष्ठिर की हत्या करना उनके लिए त्रुटियुक्त था और दूसरी ओर, उसे अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनी थी। भगवान बोले, “जब एक महान, बहुत सम्मानित व्यक्ति का अत्यधिक अपमान किया जाता है, तो वह मृत समान हो जाता है। अथर्ववेद सिखाता है कि एक प्रतिष्ठित नेता के प्रति अनादरपूर्वक बोलना, उसके जीवन को समाप्त किए बिना उसे मारने के समान है। इस शास्त्र वचन की सहायता लेते हुए, युधिष्ठिर का अपमान करके, अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो। इसके बाद, उनके चरणों में गिरकर क्षमा माँगो। धर्मनिष्ठ और समझदार होने के कारण, वे तुम्हें क्षमा कर देंगे।”

कृष्ण के कहने पर, अर्जुन ने युधिष्ठिर को बुरी तरह डाँटना प्रारम्भ कर दिया। “आप इस स्थान पर भाग आए हैं जो युद्धभूमि से बहुत दूर है और अपने

शुभचिन्तकों के बाहुबल पर अपनी सुरक्षा के लिए पूरी तरह से निर्भर हैं। आप में और शूरवीर तथा शक्तिशाली भीम में कितना अन्तर है! उसके विपरीत, आप मुझमें दोष ढूँढ़ने के लिए सर्वथा योग्य नहीं हैं। आपको जुए की लत है। यह आप ही के कारण से है कि हमने अपना राज्य खो दिया और हमें गम्भीर कठिनाइयाँ झेलनी पड़ीं," अर्जुन ने कहा।

जैसे ही उसने अपनी निन्दा समाप्त की, वह पछतावे से अभिभूत हो गया। उसने फ़िर से अपना खड्ग निकाला। ऊपर-ऊपर से आश्चर्यचकित कृष्ण ने पूछा, "अरे! अब क्या समस्या है?" अर्जुन ने कहा कि वह अपना देह-त्याग करना चाहता है क्योंकि उसने अपने बड़े भाई के प्रति अनुचित व्यवहार किया था, जो वास्तव में उसके द्वारा पूजा के योग्य हैं।

भगवान ने उसे यह कहते हुए रोक दिया, "सोचो कि यदि तुम युधिष्ठिर को मार डालते तो कितना भयानक होता। उस अधर्म कृत्य से बचने के लिए ही तुमने उनकी असभ्य शब्दों में निन्दा की। तो फ़िर तुम शोक में क्यों डूबे हो? तुम आत्महत्या करना चाहते हो, परन्तु वह ऐसा काम है जो बुद्धिमान लोग कभी नहीं करते। यदि तुम अपने आप को मार डालोगे, तो उससे तुम्हें जो पाप लगेगा, वह अपने भाई को मार डालने से लगने वाले पाप से अधिक होगा; तुम नरक में अत्यधिक दुःख भोगोगे। आत्मस्तुति आत्महत्या के समतुल्य है। इसलिए, अपनी स्तुति करो और इस तरह, तुम यह जो आत्महत्या करना चाहते हो, उसके समान कार्य कर दोगे।"

अर्जुन तब शेखी बघारने लगे, "पिनाक धनुष के धारक और एकमात्र भगवान शिव जी के अतिरिक्त, धनुर्विद्या में मेरे समान कोई नहीं है। मैं पूरे ब्रह्माण्ड को, इसके निवासियों के साथ, अकेले ही नष्ट कर सकता हूँ। मैं ही वह हूँ, जिसने अतीत में विभिन्न दिशाओं में शासन करने वाले राजाओं को हराया और उन्हें आपके अधीन कर दिया, हे युधिष्ठिर, मैंने अब कौरवों की आधी सेना को नष्ट कर दिया है।" भगवान द्वारा अपनी प्रतिज्ञा तोड़ने, युधिष्ठिर का वध करने और आत्महत्या करने के पापों से बचाए जाने के बाद, अर्जुन ने अपने भाई को प्रणाम किया और क्षमा की भीख माँगी!

युधिष्ठिर को प्रसन्न करने के बाद, अर्जुन ने युद्ध के मैदान में लौटने के लिए स्वयं को सन्नद्ध किया। "मेरा जीवन वह करने के लिए है जो आपको भाता है," उसने कहा। इस बीच, युधिष्ठिर, जो पहले चुपचाप अर्जुन की डाँट को सुन चुके थे, उदास हो गए और उन्हें लगा कि वे नीच हैं। वे बोले, "मैं एक नीच पापी हूँ, जिसने तुम सबको इतना कष्ट पहुँचाया है। मैं मारे जाने के योग्य हूँ। भीम शासन करने में सक्षम है और उसे राजा बनना चाहिए, न कि मुझे जो शक्तिहीन हूँ। मैं वन के लिए प्रस्थान करूंगा।"

युधिष्ठिर जाने के लिए अपनी खाट से उठ खड़े हुए, परन्तु कृष्ण उनके चरणों में गिर पड़े और विनती की, "अर्जुन किसी को भी — जिसने उसे दूसरे को गाण्डीव देने के लिए कहा हो — मारने की अपनी प्रतिज्ञा को झूठा नहीं ठहरा सकता था। इसलिए, मेरे सुझाव को ध्यान में रखते हुए, उसने आपसे अनादरपूर्वक बात की, और इस तरह, अपने वादे को पूरा कर लिया। हम आपकी शरण चाहते हैं। आपको प्रणाम करते हुए, मैं आपसे विनती करता हूँ कि कृपया हमारे अपराधों को क्षमा करें। आप कर्ण की मृत्यु चाहते थे। आज उसका वध किया जाएगा और धरती उसका रक्त पीएगी।"

पूरी तरह से प्रसन्न होकर युधिष्ठिर ने कृष्ण को ऊपर उठाया और उनसे कहा, "अर्जुन और मैं भ्रमित थे और हम विपत्ति तथा दुःख के सागर में डूब गए होंगे। आपने हमें बचा लिया। आपकी बुद्धिमत्ता वह नाव है जिसने हमें सुरक्षित रूप से किनारे तक पहुँचने में सक्षम बनाया है।"

महाभारत का यह प्रसङ्ग दर्शाता है कि जबकि किसी व्यक्ति को सदैव सत्य का पालन करना चाहिए, परन्तु सत्यशीलता के कई सूक्ष्म पहलू होते हैं। जब विचार-विषय जटिल हों, तो महात्माओं के आचरण और सुझावों का आश्रय लेना चाहिए।

13. वेदोच्चारण त्रुटिहीन होना चाहिए

एक निर्धन पण्डित की अविवाहित बेटियाँ थीं। उसे नहीं पता था कि उनके विवाह के लिए पैसे कैसे जुटाएँ। एक मित्र ने उससे कहा, “सङ्गीतकारों को बढ़िया पुरस्कार मिलते हैं।” परिणामस्वरूप, उसके मन में गायन सीखने की इच्छा पैदा हुई। उसने पाया कि अपने स्वर को प्रशिक्षित करने के लिए, उसे लम्बे समय तक गायन का अभ्यास करना होगा। इसलिए, वह अपने गाँव के बाहर स्थित एक पेड़ के नीचे बैठ गया और गायन का अभ्यास करने लगा। परन्तु उससे जो स्वर निकला, वह केवल कर्कश और अपस्वर था।

एक भूत जो कि पहले एक सङ्गीतकार था, उस पेड़ पर रहता था। वह पण्डित द्वारा सङ्गीत की हत्या को सह नहीं पाया। इसलिए, उसने उससे कहा, “मैं एक सङ्गीत जानने वाला भूत हूँ। यह पेड़ मेरा घर है। तुम्हारा कर्णकटु स्वर मेरे लिए यहाँ रहना असम्भव बना रहा है। कहीं और चले जाओ।” पण्डित ने उत्तर दिया, “मैं क्यों जाऊँ? मैं धन कमाना चाहता हूँ और उसके लिए मैं उत्कट अभ्यास करके गीतकार बनना चाहता हूँ। अभ्यास के लिए यह मेरा चुना हुआ स्थान है।”

भूत बोला, “चूँकि जो तुम चाहते हो वह धन है, मैं तुम्हें बताऊँगा कि तुम उसे कैसे कमा सकते हो। मैं राजकुमारी को वश में कर लूँगा। राजा अपने वैद्यों को उसकी देखभाल करने के लिए नियुक्त करेगा। परन्तु, वे उसकी चिकित्सा करने में असमर्थ होंगे। तब तुम राजा से मिलने का अनुरोध करना। उससे कहना कि राजकुमारी एक भूत के वश में है और उसे तुम झाड़–फूँक करके भगा सकते हो। राजा की अनुमति से, राजकुमारी के पास जाना और वहाँ वैसे ही गाना जैसे तुम अभी गा रहे हो। मैं, जो तुम्हारे कर्कश अपस्वर को नहीं सह पाऊँगा, राजकुमारी को तुरन्त छोड़ दूँगा। वह ठीक हो जाएगी। राजा तुम्हें बढ़िया पारितोषिक प्रदान करेगा। उसके बाद, तुम्हें यहाँ आने और सङ्गीत की हत्या करने की कोई आवश्यकता नहीं होगी।”

वह पण्डित सहमत हो गया और भूत की योजना को उसने सफलतापूर्वक क्रियान्वित कर दिया। परिणामस्वरूप, पण्डित अपनी बेटियों के विवाह के लिए पर्याप्त से अधिक धन प्राप्त करने में सक्षम बन गया; जबकि भूत अपने वृक्ष पर शान्ति से रहने लगा।

जैसे कहानी का वह सङ्गीत जानने वाला भूत उस निर्धन व्यक्ति की कर्कशता से विक्षुब्ध हो गया था, ठीक उसी तरह वैदिक विद्वान जब कोई उनकी उपस्थिति में पवित्र वेद मन्त्रों का त्रुटिपूर्ण उच्चारण करता है, तब वे विक्षुब्ध हो जाते हैं।

जबकि दोषपूर्ण गायन अपवादात्मक रूप से कुछ पुरस्कार दिला सकता है जैसा कि इस कहानी में दर्शित है, वेदों के दोषपूर्ण पठन से पाठक को अवश्य पाप लगेगा। शब्दों या स्वरों में त्रुटियों के बिना, वेद को सही ढंग से सीखने और पाठ करने के लिए सावधानी रखनी चाहिए। जबकि ऐसा कोई नियम नहीं है कि किसी व्यक्ति को अवश्य सङ्गीत सीखना चाहिए, परन्तु एक अधिकृत व्यक्ति के लिए, किसी आचार्य से वैदिक मन्त्रों को सीखना और उनका सही ढंग से पाठ करना विहित कर्तव्य है। इस कर्तव्य को पूरा करने से, पाठ करने वाला व्यक्ति पुण्य प्राप्त करता है; उसकी उपेक्षा करके वह पापग्रस्त होता है।

14. वैदिक मन्त्रों की शक्ति

एक बार, भारत के अधिकांश निवासी कई पाप कृत्य कर रहे थे और नरक में जा रहे थे। ईश्वर ने करुणा से उन्हें श्रीरुद्र-मन्त्र सिखाया, ताकि सभी नरक की यातनाओं से बच सकें। सभी लोग पवित्र नदियों में स्नान करने लगे और श्रीरुद्र-मन्त्र के माध्यम से भगवान शिव जी की पूजा करने लगे।

इस बीच, मृत्यु के देवता यमराज चिन्तित होने लगे। “आजकल, कोई भी नरक में नहीं आता है। मेरे नरक का राजा होने का क्या लाभ है, जिसमें कोई

है ही नहीं जिस पर मैं राज कर सकूँ?” वे शोकाकुल हो गए। भगवान ब्रह्मा जी के पास जाकर उन्होंने परिवाद की, “मेरी कोई प्रजा नहीं है। इसलिए, मैं अब निवृत्त होना चाहता हूँ।” भगवान ब्रह्मा ने उत्तर दिया, “यह सत्य है कि लोग रुद्र का पाठ करते हैं और आपकी पकड़ से बच निकलते हैं। हालाँकि, मैं आपको दो दूत — अश्रद्धा (विश्वास की अनुपस्थिति) और दुर्मेधा (विकृत सोच) — दूँगा। इनके कारण, लोग सोचने लगेंगे कि श्रीरुद्र का पाठ उतना प्रभावशाली नहीं है जितना कि कहा जाता है। इसलिए, वे इसे ठीक से नहीं करेंगे। स्पष्ट रूप से, वे पाप से मुक्त नहीं होंगे।”

कहानी से पता चलता है कि केवल किसी मन्त्र का पाठ करना पर्याप्त नहीं है। विश्वास और उचित मनोभाव भी आवश्यक हैं। यदि ये हैं, तो पाठ का पूरा फल पाठक को प्राप्त होगा।

15. माता-पिता और सन्तान

एक सुन्दर बच्चा था जिसके माता-पिता निर्धन थे। एक धनवान निस्सन्तान दम्पती निकट ही रहते थे। उन्होंने उस बच्चे के माता-पिता से सम्पर्क किया और अनुरोध किया, “कृपया हमें आपके बच्चे को गोद लेने दीजिए।” माता दुविधा में थी। वहीं पिता ने कहा, “हम निर्धन हैं और अपने प्रिय बच्चे को अच्छा खाना, कपड़े या सुविधाएँ नहीं दे सकते। हमारा बच्चा, अन्ततोगत्वा, निकट के घर में रहेगा और इसलिए, हम इसे हर दिन देख सकते हैं। यह बच्चे के हित में होगा कि हम इसे सौंप दें।” अनिच्छापूर्वक माता सहमत हो गई।

बच्चे को नए घर में सभी सुविधाएँ दी गईं। हालाँकि, समय बीतने के साथ, उस धनी दम्पती ने बच्चे के माता-पिता को उसे देखने आने से मना कर दिया। माता अचम्भे में पड़ गई और फूट-फूटकर रोने लगी। परन्तु, बेचारी महिला स्वयं को समझाने के अतिरिक्त क्या कर सकती थी? एक दिन, उस धनिक के सेवक ने उस महिला से कहा, “बच्चे को चेचक हो गई है और

कोई भी इसके समीप नहीं जाना चाहता।” ओछे की प्रीत, बालू की भीत! “ओह, मेरा बेटा,” माता रोने लगी, और उस धनिक के घर पहुँचकर, अपने प्रिय बच्चे को अपनी बाहों में भर लिया।

यह कहानी दर्शाती है कि माता का अपने बेटे के प्रति प्रेम तीव्र और निरुपाधिक होता है। माता-पिता अपनी सन्तानों के कल्याण के लिए प्रयास करते हैं। वे अपनी सन्तान के लिए अनगिनत कष्टों और असुविधाओं को सहते हैं। इसलिए, यह आश्चर्यजनक नहीं है कि वेद घोषणा करते हैं, “माता को देवता के समान सम्मान दें (मातृदेवो भव)। पिता को देवता के समान सम्मान दें (पितृदेवो भव)।” मनु ने कहा है कि माता तो पिता से दस गुनी अधिक सम्माननीया है। किसी भी स्थिति में, एक व्यक्ति के लिए अपने माता-पिता में से किसी के प्रति कृतज्ञता के आभार का ऋण चुकाना असम्भव है। यदि वह उनके प्रति कृतघ्न होता, तो वह एक ऐसा जघन्य पाप कर रहा होगा जिसका कोई प्रायश्चित्त नहीं है।

शास्त्र तो पुत्र के अपने माता-पिता के प्रति कर्तव्यों की बात करते हैं। जब उसके माता-पिता जीवित हों, उसे उनकी बात माननी चाहिए। उनके चल बसने के पश्चात्, उनको वार्षिक श्राद्ध-तर्पण का विधिवत् अनुष्ठान करना चाहिए। कम से कम, एक बार गयाक्षेत्र में श्राद्ध करना अत्यन्त प्रशस्त माना गया है।

एक व्यक्ति किसी दूसरे शहर में रहने वाले अपने सम्बन्धी को कुछ पैसे भेजना चाहता था। इसलिए, वह डाकघर गया और उसने एक मनी-ऑर्डर फॉर्म प्राप्त किया। उसे भरकर उसने जितनी धनराशि वह अपने सम्बन्धी को भेजना चाहता था, उतनी धनराशि के साथ उपयुक्त काउंटर पर प्रस्तुत किया। उसकी वह धनराशि तो डॉकघर में ही रही, परन्तु उतनी ही धनराशि का नकद उसके सम्बन्धी को पहुँचा दिया गया।

इसी प्रकार किसी व्यक्ति के द्वारा जो कुछ श्रद्धापूर्वक विधिवत् किए गए श्राद्धकर्म में दान किया जाता है, वह ईश्वर की शक्ति से, उन लोगों तक

लाभदायक रूप में पहुँच जाता है, जिनके हेतु श्राद्ध किया गया है, भले ही वे पितृलोक में हों अथवा धरती पर पुनर्जन्म पा चुके हों। और तो और, श्राद्धकर्म से कर्ता को भी लाभ मिलता है, क्योंकि उसे बहुत पुण्य मिलता है और वह पितरों का आशीर्वाद प्राप्त करता है। यदि वह श्राद्धकर्म करने से बचता है, तो वह शास्त्र-विहित कर्तव्य को त्यागने का दोषी होगा और पाप का भागी बनेगा।

माता-पिता को अपनी ओर से, अपनी सन्तान में अच्छे आचार और धार्मिकता का समावेश करने का प्रयास करना चाहिए।

16. कृतज्ञता

एक व्यक्ति ने एक धनी व्यापारी के विरुद्ध उसे ठगने का तथा असावधानी के कारण, अपने अधीनस्थ लोगों को चोट पहुँचाने का आरोप लेकर, न्यायालय में आपराधिक कार्यवाही करने की धमकी दी। धनिक व्याकुल हो गया और उसने इस समस्या पर न्याय की प्रक्रिया को समझनेवाले अपने एक मित्र से गम्भीरतापूर्वक चर्चा की। उस मित्र ने उससे कहा कि वह बड़े सङ्कट में पड़ने वाला है। उसने धनिक को यह परामर्श दिया कि वह तत्काल किसी श्रेष्ठ न्यायवादी को उस कार्य में लगाए; उसने एक न्यायवादी के नाम का परामर्श भी दिया। उस धनिक ने तुरन्त उस न्यायवादी को फ़ोन किया और उससे मिलने का समय माँगा। उसने सङ्क्षेप में अपनी समस्या के विषय में भी बता दिया। उस न्यायवादी ने उसे बताया कि वह दो दिन बाद छुट्टी पर बाहर जाने वाला है और इसलिए, इस अभियोग को नहीं देख पाएगा। धनिक ने बहुत आग्रह किया। तथापि, न्यायवादी अपने निश्चय पर दृढ़ ही रहा।

उसी सन्ध्या, न्यायवादी उस धनिक को अपने घर पर प्रतीक्षारत पाकर आश्चर्यचकित हो गया। उस सम्भाव्य पक्षकार ने इतना आग्रह किया कि अन्ततः, उस न्यायवादी ने उससे कहा, “आप अभियोग का विवरण कल

प्रातःकाल मेरे कार्यालय में भेज दीजिए। मैं कागजों को पढ़ूँगा और फ़िर अभियोग को स्वीकार अथवा अस्वीकार करने के अपने निर्णय के बारे में आपको फ़ोन पर बताऊँगा।" अगले प्रातः जब न्यायवादी अपने कार्यालय पहुँचा, तो वहाँ उसने उस धनी व्यक्ति को स्वयं ही उपस्थित पाया। समस्या के विवरण को सुनने और यथोचित प्रलेखों को पढ़ने के बाद, न्यायवादी ने कहा, "आपका पक्ष बहुत दुर्बल है। आपके बचाव के लिए बहुत तैयारी और पढ़ने की आवश्यकता है। मुझ पर समय का बहुत दबाव है और कल छुट्टी पर निकलने की योजना भी है। इसलिए, मैं परामर्श देता हूँ कि आप किसी अन्य न्यायवादी से सम्पर्क करें।" "कृपया मुझे मना न करें," धनवान व्यक्ति ने अनुरोध किया, "मैं आपके पास सङ्कट में सहायता माँगने आया हूँ जैसे विभीषण भगवान राम के पास गए थे। मैं आप पर विश्वास कर रहा हूँ। कृपया मुझे निराश न करें। इस अभियोग से सम्बन्धित आपका शुल्क और अन्य खर्च कितना भी हो, पर चिन्ता नहीं; मैं भुगतान करने के लिए सिद्ध हूँ। पैसा तो कोई मापदण्ड नहीं है।" उस व्यक्ति की विनती से प्रभावित होकर न्यायवादी ने अपनी छुट्टियाँ निरस्त कर दीं और उस व्यक्ति का अभियोग स्वीकार कर लिया।

शीघ्र ही, उस धनी व्यक्ति को बँदी बना दिए जाने का अधिकारपत्र निकल गया। उसने तुरन्त अपने न्यायवादी को फ़ोन किया और सिसकते हुए रुक-रुककर बोलने लगा, "मेरी सहायता कीजिए! यदि मुझे कारागृह में चौबीस घंटे भी बिताने पड़े, तो मैं क्लेश से मर जाऊँगा।" न्यायवादी ने प्रभावपूर्ण ढंग से अभियोग पक्ष के द्वारा उसे छोड़े जाने के विरुद्ध उठाए गए बिन्दुओं का खण्डन किया और न्यायाधीश महोदय को उस व्यक्ति को प्रतिभूति देने के लिए मनवा लिया। उसके छूटने के बाद, उस व्यक्ति के मित्र ने उससे कहा कि वह न्यायवादी बहुत प्रभावशाली है। तथापि, वह धनी विशेष रूप से कृतज्ञ नहीं था और उसने कहा, "वैसे तो सम्भवतः, मुझे प्रतिभूति पर बाहर निकालना एक सरल कार्य था।"

शीघ्र ही, मुख्य अभियोग सुनवाई के लिए प्रस्तुत किया गया। न्यायवादी ने बचाव कार्य बड़े ही प्रतिभाशाली ढंग से किया। इसके अतिरिक्त,

अभियोजन पक्ष के लिए अज्ञात कारणों से, उसका मुख्य साक्षी पुलिस को बताई गई बातों से पीछे हट गया। अतः, उस धनिक को मुक्त कर दिया गया। उसने केवल यूँ ही अपने न्यायवादी को धन्यवाद दिया और, उल्लास से भरपूर, आनन्द लेने के लिए बाहर चला गया। उस सायंकाल, जब वह अपने घर में आराम कर रहा था, उसके सेवक ने फ़ोन उठाया और उसे बताया कि उसका न्यायवादी उससे बात करना चाहता है। हालाँकि, उसने अपने सेवक से यह बताने के लिए कहा कि वह बाहर गया है। न्यायवादी ने उसे वापस फ़ोन करने के लिए एक सन्देश छोड़ दिया। मगर उस धनी व्यक्ति ने न्यायवादी से सम्पर्क करने का कष्ट नहीं उठाया। इसके बदले, अगले दिन वह एक महीने लम्बी छुट्टी पर चला गया।

जब वह वापस लौटा, तो उसे न्यायवादी की ओर से बिल मिला। उसने अपने सचिव को बुलाकर उससे कहा कि वह न्यायवादी से मिले और किसी भी तरह से जितना सम्भव हो सके शुल्क कम करवाए। सचिव ने जैसा कहा था वैसा ही किया। सचिव की सौदेबाजी से जुगुप्सित न्यायवादी ने कहा, "मैं उससे जुगुप्सित हूँ। मुझे कभी भी उसका अभियोग नहीं लेना चाहिए था। वह जितना चाहता है, भुगतान करे अथवा कुछ भी न दे।" उस धनिक व्यक्ति ने तब जो भुगतान करना था, उसका लगभग 50 प्रतिशत ही भुगतान किया।

उसके मित्र ने, जिसने उसे न्यायवादी के नाम का परामर्श दिया था, उससे कहा, "इससे पहले, तुमने उनके घर और कार्यालय में प्रतीक्षा की और उनसे अपनी सहायता करने का अनुरोध किया। तुमने तो यहाँ तक कह दिया कि मैं आपसे सहायता माँगने आया हूँ, जैसे विभीषण राम के पास गए थे। फ़िर भी, अभियोग जीत जाने पर, तुम न केवल उससे मिलने नहीं गए, अपितु उससे फ़ोन पर बात करने से भी बचते रहे। तुमने पहले कहा था कि धनराशि कोई मापदण्ड नहीं है। अब तुम तुम्हें मिले साधारण बिल का भुगतान करने को भी उद्यत नहीं हो। क्या तुम्हें स्वयं पर लज्जा नहीं आती?" वह धनी व्यक्ति ने उदासीनता से उत्तर दिया, "इसमें मेरे लिए

लज्जित होने की कोई बात नहीं है। वास्तव में, मेरे विरुद्ध अभियोग निर्बल था। उस न्यायवादी की भूमिका महत्त्वहीन थी। अतः, मैं उसे इतना अधिक भुगतान क्यों करूं? यहाँ इस अवसर पर विभीषण और राम का सन्दर्भ मत लाओ क्योंकि राम ने विभीषण को सुरक्षा प्रदान करने के लिए, कोई बिल तो प्रस्तुत नहीं किया था। पैसे के अपने लालच के कारण ही इस न्यायवादी ने अपनी छुट्टी रद्द कर दी और मेरा अभियोग अपने हाथ में ले लिया। उसने मुझ पर कोई उपकार नहीं किया है।"

ऐसे भी लोग हैं जो भगवान से भी वैसे ही व्यवहार करते हैं जैसे उस धनी व्यक्ति ने न्यायवादी के प्रति किया।

एक बार, एक ग्रामीण अपने गाँव से कुछ दूरी पर स्थित एक ताड़ के पेड़ की चोटी पर चढ़ गया था, जब उसने एक बाघ की गड़गड़ाहट सुनी। फ़िर उसने देखा कि बाघ पेड़ के तल तक आकर, वहाँ बैठा है और ऊपर देख रहा है। वह पेड़ पर बहुत असहज अनुभव कर रहा था और जानता था कि वह वहाँ अधिक समय तक नहीं रह सकता। इसलिए, बाघ को भगाने के प्रयास में, उसने अपना हाथ लहराया और उस पर चिल्लाया। उत्तर में बाघ गुर्राया।

प्राण के भय से, उस व्यक्ति ने अपने इष्ट-देवता से प्रार्थना की, "हे देवी, अगर मैं इस सङ्कट से उबरकर सुरक्षित घर पहुँच जाऊँ, तो मैं आपके लिए एक बकरी की बलि दूँगा। मैं असहायक हूँ।" इसके बाद, उस व्यक्ति ने बाघ को धीरे-धीरे उठते और उससे दूर जाते देखा। कुछ साहस जुटाकर वह थोड़ा नीचे उतरा। उसने फ़िर से नीचे देखा और पाया कि बाघ पास में नहीं था और सतत दूर जा रहा था। उसका भय उतर गया। उसने सोचा, "बलिदान के लिए एक बकरा क्रय करने के लिए मुझे सैकड़ों रुपये ख़र्च करने पड़ेंगे। लोग देवी को न केवल बकरियाँ, अपितु मुर्गियाँ भी, चढ़ाते हैं। एक बकरी की तुलना में एक मुर्गी बहुत सस्ती है। तो, क्यों न मैं एक मुर्गी चढ़ाऊँ?" इसलिए, उन्होंने मानसिक रूप से देवी को बताया, "देवी,

मैं आपको एक बकरी के बदले, एक मुर्गी चढ़ाऊँगा।" फ़िर वह और उतरने लगा।

जब उसका उतरना आधे से अधिक पूरा हो गया, तो उसने चारों ओर देखा और पाया कि बाघ दिखाई नहीं दे रहा था। उसका भय और भी कम हो गया। उसने सोचा, "मुर्गी भी महंगी होती है। तो क्यों न मैं एक और प्राणी की बलि दे दूं जो कुछ मात्रा में मुर्गी के आकार का हो?" परिणामस्वरूप, उसने देवी से कहा कि वह एक बड़े चूहे की बलि दे देगा। वह शीघ्र ही धरती पर पहुँच गया। उसने इधर-उधर देखा और पाया कि बाघ कहीं नहीं है।

अब उसने सोचा, "यह सत्य है कि एक बड़े चूहे को फन्दे में फँसाकर उसका वध करने में मेरा कुछ व्यय होने वाला नहीं है। फ़िर भी, एक बड़े चूहे को पकड़ना कठिन है। देवी ने मेरा जीवन बचाया है। मेरी प्रार्थना को सुनने के बदले में, मुझे उन्हें एक जीवन की बलि देनी चाहिए। यह आवश्यक नहीं है कि मैं एक बड़ा चूहा ही दूँ; किसी भी जीव से काम चल जाएगा।" इस प्रकार निश्चय करते हुए, उसने एक छोटे से केकड़े को उठाया जोकि धरती पर पड़ा था और उसे कुचल दिया। वह सन्तुष्ट था कि उसने देवी से अपना वचन पूरा कर लिया है; उसने जो किया था, उससे बहुत प्रसन्न होकर, सुरक्षित होने के सन्तोष से, वह घर चला गया।

सङ्कट में होने पर लोग प्रायः मानवीय अथवा दैवीय सहायता माँगते हैं। कठिनाई के दूर होने पर, लाभ पहुँचाने वाले की अनदेखी करने या उसे भूल जाने की प्रवृत्ति अनुचित है और इस भावना का प्रतिरोध करना चाहिए। कृतघ्नता एक पाप है, जिसका कोई प्रायश्चित्त नहीं है। एक सच्चे भक्त का मन भगवान पर केन्द्रित रहता है, चाहे सब कुछ ठीक हो अथवा वह गम्भीर समस्या में पड़ गया हो। भागवत-पुराण में कहा गया है — कुन्ती ने भगवान कृष्ण से इस सीमा तक अनुरोध किया, "हे जगद्गुरो, विपत्तियाँ सदैव हम पर पड़ती रहें, क्योंकि जब जब आप हमारी सहायता के लिए आते रहेंगे, तब तब हम आपका जन्म-मृत्यु चक्र से मुक्ति प्रदान करने वाला यह अमोघ दर्शन प्राप्त करेंगे।" रामायण में कहा गया है — "अपने आत्म-संयम के

नाते, राम अपने साथ किए गए सैकड़ों अपकारों को नहीं स्मरण करते, परन्तु किसी के द्वारा अपने पर किए गए एक ही उपकार से तृप्त हो जाते हैं।”

17. दूसरों का भला करना

विष्णु भगवान कैवल्य अवस्था में रहते थे। एक बार, उन्होंने यह जानना चाहा कि जगत् में सबसे भारी अथवा सबसे उत्कृष्ट वस्तु क्या है। अतः, उन्होंने एक तुला उठाई और अपनी अवस्था कैवल्य को एक पलड़े पर रख दिया। दूसरे पलड़े पर उन्होंने एक के बाद एक, सृष्टि की विभिन्न वस्तुओं — स्वर्ग, दूसरे लोकों, धन-सम्पदा इत्यादि — को रखा। तथापि, भले ही उन्होंने उस पलड़े पर कुछ भी रखा हो, फ़िर भी, कैवल्य का पलड़ा भारी ही बना रहा। इसने उठने का कोई सङ्केत ही नहीं दिखाया। प्रभु ने सोचा, “अरे, क्या संसार में कैवल्य अवस्था से मेल खाने वाली कोई वस्तु नहीं है?” अन्ततः, उन्होंने परोपकार को उठाया और उसे तुला के उस दूसरे पलड़े पर रख दिया। जो पलड़ा ऊपर था, वह नीचे आ गया, जबकि नीचे का पलड़ा उठ गया। भगवान ने यह निश्चय किया कि ‘दूसरों का भला करना’ वास्तव में भारी है और सबसे श्रेष्ठ वस्तु है। भगवान ने तब सोचा, “तो मुझे क्या करना चाहिए? मैं अवतार लूँगा और लोगों का भला करूँगा।”

सर्वप्रथम मछली के रूप में अवतार लेने के बाद, भगवान उत्तरोत्तर एक मनुष्य के रूप में प्रकट हुए। अपने मत्स्यावतार में उन्होंने वेदों का उत्थान किया। हालाँकि, लोगों की ओर से ऐसी आपत्ति का अवसर था, “क्या हमारे लिए मछली बनना सम्भव है? क्या हम वेदों का उत्थान कर सकते हैं? नहीं। अतः, यह अवतार हमारे लिए कैसे आदर्श और अनुकरणीय होगा?” तब भगवान एक कछुए के रूप में अवतरित हुए और उन्होंने एक बड़े पहाड़ को उठा लिया। यहाँ भी, लोगों के लिए यह सोचने का अवसर था, “हमारे पास न तो कछुए के रूप में अवतरित होने की क्षमता है, न ही पहाड़ को उठाने की

शक्ति। अतः, हमें स्वयं को कूर्मावतार के विषय की सोच से लगाने में क्या लाभ है?"

समय बीतते-बीतते, भगवान ने पशु रूपों को त्याग दिया और वे नरसिंह के, रूप में प्रकट हुए। तब भी, लोगों के पास आक्षेप जताने का अवसर था, "हमारे समक्ष तो वध करने के लिए कोई हिरण्यकशिपु नहीं है। इसके अतिरिक्त, हमारे पास तो नरसिंह की शक्ति भी नहीं है। तो, हम कैसे नरसिंह का अनुकरण कर सकते हैं और अपना जीवन व्यतीत कर सकते हैं?" आगे चलकर, भगवान ने एक आदर्श व्यक्ति मर्यादा पुरुषोत्तम राम के रूप में अवतार लिया। लोगों को तब लगा, "आह! वे तो हमारे जैसे ही हैं। उनके भी माता, पिता, भाई और पत्नी हैं। उनके पास वही है जो हमारे पास है। हमने कुछ कठिनाइयों का सामना किया है। परन्तु, उन्होंने हमारी तुलना में बहुत अधिक कष्टों का सामना किया है। वे जंगल में चौदह वर्षों तक रहे। वहीं दूसरी ओर, हम, अपनी छोटी-छोटी समस्याओं को भी सहन करना बड़ा समझते हैं। अतः, ऐसा लगता है कि हमें जो मार्ग उन्होंने दिखाया है, वह हमारे द्वारा अनुसरण किए जाने के लिए उचित है।"

गाय जैसे पशुओं के जीवन को ध्यान में रखते हुए, दूसरों की सहायता करने के बारे में बहुत कुछ सीखा जा सकता है। भगवान ने बछड़े के लिए दूध बनाया। हालाँकि, लोग भी गाय के दूध को प्राप्त कर सकते हैं और इसे पी सकते हैं। वे गाय के गोबर को खेतों में खाद के रूप में प्रयोग करते हैं। यहाँ तक कि गोमूत्र को भी पवित्र माना जाता है और इसकी थोड़ी मात्रा लोग आत्मशुद्धि के लिए पञ्चगव्य — गाय के गोबर, गोमूत्र, घी, दही और दूध का मिश्रण — के रूप में सेवन करते हैं। हर तरह से गाय उपयोगी होती है। लोग सभी प्रकार के पशुओं के चर्म का उपयोग करते हैं। पशुचर्म की बनी पेटी को देखकर, लोग कहते हैं "वाह रे वाह, बहुत बढ़िया!" इस तरह, यहाँ तक कि एक मरा हुआ पशु भी दूसरों के लिए लाभप्रद होता है। वहीं दूसरी ओर, यदि वह पेटी मानव त्वचा की बनी होती, तो कोई उसे छूता भी नहीं। लोग उसे घिनौना मानते हैं।

मृत्यु के बाद अनुपयोगी होने के कारण, यदि किसी मनुष्य को दूसरों का भला करना है, तो उसे जीवित रहते ही ऐसा कर देना चाहिए। इसलिए, कहा गया है, "उस मनुष्य के जीवन पर धिक्कार है जो दूसरों का भला नहीं करता! पशु लम्बे समय तक जीवित रहें, जो मृत्यु के बाद भी अपने पशुचर्म के माध्यम से दूसरों की सेवा करते रहते हैं।" शास्त्रों द्वारा दूसरों की भलाई करने की प्रवृत्ति को इतना महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

18. दूसरों की पीड़ा से प्रसन्नता का अनुभव

दो मित्र एक सङ्ग्रहालय गए। वहाँ घूमते-घूमते, उन्हें हनुमान जी की एक प्रतिमा दिखाई दी। उनमें से एक लड़के ने ध्यान से देखने पर यह पाया कि हनुमान जी की पूँछ की लम्बाई सामान्य से थोड़ी अधिक थी। वह उस मूर्ति के पास गया और उसने देखा कि पूँछ के सिरे पर एक घंटी बँधी हुई है। कौतुहल के बढ़ने पर, उसने अपना हाथ घंटी के अन्दर रख दिया। अगले ही पल, वह चिल्लाया और उसने अपना हाथ हटा लिया। जब दूसरे लड़के ने उससे चीखने का कारण पूछा, तो उसने उत्तर दिया, "ओह! मैं प्रमोद से चिल्लाया। तुम अपनी अङ्गुली घंटी में रखो। तुम्हें यह अनुभव बहुत रुचिकर लगेगा।" दूसरे लड़के ने उस घंटी की छानबीन अपनी अङ्गुली से की। वह भी चिल्ला उठा और उसने तेज़ी से हाथ हटा लिया। उस घंटी के अन्दर एक बिच्छू था। उन दोनों लड़कों ने चिल्लाकर अपने हाथ इसलिए वापस खींच लिए थे क्योंकि बिच्छू ने उन्हें डंक मार दिया था।

पहले लड़के ने जानबूझकर अपने मित्र को वेदना का अनुभव कराया। उसने अपने मित्र की पीड़ा देखकर प्रसन्नता का अनुभव किया। परपीड़ा से आनन्द पाने वाले क्रूर लोगों का ऐसा बहुत ही नीच स्वभाव होता है। वहीं दूसरी ओर, महान लोग दूसरों के दुःखों को कम करने और उन्हें प्रसन्न करने का

प्रयास करते हैं। यहाँ तक कि दूसरों का भला करने के लिए, वे बड़ी असुविधाएँ भी सहने के लिए उद्यत रहते हैं।

19. महान लोगों की प्रकृति

एक बार, देवों और असुरों ने अमृत प्राप्त करने के लिए क्षीरसागर का मन्थन किया। मेरु पर्वत मथनी था। कछुए के रूप में भगवान विष्णु इसको आधार दे रहे थे। सर्पराज वासुकि ने अपनी सेवाएँ रस्सी के रूप में दीं। उनकी पूंछ को देवताओं ने और उनके सिर को असुरों ने पकड़ लिया था। मन्थन प्रारम्भ हुआ। दुर्भाग्य से, हालाहल नामक एक भयङ्कर विष सबसे पहले उभरा। वह विष बहुत उग्र था और उसने सारे संसार में भय उत्पन्न कर दिया। ब्रह्माण्ड का विनाश निकट ही लग रहा था। उस अवसर पर, भगवान शिव जी सामने प्रकट हुए। निडरता से, उन्होंने विष को अपनी हथेली में लिया और उसे ऐसे पी लिया जैसे कि वह कोई स्वादिष्ट पेय हो। उनकी दया इतनी अधिक थी कि उन्होंने इसे निगला नहीं, अन्यथा वह उनके शरीर में रहने वाले प्राणियों को हानि पहुँचाता।

महान लोगों का स्वभाव ऐसा ही होता है। यहाँ तक कि, वे दूसरों की भलाई के लिए अपने व्यक्तिगत हितों का बलिदान करने के लिए भी उद्यत रहते हैं।

20. धार्मिक आचरण और दूसरों का उपकार करना

एक व्यक्ति एक नदी के किनारे बैठकर सायं सन्ध्यावन्दन कर रहा था। सहायता के लिए की जा रही चिल्लाहट से उसका ध्यान भटक गया। उसने

मुड़कर देखा कि एक लड़का नदी की धारा से खिंचा चा जा रहा है। तैराकी से अपरिचित और प्राण के लिए आतुर लड़का, सहायता के लिए चीख रहा था। किनारे के व्यक्ति ने सोचा, “मैं इस समय अपना सन्ध्यावन्दन कर रहा हूँ। मैं कैसे उठ सकता हूँ?” पल भर में, लड़का मरने ही वाला था। तब भी, इस व्यक्ति ने सोचा, “अभी मेरे लिए उठना उचित नहीं है। यह लड़का डूब रहा है, परन्तु दुर्भाग्यवश, मैं इसकी सहायता नहीं कर सकता।” वह अपने स्थान से नहीं हिला और लड़के की जल-समाधि हो गई।

दूसरों की सहायता करना उचित है जब हम ऐसे करने की स्थिति में हों। निःसन्देह सन्ध्यावन्दन करना बहुत महत्त्वपूर्ण होता है और, सामान्य परिस्थितियों में, उसमें विघ्न नहीं पड़ना चाहिए। परन्तु, वर्तमान आपात स्थिति में, व्यक्ति को लड़के को बचाना चाहिए था और फ़िर अपना सन्ध्यावन्दन करना चाहिए था।

21. दानपुण्य के लाभ

लोग सोचते हैं कि धन से उन्हें बहुत सुख मिलेगा और उनकी मनोकामनाओं की पूर्ति होगी। धन के लिए, व्यक्ति अनुचित कर्म करने की सीमा तक चला जाता है। जो सरकार को देना है, उसे देने में उसका मन नहीं लगता। अतः, उसके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह झूठा लेखापत्र बनाए। पकड़े जाने पर, वह अपने आप को बचाने के लिए घूस देता है। उसे ऐसा लगता है कि किसी न किसी प्रकार से अधिक से अधिक पैसे सञ्चित कर लेना चाहिए। परन्तु, बाद में यह समस्या खड़ी हो जाती है कि वह उसे कहाँ रखे। यदि वह उस धन को बैंक में जमा करता है, तो कर की समस्या होगी। इसलिए, उसे उस धन को पेटी में रखना पड़ेगा, उसे तालाबन्द करना पड़ेगा और यह सुनिश्चित करना पड़ेगा कि वह पेटी सुरक्षित स्थान पर रखी जाए।

सन्ध्यावन्दन करते समय भी उस पेटी का विचार उसके मन में आता रहता है। जब वह भगवान की पूजा करने बैठता है, फ़िर से उस पेटी का विचार उसके मन में आ जाता है। वह आख़िर इस विचार से कब मुक्त हो पाता है? केवल उसी दिन जब वह अन्तिम साँस लेता है और दूसरे लोक की यात्रा प्रारम्भ करता है। उसका उत्साहपूर्वक संरक्षित धन, बिना उसकी जानकारी के, पूरी तरह से औरों के हाथ में चला जाता है।

ऐसा व्यक्ति यही चाहता है कि वह मृत्यु के बाद अपना धन लेकर दूसरे लोक में चला जाए। उसने सोचा होगा, “मैंने किसी न किसी प्रकार धन कमाया है और अब तक अपने पास सुरक्षित रखा है। यहाँ तक कि मरने के बाद भी मैं इससे अलग नहीं होना चाहता। यदि सम्भव हो, तो मैं इसे अपने सिर पर रखना चाहता हूँ और अपने साथ ले जाना चाहता हूँ।” ऐसे व्यक्ति के लिए, नीलकण्ठ दीक्षित ने विनोदपूर्ण, परन्तु मूल्यवान, परामर्श दिया है। उन्होंने कहा है, “यदि आप मृत्यु के बाद अपना धन अपने साथ ले जाना चाहते हैं, तो उसे अपने जीते ही किसी अच्छे और योग्य व्यक्ति को दान कर दें। ऐसा करने पर क्या होगा? वह धन पुण्य में परिवर्तित हो जाएगा। भले ही मृत्यु के बाद आपका सिर हो या न हो, यह निश्चित है कि धन पुण्य के रूप में आपका साथ देगा।”

शास्त्र तो लालच के प्रतिरोधी औषधि के रूप में योग्य व्यक्ति को उपहार देने का विधान करते हैं। अतः, दान दूसरों को सुख देने के साथ-साथ, दाता के आध्यात्मिक कल्याण में बहुत सहायक होता है। कुछ धन खोने वाला व्यक्ति दुःखी लगता है। परन्तु, जब वह स्वेच्छापूर्वक उतना ही धन अपने परीक्षा-शुल्क भरने की स्थिति में असमर्थ किसी निर्धन छात्र को देता है, तो वह प्रसन्न हो जाता है, न कि दुःखी। इस प्रकार, दान, न केवल प्राप्त करने वाले को किन्तु दाता को भी, मुदित कर सकता है।

22. उपहारों के हास्यास्पद प्रस्ताव

एक कवि अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करने और उपहार प्राप्त करने के लिए किसी राजा की सभा में गया। उसने कई अच्छे गीत गाए और राजा तथा सभा में उपस्थित अन्य लोगों को प्रसन्न किया। उसके प्रदर्शन के अन्त में, राजा ने उसकी बड़ी प्रशंसा की और कोषाध्यक्ष को आदेश दिया, "इन्हें पचास सहस्र रूपये दे दीजिए।" इस राशि को सुनते ही कवि लगभग मूर्च्छित हो गया। अपने मुखमण्डल पर प्रसन्नता और सन्तोष की लकीर के साथ, वह कोषाध्यक्ष के पास गया, परन्तु उसने कवि को कुछ भी नहीं दिया। गीतकार ने उसे स्मरण दिलाया, "महोदय, क्या आप मुझे कृपया धनराशि देंगे?" "मैं क्यों दूँ?" कोषाध्यक्ष ने पलट कर पूछा। "राजा का ऐसा ही निर्देश है," कवि ने जोर देकर कहा। कोषाध्यक्ष केवल हँसा और बोला, "जाइए और राजा को सूचित कर दीजिए कि मैं आपको धन देने से मना कर रहा हूँ। वहाँ जो होगा, उससे आप चौंक जाएँगे।"

कवि राजा के पास लौट आया और परिवाद किया — "हे महाराज, कोषाधिकारी ने आपके द्वारा निर्दिष्ट धनराशि मुझे देने से मना कर दिया।" राजा ने कहा, "ऐसा है क्या? अच्छा, वह आपको पैसे क्यों दे?" "क्या!" कवि चिल्लाया, "क्या आपने मुझे पचास सहस्र रूपये देने के लिए उनसे नहीं कहा?" "निस्सन्देह, मैंने कहा," राजा ने स्पष्ट किया, "अब मैं आपसे एक प्रश्न पूछता हूँ। जब मैंने उपहार की घोषणा की, तो आपको कैसा लगा?" "अत्यधिक उत्साहित," कवि ने कहा। "बस, हो गया," राजा ने प्रसन्न होकर कहा, "आपने अपने गीतों से मुझे प्रसन्न किया और आपको उपहार की घोषणा से मैंने आपको प्रसन्नता दी। पूर्णतः न्यायसङ्गत, है ना? आप धन की भी आशा क्यों करते हैं?" इस अद्भुत स्पष्टीकरण को सुनकर कवि मूर्छित हो गया।

एक मूल्यवान शिक्षा यह है, "एक बुद्धिमान व्यक्ति को प्रयास करना चाहिए और लोगों को सुखी करना चाहिए; ऐसा करने से ईश्वर की पूजा होती है।" जब कोई व्यक्ति एक उपहार की घोषणा करता है, तो सम्भावित प्राप्तकर्ता

को उत्साह लगता है। प्राप्तकर्ता का उत्साह और अधिक होता है जब वह वास्तव में उपहार प्राप्त करता है। किसी व्यक्ति के लिए दान देने की प्रतिज्ञा करके ही रुक जाना निश्चित रूप से अपर्याप्त है और वञ्चनापूर्ण भी, जैसे कि उस राजा ने किया। दुर्भाग्य से, कुछ सम्पन्न और प्रभावशाली लोग यश प्राप्त करने के लिए सार्वजनिक सभाओं में दान की घोषणा कर देते हैं, परन्तु बाद में सम्बन्धित धनराशि के चेक नहीं भेजते।

किसी को वास्तव में न केवल दान करना चाहिए, अपितु उसे दान के नाम पर वे वस्तुएँ नहीं देनी चाहिए जो उसे वस्तुतः मूल्यहीन लगती हैं। एक लड़के को एक केला मिला। उसे बहुत अधिक पका हुआ और अपने उपभोग के लिए अनुपयुक्त मानते हुए, उसने उसे अपने पिता को दे दिया। पिता ने उसे अपनी पत्नी को दे दिया। पत्नी ने उसे अपनी सेवकानी को दिया। सेवकानी उसे गाय को देना चाहती थी, परन्तु ग्वाले ने कहा कि फल उसकी गाय के लिए अनुचित है। अन्ततः, घर के स्वामी ने अपनी पत्नी से कहा, "चलिए, हम उसे एक योग्य वैदिक को दे दें।" ऐसा दान न तो प्रशंसा के योग्य है और न ही इससे महत्त्वपूर्ण पुण्य मिलता है।

23. क्षमता के अनुरूप दान

एक व्यक्ति को किसी मुनि ने प्रतिदिन एक शाक दान करने का उपदेश दिया और कहा कि ऐसा करने से उसे महान पुण्य प्राप्त होगा। उस निर्धन व्यक्ति ने सख्ती से इस उपदेश का पालन किया। मृत्यु के बाद, उसने एक राजपरिवार में जन्म लिया और बड़ा होकर राजा बन गया। वह अपने पिछले जन्म में किए गए कार्यों को स्मरण करने में सक्षम था। अतः, वह प्रतिदिन एक शाक का दान करता रहा। आश्चर्य की बात है कि मृत्यु के बाद, उसका पुनर्जन्म भिखारी के रूप में हो गया। वह व्यक्ति इसका कारण समझने में असमर्थ था; इसलिए उसने उस मुनि से परामर्श माँगा जिन्होंने पहले उसे आशीर्वाद दिया था।

मुनि से उसे यह पता चला कि राजा बनने के पिछले जन्म में वह बहुत निर्धन था और इसलिए, प्रतिदिन एक शाक का दान उसे बहुत पुण्य देने के लिए पर्याप्त था। दूसरी ओर, अब एक राजा होते हुए, वह समृद्धि से सम्पन्न था। इसलिए, प्रतिदिन केवल एक शाक का दान उसे महत्त्वपूर्ण पुण्य अर्जित कराने के लिए सर्वथा अपर्याप्त था।

उस व्यक्ति को यह अवगत हुआ कि किसी विशेष मात्रा में पुण्य की प्राप्ति हेतु आवश्यक दान की राशि, किसी व्यक्ति की दान करने की आर्थिक क्षमता पर निर्भर करती है।

24. आतिथ्य — तब और अब

शास्त्र विधान करते हैं कि किसी को दूसरे को भोजन कराए बिना स्वयं भोजन नहीं करना चाहिए; और साथ ही साथ, इस बात पर बल देते हैं कि व्यक्ति को दूसरे के घर में भोजन करने से बचना चाहिए। पुराने दिनों में, गृहस्वामी सोचते थे, "आज मुझे किस महान व्यक्ति को भोजन कराने का सम्मान मिलेगा?" वहीं दूसरी ओर, अतिथि सोचते थे, "मुझे दूसरे के घर पर भोजन नहीं ग्रहण करना चाहिए। परन्तु मैंने लम्बी यात्रा की है और मुझे भूख लगी है। यदि कोई महान व्यक्ति मुझे भोजन दे दे, तो मैं सन्ध्याकाल से पहले घर पहुँच सकता हूँ।" जबकि लोग बहुत आवश्यकता होने पर ही, तत्रापि बहुत हिचकते हुए, दूसरों का आतिथ्य चाहते थे, गृहस्थों ने लोगों की सेवा करना और उन्हें भोजन कराना एक महान भाग्य और आवश्यक विहित कर्तव्य समझा। तब ऐसी स्थिति थी।

परन्तु अब क्या स्थिति है? घरवाले अपने द्वार कसकर बन्द कर लेते हैं और किसी को भोजन खिलाने से मना कर देते हैं। वहीं दूसरी ओर, आगन्तुक बलपूर्वक अन्दर जाने के लिए उद्यत हैं! मनोभावों में कितनी गिरावट!

25. नियम और अपवाद

पुलिसकर्मी, सैनिक, कार्यालय जाने वाले कार्मिक और पुरोहित के परिधानों से सम्बन्धित कुछ मानक हैं। जब उन मानदण्डों का पालन किया जाता है, तो एक शिष्टता रहती है। दूसरी ओर, यदि एक अधिकारी निचले वस्त्र के स्थान पर पञ्चकच्छ धोती और ऊपरी वस्त्र के स्थान पर ब्रह्मवस्त्र पहनकर, हाथ में दर्भ गुच्छ लेकर अपने कार्यालय में जाता है, तो उसके कार्यस्थल पर लोग अचम्भे में पड़ेंगे कि वे उसे कहाँ भेजें — किसी पागलखाने में अथवा धार्मिक अनुष्ठान किए जाने वाले स्थान पर। दूसरी ओर, एक पुरोहित पतलून, शर्ट और टोपी पहनकर धार्मिक संस्कार करने के लिए किसी घर में जाए, तो लोग यह नहीं समझेंगे कि उसे कहाँ बैठाया जाए।

मान लीजिए कि एक पुलिसकर्मी धोती पहने हुए हो, टाई और टोपी लगाए हो सड़क पर खड़ा हो, तो लोग क्या कहेंगे? "सब कुछ अस्त व्यस्त लगता है। इस व्यक्ति की कटि के ऊपर और नीचे, अलग अलग सभ्यताओं के उत्पाद दिखाई पड़ते हैं। क्या यह पागल है?" — वे आश्चर्यपूर्वक सोचेंगे। दूसरी ओर, यदि वह उचित वर्दी पहनकर आता तो लोग सोचेते, "ओह, एक पुलिस वाला आया है। आइए, सावधान रहें।"

सामान्यतः, महिलाएँ साड़ी और पुरुष धोती पहनते हैं। मान लीजिए कि एक महिला धोती और शर्ट पहनकर अपने बाल छोटे करवाकर जाती है। उस समय कुछ निम्नोक्त प्रकार की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। दूर से एक व्यक्ति उस महिला के लिङ्ग के बारे में सन्दिग्ध होकर कुछ पल उसे देखता है ताकि वह अपने मन में निश्चय कर पाए। इससे वह महिला झुंझला जाती है और उसकी त्यौरियाँ चढ़ जाती हैं।

महिला - तुम मुझे क्यों घूर रहे हो?

पुरुष - मैं यह पता लगाने का प्रयास कर रहा था कि आप पुरुष हैं या महिला।

महिला - इससे तुम्हें लेना देना कुछ भी नहीं है। घूरना बन्द करो।

यह स्थिति आसानी से टाली जा सकती है।

यद्यपि वेष के नियम सामान्यतः लागू होते हैं, तथापि कुछ समर्थनीय अपवाद हैं। सी०आई०डी० से सम्बन्धित एक पुरुष स्वयं को स्त्री के भेष में रख सकता है और साड़ी पहनकर घूम सकता है। वैकल्पिक रूप से, वेदों का अध्ययन न करने पर भी, वह स्वयं एक रूढ़िवादी पुरोहित के रूप में छद्मवेश धारण कर सकता है। किसी नाटक मण्डली का एक सदस्य, मंच पर अभिनय करते समय, ऐसे परिधान पहन सकता है जो उसकी सामान्य दिनचर्या के लिए पूरी तरह से अनुपयुक्त हो। एक नियम है कि केवल वही व्यक्ति, जिसने विधि में नियमानुसार विश्वविद्यालय से उपाधि प्राप्त की हो और स्वयं को न्यायवादी के रूप में पंजीकृत कराया हो, वही उच्च न्यायालय में अपराध के आरोपी व्यक्ति की अधिवक्तृता कर सकता है। वैसे तो इसका भी अपवाद है। एक व्यक्ति जिस पर हत्या करने का आरोप है, वह अपनी अधिवक्तृता स्वयं कर सकता है। एक व्यक्ति के लिए दूसरे के पेट को चाकू से काटना एक घोर अपराध है। हालाँकि, इस नियम का भी अपवाद है। एक योग्य शल्यचिकित्सक को न केवल रोगी के पेट को काटने की अनुमति है, किन्तु रोगी की आन्तों का एक टुकड़ा भी निकालने की अनुमति है। इस प्रकार, गतिविधियों के सम्बन्ध में भी, नियम और अपवाद होते हैं।

लौकिक विचारों की तरह, शास्त्र के विधियों में भी नियम और अपवाद होते हैं। नियम यह है कि ब्रह्मचारी को सूर्योदय के पहले स्नान करना चाहिए, अपनी परम्परा के अनुसार भस्म, तिलक अथवा गोपी-चन्दन लगाना चाहिए और उसके बाद ही सन्ध्यावन्दन करना चाहिए। मान लीजिए कि एक ब्रह्मचारी को ज्वर है और वैद्य उससे कहते हैं, "आज मत नहाना। यदि ऐसा करते हो तो तुम्हारा रोग गम्भीर हो सकता है।" तो क्या उसे तब भी नहाकर ही सन्ध्यावन्दन करना चाहिए? नहीं। वह भस्म अथवा जो भी अपने सम्प्रदाय के अनुसार विहित है, उसे लगा सकता है और फ़िर बिना नहाए सन्ध्यावन्दन कर सकता है।

मान लीजिए कि परिस्थिति और बुरी है और यहाँ तक कि भस्म और पर्याप्त जल भी उपलब्ध नहीं हैं। यह कहा गया है, "जो भगवान का स्मरण करता

है, वह बाह्य और आन्तरिक रूप से शुद्ध हो जाता है, चाहे वह पहले अपवित्र हो, या पवित्र अथवा किसी अन्य अवस्था में।" इसे ध्यान में रखते हुए, उसे भगवान का स्मरण करके प्रार्थना करनी चाहिए, "हे ईश्वर, मैं जल भी प्राप्त करने में असमर्थ हूँ। फ़िर मैं कैसे नहाऊँ? और तो और, अभी मुझमें ऐसा करने की शक्ति भी नहीं है। परन्तु कहा गया है कि शुद्ध रहकर ही कोई भी शुभ कार्य करना चाहिए। मेरे लिए पवित्र बनने के लिए, पावन से पावनतम केवल आप ही हैं। अतः, मैं आपके बारे में सोचता हूँ।" अगर इतनी सच्ची प्रार्थना के बाद, वह सन्ध्यावन्दन करे, तो भगवान उसे अवश्य स्वीकार कर लेंगे।

नियम यह है कि सन्ध्यावन्दन को ठीक से पालथी मारकर बैठकर किया जाना चाहिए। ऐसे में मान लीजिए कि कोई ब्रह्मचारी इतना रुग्ण हो कि वह बैठ भी न सके। फ़िर, उसके लिए अपनी शय्या पर लेटते हुए, बिना स्नान किए या भस्म लगाए, मानसिक रूप से अपना सन्ध्यावन्दन करने की अनुमति है।

शास्त्र के इस अपवाद को जानकर, एक लड़के ने विकृत निर्णय लिया, "सर्दियों में मुझे स्नान करने की कोई आवश्यकता नहीं है। मैं सीधे शय्या पर रहते हुए, अपना सन्ध्यावन्दन कर सकता हूँ। दूसरी ओर, गर्मियों में मैं तीन बार स्नान कर सकता हूँ और सन्ध्यावन्दन कर सकता हूँ।" यह शास्त्र पर आधारित निष्कर्ष नहीं है; यह केवल सुखप्राप्ति की इच्छा से तय किया हुआ निर्णय है।

सामान्य नियम यह है कि व्यक्ति को ग्रहण से पहले कुछ निर्दिष्ट घंटों का उपवास करना चाहिए। ग्रहण के प्रारम्भ के बाद, उसको स्नान करना चाहिए, फ़िर मन्त्र का जाप अनुष्ठान करना चाहिए तथा पितरों को तर्पण अर्पित करना चाहिए। परन्तु बच्चों, वृद्ध और रुग्ण लोगों को इस नियम से छूट दी गई है।

शास्त्रों द्वारा निर्धारित नियमों का पालन किया जाना चाहिए; केवल असाधारण परिस्थितियों में ही, मानदण्डों से विचलन की अनुमति है।

उल्लिखित प्रकार के शास्त्रों के अपवादों से विलक्षण, कुछ इतने असाधारण हैं कि सामान्य लोगों को कभी भी उनका आलम्बन नहीं लेना चाहिए। दो उदाहरणों पर विचार प्रस्तुत किया जाता है।

रेणुका ऋषि जमदग्नि की पत्नी थीं। उनके पाँच पुत्र थे — रुमण्वान, सुषेण, वसु, विश्वावसु और परशुराम। एक दिन, जब उनके पुत्र फल लेने जंगल में गए थे, तब रेणुका, जो अपने धार्मिक कर्तव्यों में अत्यन्त शिष्टाचारी थीं, स्नान करने के लिए नदी पर गईं। जब वे वापस लौटने लगीं, अचानक ही उन्होंने मार्तिकावत के राजा चित्ररथ को देखा जो उस समय अपनी रानी के साथ जलक्रीडा में रत था। उन्होंने उसके प्रति तीव्र कामुक भावनाओं का अनुभव किया। फ़िर वे मूर्च्छित हो गईं।

सचेत होने पर, वे भयभीत होकर अपने घर लौट आईं। उन्हें आध्यात्मिक तेज से वञ्चित देखकर, जमदग्नि तुरन्त समझ गए कि उनकी पत्नी ने अत्यधिक अनैतिक विचारों के लिए स्थान दिया है। वे क्रुद्ध हो उठे और उन्होंने उनकी घोर निन्दा की। उनके ज्येष्ठ पुत्र रुमण्वान तभी वापस लौटे, उसके बाद सुषेण, वसु और विश्वावसु आए। जमदग्नि ने अपने पुत्रों को एक के बाद एक अपनी माँ को मारने का आदेश दिया, परन्तु वे बस गतिहीन, स्तब्ध और चुप रहे। क्रोधाग्नि से उद्दीप्त, जमदग्नि ने उन्हें शाप दे दिया। परिणामस्वरूप, उन्होंने तुरन्त अपनी सोचने की शक्ति खो दी; वे पशुओं की भाँति हो गए।

जब परशुराम लौटे, तब उनके पिता ने उन्हें आदेश दिया, “अपनी इस पापी माँ को मार डालो। शोक को स्थान मत दो।” परशुराम ने अपनी कुल्हाड़ी उठाई और अपनी माँ का सिर काट दिया। जमदग्नि का क्रोध शान्त हो गया और अपने पुत्र से प्रसन्न होकर उन्होंने कहा, “मेरी आज्ञा का पालन करके, तुमने वह कार्य किया है जो किसी अन्य के लिए सबसे कठिन है। जो चाहो माँग लो।”

परशुराम ने अनुरोध किया, “हे पिताजी, कृपया मेरी माँ को जीवनदान दे दीजिए। उन्हें अपनी मृत्यु का स्मरण न हो और वे अपने मानसिक पाप से पूरी तरह मुक्त हो जाएँ। कृपया मेरे भाइयों को पूर्व जैसे बना दीजिए। मैं

युद्ध में अजेय बनूँ और लम्बे समय तक जीवित रहूँ।" तपःशक्ति से सम्पन्न ऋषि जमदग्नि ने अपने पुत्र की सभी कामनाओं को मानकर उन्हें पूरा कर दिया।

किसी व्यक्ति को अपनी माता का आदर करना चाहिए और उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिए। उन्हें चोट पहुँचाने के बारे में उसे कभी सोचना भी नहीं चाहिए। तथापि, परशुराम ने अपनी माता का वध किया था। उन्हें पता था कि जमदग्नि के पास, उन्हें फ़िर से जीवित करने की तपश्शक्ति है। वे यह भी जानते थे कि यदि वे अपने पिता का आदेश नहीं मानते, तो वे ऋषि उन्हें शाप देते और उन्हें अपनी बुद्धि से वञ्चित कर देते और उन्हें पशुतुल्य बना देते। वे यह भी जानते थे कि जमदग्नि अधिकतम सम्भावना में, उनकी माता को मृत्यु का शाप दे देते, जो उनके पिता के क्रोध की मुख्य लक्ष्य थीं। उन्होंने अपने पिता की आज्ञा का पालन करके — और ऐसा काम करके जो अन्य लोग करने का सोच भी नहीं सकते — अपनी माता, अपने भाइयों और स्वयं को बचाया।

श्री शङ्कर भगवत्पाद जी द्वारा संन्यासियों के नियमों का अतिक्रमण किया जाना और अपनी माँ का अन्त्यकर्म किया जाना भी असाधारण अपवाद का एक उदाहरण है। भगवत्पाद जी के इन कार्यों की पूर्वगामी परिस्थितियाँ उचित हैं और विचार करने योग्य हैं।

भगवत्पाद जी के पिता शिवगुरु अपने दिव्य पुत्र के उपनयन कराने के पहले ही स्वर्ग सिधार गए। उनकी माता आर्याम्बा ने अशौच की अवधि पूरी हो जाने पर, एक सम्बन्धी के द्वारा अपने पुत्र के उपनयन कराए जाने की व्यवस्था की। भगवत्पाद जी तब पाँच वर्ष के थे। शास्त्र विधि के अनुसार, वे गुरुकुल चले गए और उन्होंने वहाँ अति शीघ्र ही शास्त्रों को सीखा। उन्होंने अपनी शिक्षा पूर्ण की। अपने सातवें वर्ष में, वे अपने गुरु के घर से लौट आए। इसके बाद, उन्होंने अपनी माता की बड़ी निष्ठा से सेवा की।

एक दिन, जब आर्याम्बा नदी में स्नान करने जा रही थीं, तब चिलचिलाती धूप के ताप को सह नहीं पाईं और मूर्च्छित हो गईं। यह पाकर कि उनकी

माँ समय पर नहीं लौटीं, भगवत्पाद जी ने उनको ढूँढा। उन्हें मूर्च्छित देखकर, उन्होंने अपनी माता पर जल छिड़क कर, उन्हें चेतना में वापस लाया और घर लिवा लाया। नदी उनके घर से कुछ दूरी पर थी। आर्याम्बा के प्रति अपने प्रेम के कारण, भगवत्पाद जी को लगा कि उनकी माँ को प्रतिदिन उस दूरी को तय करने का कष्ट नहीं उठाना चाहिए। अतः वे नदी के तट पर गए और उन्होंने उसे भगवान के रूप में मानते हुए प्रार्थना की। उन्होंने नदी से मार्ग बदलने और अपने घर के निकट बहने की विनती की। उस दिव्य बालक की सच्ची प्रार्थनाएँ कैसे व्यर्थ हो सकती थीं? अगले प्रातःकाल, आर्याम्बा ने पाया कि उन्हें बहते जल में स्नान करने के लिए, बस अपने घर से बाहर निकलना ही था।

यद्यपि भगवत्पाद जी ने बिना किसी ढिलाई के अपनी माता की सभी आवश्यकताओं को पूरा किया, तथापि मन ही मन संसार बन्धन को त्यागने का निश्चय किया। वे नितान्त विरक्त थे। एक दिन, कुछ मुनिजन उनके घर आए। माता के प्रश्न के उत्तर में, एक मुनि ने भविष्यवाणी की कि भगवत्पाद जी की जीवनावधि अत्यल्प होगी। इससे आर्याम्बा घबराईं। फ़िर भी, भगवत्पाद जी ने धीरे-धीरे उन्हें सांत्वना दी। उन्होंने इस अवसर का उपयोग यह बताने के लिए किया कि परिवार में वियोग अपरिहार्य है और सांसारिक जीवन में लेशमात्र भी आनन्द नहीं है। उन्होंने कहा कि वे संन्यास लेकर जन्म-मरण के चक्र को पार करना चाहेंगे। उनके इन शब्दों को सुनकर आर्याम्बा ने विरोध किया। उन्होंने कहा, “तुम मेरे एकमात्र पुत्र हो। मैं तुमसे वियोग कैसे सह सकती हूँ? मैं चाहती हूँ कि तुम विवाह कर लो।” भगवत्पाद जी ने अपनी माँ को शान्त किया व उस विचार को वहीं रहने दिया।

उन्होंने मन ही मन सोचा — “मेरा मन विवाह की ओर नहीं है। फ़िर भी, मैं अपनी माँ का अनादर नहीं कर सकता और उनकी इच्छा के विरुद्ध कार्य नहीं कर सकता। इसलिए, अपनी इच्छा को साकार करने के लिए, मुझे उनकी सहमति लेनी चाहिए। भले ही उसे मनभर न ले पाऊँ, तो भी कम से कम मुझे कुछ परिमाण में लेना ही चाहिए। मैं बस इतनी ही आशा कर सकता हूँ।”

एक दिन, जब वे आठ साल के थे, स्नान करने के लिए नदी पर गए। नदी में बाढ़ आ गई थी। जब वे स्नान कर रहे थे, तभी एक मगरमच्छ ने उनका पैर पकड़ लिया। भगवत्पाद जी चिल्लाए। उनके शब्द सुनकर आर्याम्बा नदी पर आ गईं और विलाप करने लगीं। "जब मेरे पति जीवित थे, तो वे मेरे आश्रय थे। उनके बाद, अब यह मेरा पुत्र है। अब मेरा वह पुत्र भी मगरमच्छ द्वारा पकड़ा गया है और आसन्नमृत्यु है। हे ईश्वर, ऐसा क्यों है?" वे सिसकने लगीं।

भगवत्पाद जी बोले, "हे माता, यदि मुझे संसार में सब कुछ त्यागने की आपकी अनुमति हो, तो यह मगरमच्छ मुझे छोड़ देगा। यदि आप मुझे अनुमति दें, तो मैं संन्यास ले लूँगा।" भगवत्पाद जी ने उनकी अनुमति पाने के लिए, इस प्रकार की प्रार्थना को चुना। अपने पुत्र के जीवन बचाने हेतु सब कुछ करने के लिए उद्यत होकर, माँ ने अपनी सहमति दे दी। तत्क्षण, भगवत्पाद जी ने मानसिक रूप से संन्यास ले लिया।

तत्पश्चात्, नियमतः, वे अपने घर से निकल जाने और विधिवत् संन्यास लेने के लिए स्वतन्त्र थे। तथापि, उन्हें लगा कि उन्हें अपनी माँ को सान्त्वना देनी चाहिए। उन्होंने उनसे कहा कि उन्हें अपने और उनके बारे में चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। उनके सम्बन्धी उनकी देखभाल करेंगे; अन्ततोगत्वा, उनके पिता की सम्पत्ति तो थी ही। उनके स्वास्थ्य के क्षीण होने पर भी, वे उनकी देखभाल करेंगे।

भगवत्पाद जी ने उन्हें बताया कि यद्यपि संन्यासी होने के नाते, वे उनसे दूर हो सकते हैं, तथापि वे उनके साथ भौतिक रूप से रहने की तुलना में, उन्हें बहुत अधिक लाभान्वित करेंगे। आर्याम्बा ने उनसे कहा, "मैंने तुम्हें संन्यासी बनने की अनुमति दी, क्योंकि यह मेरी इच्छा थी कि तुम जीवित रहो। हालाँकि, तुम मेरे एकमात्र पुत्र हो। यदि मेरे प्राण छूट जाते हैं तो तुम्हें आना ही होगा और मेरा अन्त्यकर्म करना होगा। अन्यथा, मेरा तुम्हें पुत्र रूप में पाने का लाभ ही क्या रह जाएगा?"

भगवत्पाद जी अपनी माँ को निराश करने नहीं चाहते थे; उन्होंने घोषणा की, "मैं आपकी इच्छा पूरी करूँगा। मैं जहाँ भी और किसी भी परिस्थिति में क्यों

न रहूँ, समय पड़ने पर मैं आपके पास आऊँगा और व्यक्तिगत रूप से आपका अन्त्यकर्म करूँगा।" किसी भी वादे को अधूरा नहीं होने देना चाहिए और भगवत्पाद जी ने निश्चयपूर्वक अपने वादे को महत्त्व दिया।

वर्षों बाद, जब भगवत्पाद जी शृङ्गेरी में थे, उन्होंने अपनी माता के निकट आने वाले अन्त्यकाल की झलक पाई। योग और मन्त्र से उत्पन्न उनकी अलौकिक शक्तियों में से एक पादुका-सिद्धि थी, जिसके द्वारा कोई व्यक्ति अपने अभीष्ट स्थान पर अपनी इच्छा मात्र से, बहुत कम समय में पहुँच सकता है। सामान्यतः, अलौकिक शक्तियों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। तथापि, यदि कोई असाधारण परिस्थितियों में भी उनका प्रयोग नहीं करता है, तो वह मूर्खतापूर्ण व्यवहार कर रहा होता है। भगवत्पाद जी ने अपनी माँ के लिए पादुका-सिद्धि का उचित प्रकार से प्रयोग किया। वे उनकी मृत्यु से पहले ही कालडी पहुँच गए। वहाँ, उन्होंने अपनी माँ के मन को भगवान पर केन्द्रित कराया और यह सुनिश्चित किया कि उन्हें सद्गति प्राप्त हो। फ़िर, उन्होंने अपने पूर्वाश्रम के सम्बन्धियों से उनका अन्तिम संस्कार करने में सहायता देने का अनुरोध किया। दुर्भाग्य से, उन्हें भगवत्पाद जी की महानता का पता नहीं चला। वे दृढ़ थे कि एक संन्यासी होने के कारण, भगवत्पाद जी आर्याम्बा का दाह संस्कार करने के लिए सर्वथा अनधिकृत थे। वे उन्हें डाँटने की सीमा तक चले गए। अन्ततः, भगवत्पाद जी ने व्यक्तिगत रूप से सूखी लकड़ियाँ एकत्र कीं और उनका दाह संस्कार किया।

भगवत्पाद जी का कृत्य अपनी माता को कालडी से जाने के पहले, अपने द्वारा दिए गए आश्वासन को किसी भी मूल्य पर पूरा करने के एकमात्र सङ्कल्प से निर्देशित था। उन्होंने किसी लगाव अथवा व्यक्तिगत लाभ की पूर्ति की इच्छा से प्रेरित होकर वह कार्य नहीं किया। यह सच है कि संन्यासियों को अन्तिम संस्कार करने से मना किया गया है। परन्तु, भगवत्पाद जी तत्त्वज्ञानी थे और ऐसे ज्ञानी किसी भी प्रतिबन्ध से परे हैं। यह कहा गया है, "जो सत्त्व, रजस् और तमस् से परे मार्ग पर चलता है, उसके लिए कोई विधि या निषेध नहीं होता।"

तत्त्वज्ञानी का विचार एक अप्रबुद्ध व्यक्ति के विचार से स्पष्टतः भिन्न होता है; यदि कोई अप्रबुद्ध व्यक्ति शास्त्र-विहित नियमों का उल्लङ्घन करता है, तो उसे पाप लगेगा। अद्वैत सत्य में उनकी अडिग संस्थिति के कारण, भगवत्पाद जी को कोई पुण्य या पाप नहीं प्राप्त हुआ; वे कर्तृत्व भावना से मुक्त थे।

एक हास्यकथा है जो एक ओर सत्य को जानने वाले के द्वारा, बिना लगाव और कर्तृत्व भावना के, किए गए शारीरिक कृत्य के, और, दूसरी ओर, किसी अप्रबुद्ध व्यक्ति द्वारा लगाव के साथ और कर्तृत्व भावना सहित किए गए कार्य के बीच, विषमता बताती है। एक प्रबुद्ध महात्मा और एक अप्रबुद्ध उपदेशक बहुत गरमी भरे दिन में एक साथ चल रहे थे। उन्हें बहुत प्यास लगी और वे दिखाई दे रहे एकमात्र निवास स्थान पर रुक गए। उस स्थान पर केवल ताड़ी उपलब्ध थी। प्रबुद्ध सन्त ने उसे लिया और निगल लिया, क्योंकि वे अपनी प्यास बुझाने के लिए कुछ तरल चाहते थे। महात्मा के मना करने पर भी, अज्ञानी उपदेशक ने भी ताड़ी माँगी और यह कहते हुए, "जब आप इसे पी सकते हैं, तो मैं क्यों नहीं?" पी लिया।

तत्पश्चात्, वे कुछ दूरी पैदल तय करने के लिए आगे बढ़े। फ़िर से उन्हें बहुत प्यास लगी। वे वहाँ के एकमात्र भवन के अन्दर चले; वह एक गलाने का कारखाना था। चूँकि कुछ पिघला हुआ लोहा ही वहाँ उपलब्ध था, महात्मा ने उसमें से कुछ लिया और उसे पी लिया। तब उन्होंने अप्रबुद्ध उपदेशक से पूछा कि क्या वह अपने कृत्य का अनुसरण करना चाहता है। तब दूसरे व्यक्ति ने विरोध किया कि वह इसे नहीं पी सकता, क्योंकि उससे उसका गला जल जाएगा। इस पर प्रबुद्ध मुनि ने उससे कहा, "ऐसा है तो चूँकि तुमने कुछ समय पहले ताड़ी पी थी, तुम्हें अपने आप को शुद्ध करना चाहिए।"

इसका सारांश यह है कि सांसारिक और शास्त्रीय कर्तव्यों के नियमों का ध्यानपूर्वक पालन किया जाना चाहिए। केवल असाधारण परिस्थितियों में ही, शास्त्र नियमों से विचलन की अनुमति है। ऐसी अपवादात्मक परिस्थितियाँ कौन सी हैं — इसकी व्याख्या शास्त्रों और सम्प्रदाय-परम्परा से

सुपरिचित महान लोगों द्वारा की गई है। कुछ असाधारण अपवाद भी हैं, जिनकी सहायता सत्य को न जानने वालों को कभी भी नहीं लेना चाहिए।

26. भगवान राम और धर्म की गहराई

शास्त्र घोषित करते हैं कि माता-पिता की आज्ञा का पालन करना चाहिए। तथापि कभी-कभी एक उलझन भरी परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है जब माता और पिता के निर्देश परस्पर विरुद्ध होते हैं। तब पिता की आज्ञा का पालन माता के विरोध और माता की आज्ञा का पालन पिता के विरोध में परिणत होता है। भगवान राम को स्वयं ऐसी परिस्थिति का सामना करना पड़ा था। जिस तरह से उन्होंने धार्मिक सङ्कट को हल किया, वह शिक्षाप्रद है।

यह जानकर कि दशरथ ने राम के यौवराज्याभिषेक का आयोजन कर लिया है, कैकेयी की दासी मन्थरा ने रानी के मन में राम के विरुद्ध विष भर दिया। तो जब दशरथ कैकेयी से मिलने गए, तब कैकेयी ने उनसे ऐसा विधिवत् वचन देने को कहा, जिसके अनुसार वे उनकी उत्कट इच्छा को पूर्ण करते। बात को न भाँपकर सम्राट मान गए। कैकेयी ने तब देवताओं का आह्वान किया ताकि वे उनके पति के वचनबद्ध होने के साक्षी बन सकें। पहले किसी अवसर पर दिए गए दो वरदानों का स्मरण दिलाकर, उन्होंने यह माँग रखी कि भरत को युवराज बनाया जाए और राम को चौदह वर्ष के लिए वनवास के लिए भेज दिया जाए। इससे स्तम्भित होकर, दशरथ उनसे अपना मन बदलने के लिए गिड़गिड़ाए और यहाँ तक कि उनके पैरों में भी गिर गए। परन्तु, कैकेयी ने अपना मन बदलने से मना कर दिया। यद्यपि दशरथ राम से अत्यन्त प्रेम करते थे, तथापि वचन के पक्के होने के कारण, वे कैकेयी की माँग को अस्वीकार करने में असमर्थ थे।

जब राम अपने पिता के कक्ष में गए, तब उन्होंने देखा कि महाराज शोकसन्तप्त हैं। जब उन्होंने कारण जानना चाहा, तब कैकेयी ने उन्हें सम्राट

के वचन और जो वर उन्होंने महाराज से माँगे थे, उसके बारे में बताया। राम ने उन्हें आश्वासन दिया कि वे निश्चय ही वन जाएँगे और चौदह वर्ष वहीं बिताएँगे। उन्होंने कहा कि यदि वह आज्ञा कैकेयी द्वारा भी दी गई होती, तो वे ससन्तोष भरत को राज्यपद देकर वन चले जाते। राम ने कहा, "भरत को यह पद और भी प्रसन्नतापूर्वक दे दूँगा, क्योंकि यह आज्ञा मेरे पिता द्वारा दी गई है, तत्रापि आपको प्रसन्न करने के लिए एवं आपको दिए गए वचन की मर्यादा को बनाए रखने के लिए दी गई है।" राम आगे बोले कि ऐसे में, उन्हें दुःख हुआ क्योंकि भरत के पट्टाभिषेक के बारे में उनसे व्यक्तिगत रूप से कहने के बदले, महाराज भूमि पर दृष्टि गड़ाए हुए आँसू बहाते रहे। उन्होंने कैकेयी से कहा कि माँ होने के नाते, उनका राम पर उनके पिता से अधिक अधिकार था। उन्होंने यह मान लिया कि कैकेयी ने राम में कोई सद्गुण नहीं देखा, और इसी कारण, राम को अपने आप आज्ञा न देकर, उनके पिता के पास जाना उन्हें आवश्यक लगा। उन्होंने कैकेयी को आश्वासन दिया कि वह कौसल्या माता से विदा लेने के बाद, उसी दिन वन चले जाएँगे।

तब राम अपनी माता कौसल्या से मिलने के लिए आगे बढ़े। वे उस समय प्रातःकालीन पूजार्चना में व्यस्त थीं। उन्हें देखकर कौसल्या ने अपने गले से लगा लिया। यथासम्भव नरमी से, राम ने माता को घटी घटनाओं के बारे में बताया। परन्तु वे तुरन्त मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं। जब उनकी चेतना लौटी, उन्होंने इन घटनाओं पर अपना रोष व्यक्त किया। उन्होंने राम से कहा, "जैसे तुम्हारे पिता तुम्हारे लिए पूज्य हैं, वैसे ही मैं, तुम्हारी माँ, भी। और तो और, मैं परिश्रमपूर्वक माता के रूप में अपने कर्तव्यों का निर्वहन करती रही हूँ और मुझे तुमसे बहुत प्रेम है। तुम्हें वन नहीं जाना चाहिए। मैं तुम्हें विदाई देने से अस्वीकार करती हूँ। यहीं रहो और मेरी सेवा करते हुए धर्माचरण करो। माता की सेवा सर्वश्रेष्ठ पुण्यप्रद मानी गई है।

"कश्यप ऋषि का एक पुत्र, अपनी माता की सेवा में लगा हुआ, घर पर रहा। परिणामस्वरूप, उस अनुशासन-बद्ध तपस्वी ने मृत्यु के पश्चात्, स्वर्गलोक जाकर, सृष्टि के प्रभु, प्रजापति के पद प्राप्त कर लिया। इस

उदाहरण का अनुकरण करो। तुम्हारे साथ बिताए गए एक घंटे का समय भी मेरे लिए सारे प्राणियों पर आधिपत्य से बढ़कर है। वहीं दूसरी ओर, यदि तुम मुझे छोड़ कर चले जाते हो, तो मैं असह्य दुःख में पड़ जाऊँगी। वास्तव में, मैं आमरण अनशन का व्रत ले लूँगी। यदि तुम गए, मेरे कष्ट और मृत्यु का उत्तरदायित्व तुम पर होगा और तुम्हें बड़ा भारी पाप लगेगा। समुद्र ने अपनी माता को कष्ट दिया। इस कारण, उसे नारकीय यातनाएँ भोगनी पड़ीं। उसके मार्ग पर मत जाओ।" चूँकि कौसल्या ने स्पष्टतः राम को वन में जाने से मना किया था, भगवान राम अपनी माता और पिता के विरोधी आज्ञाओं से जूझने को विवश हो गए थे।

राम ने कौसल्या से कहा कि दशरथ ने कैकेयी को दो वर लेने को कहा था और इसलिए उन्हें वे दो वर देने पड़े। यद्यपि जो कैकेयी ने दशरथ से कहा, उसने उन्हें बहुत भारी आघात पहुँचाया, और यद्यपि वे राम से बहुत प्रेम करते थे, तथापि ऐसा इसलिए था कि वे उस सत्य के अडिग रक्षक थे, जिस कारण वे चुपचाप कैकेयी के प्रति सहमत हुए थे। इस प्रकार, दशरथ का कृत्य धर्मानुकूल था।

पुत्र तो अपने पिता की आज्ञा के पालन हेतु बाध्य था। ऐसे भी उदाहरण हैं जब महान लोगों ने अपने पिता के निर्देश के अनुरूप ही कार्य किया, जब वे निर्देश अनुचित थे। उदाहरणार्थ, कण्डु ऋषि ने अपने पिता के कहने पर, उनके प्रति आदर रखते हुए, एक गाय की हत्या कर दी थी, जबकि वे यह जानते थे कि यह एक महान पाप होगा। इसी प्रकार, पिता जमदग्नि की बात रखने के लिए, परशुराम ने अपनी ही माता रेणुका का वध कर दिया था, जो कि राजा चित्ररथ को देखकर कामुक विचारों में पड़ गई थीं। वर्तमान स्थिति में, दशरथ का आदेश तो धर्मसङ्गत था और इसलिए, एक पुत्र के रूप में आज्ञापालन करने के लिए, यह एक और अतिरिक्त कारण था।

आगे बढ़ते हुए राम ने कौसल्या को समझाया कि उनका निर्देश सही नहीं था। दशरथ की पत्नी के रूप में उन्हें धर्ममार्ग पर सदैव अपने पति का साथ देते रहना चाहिए। यह उनके लिए अनुचित था कि वे अपने पति की धर्मपरायणता में अड़चन डालें। और तो और, दशरथ एक सम्राट थे। उनकी आज्ञा का

पालन करना उनकी प्रजा का कर्तव्य था। इसलिए, उनके निर्देशों का न केवल उनके द्वारा, किन्तु कौसल्या के द्वारा भी सम्मान किया ही जाना चाहिए था।

इस प्रकार, राम ने बताया कि उनके पिता की आज्ञा धर्मानुसार ही थी, प्रत्युत माता की आज्ञा धर्मानुसार नहीं थी, और उस वर्तमान स्थिति में, उनके लिए सही मार्ग यही था कि वे अपने पिता की आज्ञा का पालन करें और वन में चले जाएँ। उन्होंने कौसल्या से अपने लौटने की प्रतीक्षा करने के लिए कहा। राम के स्पष्टीकरण को सुनकर, कौसल्या उनकी बात मान गईं। हालाँकि, वे भी राम के साथ वन में जाना चाहती थीं। राम ने उनसे कहा कि यह उनके लिए ठीक नहीं है कि वे अपने धर्मात्मा और वृद्ध पति का अपमान करके अपने बेटे के साथ रहें। और तो और, दशरथ पहले ही राम के आसन्न प्रस्थान के कारण बहुत पीड़ित थे और कैकेयी द्वारा दिए गए विश्वासघात से बहुत दुःखी थे। कौसल्या के लिए यह पूर्णतः क्रूर कार्य होगा कि वे राजा दशरथ को ऐसी अवस्था में छोड़ दें, क्योंकि उनका दुःख उनकी सहन शक्ति की सीमा से बहुत अधिक हो जाएगा।

कौसल्या ने राम के कथन की प्रशंसा की और उन्हें अपना पूरा आशीर्वाद दिया। उन्होंने कहा, "मेरे पुत्र, अविचल मन से प्रस्थान करो। धर्म, जिसका तुम निष्ठापूर्वक पालन करते हो, तुम्हारी रक्षा करे। अपनी सत्यशीलता से रक्षित होकर तुम दीर्घायुष्मान रहो। और अपने पिता तथा माता की तुम्हारे द्वारा की गई सेवा के नाते, वन में घूमते समय देवतागण सदैव तुम्हें सुख प्रदान करें। मैं सानन्द तुम्हारे अयोध्या वापसी की प्रतीक्षा करूँगी।" अपनी माता का आशीर्वाद पाकर राम ने उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया और उनसे विदा ली।

अहिंसा अत्यन्त प्रशस्त है। यह परामर्श दिया जाता है कि जो अपना विरोधी है, उसे भी हानि नहीं पहुँचानी चाहिए। स्पष्टतः, उसे किसी ऐसे व्यक्ति को चोट नहीं पहुँचानी चाहिए जो उसके प्रति कोई दुर्भावना न रखता हो। क्या इसका यह तात्पर्य है कि किसी बलवान व्यक्ति को निर्दोष और असुरक्षित लोगों पर पापी लोगों द्वारा की जा रही हिंसा का मूकदर्शक बने रहना चाहिए? राम को इस तरह के प्रश्न से निपटना पड़ा।

राम के अयोध्या से वन जाने के बाद, एक अवसर पर वे शरभङ्ग मुनि के आश्रम पहुँचे। मुनि ने उनका आदर सत्कार किया और फ़िर, ब्रह्मलोक चले गए। मुनिगण वहाँ एकत्र हुए और राम के पास पहुँचे। उन्होंने उनसे कहा कि राक्षस उनके अनुष्ठानों में विघ्न डाल रहे हैं और उनमें से बहुत मुनियों का वध भी कर रहे हैं। वे आत्मरक्षार्थ उन राक्षसों को शाप नहीं देना चाहते थे, क्योंकि इससे उनकी तपश्शक्ति व्यर्थ हो जाएगी। उन्होंने राम से विनती की कि वे उनकी उत्पीड़क राक्षसों से रक्षा करें। राम ने उनसे कहा कि उन्हें आज्ञा देनी चाहिए, न कि उनसे प्रार्थना करनी चाहिए। राम ने उन्हें आश्वस्त किया कि वे हिंसक राक्षसों का वध करेंगे।

उसके बाद, शरभङ्ग मुनि के पूर्वपरामर्शानुसार, राम सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम गए और वहाँ रात बिताई। फ़िर राम, सीता और लक्ष्मण दण्डकारण्य की ओर गए। सीता ने राम के राक्षसवध के निर्णय के बारे में अपनी शङ्का व्यक्त की। उन्होंने राम से कहा कि यह एक पुरुष के लिए घोर अपराध होगा कि वह उस व्यक्ति के प्रति क्रूर हो जो उससे कोई वैर न रखता हो। उन्होंने कहा कि राक्षसों ने उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ा है और इसलिए, राम द्वारा उन पर आक्रमण न्यायसङ्गत नहीं है। और, शस्त्रों का प्रयोग वन्यजीवन के लिए सङ्गत नहीं है। यदि वे चाहते, तो योद्धा के रूप में अपनी भूमिका को अयोध्या लौटने पर निभा सकते हैं।

सीता जी ने उनसे कहा कि उनके शस्त्र उठाने से, यह सम्भव है कि उनका दुरुपयोग हो जाए। उन्होंने एक सत्यवादी और पवित्र मुनि की कथा सुनाई जो वन में रहते थे। इन्द्र तो उन ऋषि की तपस्या में बाधा डालना चाहते थे। इसलिए, उन्होंने एक खड्ग-धारी योद्धा का वेष धारण कर लिया। वह योद्धा मुनि के पास आया और, अपने खड्ग मुनि के पास निक्षेप रखते हुए, उनसे प्रार्थना की कि वे इसका ध्यान रखें। वह योद्धा तब चला गया। मुनि को लगा कि यह उनका कर्तव्य है कि वे उस खड्ग का ध्यान रखें और दृष्टि बनाए रखें कि कहीं खड्ग चोरी न हो जाए। इसलिए, उन्होंने इसे अपने साथ — यहाँ तक कि जब वे फूल तोड़ने जाते थे, तब भी — रखना प्रारम्भ कर दिया। धीरे-धीरे, वे क्रूर हो गए और अपनी तपस्या से विमुख हो गए। अपनी क्रूरता के फलस्वरूप, वे नरक में गए।

सीता ने बल देकर कहा कि राम धर्म को इतने अच्छे प्रकार से जानते हैं कि कोई भी उन्हें सिखाने की योग्यता नहीं रखता। सीता द्वारा राम को उच्च सम्मान के पद पर मानने के कारण, वे राम को निर्देश देने का कोई प्रयास भी नहीं कर रही थीं। हालाँकि, उनके प्रति अपने अत्यधिक प्रेम के कारण, वे नहीं चाहती थीं कि राम कभी कोई त्रुटि करें। इसलिए वे उन्हें उस धर्म का स्मरण करा रही थीं, जिसे वे पहले से ही जानते थे।

राम ने सीता के चिन्ता की प्रशंसा की। उन्होंने उनसे कहा कि कष्ट में पड़े लोगों की रक्षा करना क्षत्रिय का धर्म है और इसी कारण से क्षत्रियों ने शस्त्रधारण किया है। राक्षसों द्वारा निर्दोष मुनियों को कष्ट पहुँचाया जा रहा है और उनको मारा जा रहा है। इसलिए, यह उनका कर्तव्य है कि राक्षसों से युद्ध करके मुनियों की रक्षा की जाए। इसके अतिरिक्त, उन मुनियों ने राम से रक्षा का आश्रय माँगा था। यह उनके लिए अत्यावश्यक था कि वे उन्हें आश्रय प्रदान करें जो उनसे शरण माँगें। साथ ही, मुनिगण की प्रार्थना के प्रत्युत्तर में, उन्होंने उन्हें पूरा संरक्षण प्रदान करने का वचन दिया था। चूँकि सत्य उन्हें बहुत प्रिय है, तो वे अपने जीवन को त्याग सकते हैं, परन्तु वचन को नहीं, तत्रापि विशेष रूप से जोकि पवित्र ऋषियों को दिया गया हो। राम के स्पष्टीकरण को सुनकर, सीता की आशङ्काएँ दूर हो गईं।

इसी प्रकरण से सम्बन्धित है वाली के वध की घटना। रावण द्वारा अपहरण की गई सीता के अन्वेषण के समय, राम और लक्ष्मण कबन्ध नामक एक राक्षस से मिले। कबन्ध से उन्हें यह पता चला कि सीता को पाने के लिए, उन्हें पहले वानरयूथपति और पम्पा-सरोवर से सुशोभित ऋष्यमूक पर्वत पर रहने वाले सुग्रीव से मिलना चाहिए। इसलिए, दोनों भाई वहाँ गए। वे हनुमान जी से मिले, जिन्होंने उनके बारे में पूछताछ की। उन्होंने तब राम और लक्ष्मण के आगमन का समाचार सुग्रीव को दिया। सुग्रीव प्रसन्नता से उनके समीप गए और उन्होंने अपनी मित्रता का हाथ राम की ओर बढ़ाया। राम और सुग्रीव ने अपनी मित्रता के बन्धन को अग्नि के साक्षित्व में विधिवत् सम्पादित किया। सुग्रीव ने शोक प्रकट किया कि वह अपने भाई

वाली के कारण बहुत कष्ट झेल रहा है। उन्होंने बताया कि जब उनके पिताजी का स्वर्गवास हुआ, तब वीर वाली का राज्याभिषेक किया गया। उसके पश्चात्, सुग्रीव वाली के साथ रहा और अपने भाई का आदर और उनकी आज्ञा का पालन करता रहा।

एक रात, मायावी नाम का एक दानव नगर के बाहर आ गया और वाली को युद्ध के लिए ललकारने लगा। वाली तुरन्त सुग्रीव के साथ बाहर आए। मायावी ने जब देखा कि दोनों भाई निडरता से साथ-साथ खड़े हैं, तब वह भाग खड़ा हुआ। वाली और सुग्रीव ने उसका पीछा किया। कुछ समय के बाद, मायावी धरती की एक गुफा में घुस गया। वाली ने उसके पीछे जाने का निश्चय किया। सुग्रीव उनके साथ जाना चाहते थे, परन्तु उन्होंने अपने भाई द्वारा यह आदेश पाया कि छिद्र के द्वार पर उनके वापस आने तक रक्षक बनकर खड़े रहें। वाली अन्दर गए और सुग्रीव ने अपने भाई के दहाड़ने की ध्वनि सुनी। उन्होंने वहाँ पूरे एक वर्ष तक प्रतीक्षा की परन्तु वाली बाहर नहीं आए। सुग्रीव ने तब रक्त की धारा बाहर निकलती हुई देखी। उन्होंने उस दानव की ध्वनि तो सुनी, परन्तु अपने भाई की दहाड़ को नहीं सुना। यह मानकर कि उनके भाई मारे गए हैं, उन्होंने उस छिद्र के मुख को एक बड़ी चट्टान से बन्द कर दिया और किष्किन्धा आ गए। वहाँ, मन्त्रियों ने उनका राज्याभिषेक कर दिया।

कुछ समय बाद, सुग्रीव को प्रसन्नता हुई जब वाली लौट आए। सुग्रीव ने परिस्थिति के बारे में उन्हें समझाया और तुरन्त सिंहासन अपने भाई को लौटाने लगा। फ़िर भी, वाली सुग्रीव पर बहुत रुष्ट थे और उन्होंने सुग्रीव पर विश्वासघात का आरोप लगाया। उन्होंने सुग्रीव को राजधानी से बाहर कर दिया और अपने सुख भोग के लिए उनकी पत्नी को भी बलपूर्वक हड़प लिया। सुग्रीव ऋष्यमूक पर्वत पर भाग आए, जहाँ वाली एक शाप के कारण नहीं आ सकते थे। सुग्रीव ने राम से वाली के वध करने और स्वयं को बचाने की प्रार्थना की। राम ने तुरन्त उनके प्रति अपना आश्वासन दिया। सुग्रीव ने तब राम की शक्ति का दो परीक्षाओं के माध्यम से मूल्याङ्कन किया। उसके बाद, उन्हें राम पर पूरा विश्वास हो गया।

राम ने उन्हें वाली से युद्ध करने के लिए कहा और यह भी कहा कि वे आवश्यक कार्यवाही करेंगे। फ़िर भी, जब राम ने वाली और सुग्रीव को युद्ध करते देखा, तो उन्होंने पाया कि वे इतने एक जैसे दिखते हैं कि राम सुग्रीव को पहचान ही न सके। उन्होंने वाली के वध के लिए कोई बाण नहीं छोड़ा, क्योंकि ऐसा भी हो सकता था कि जिसे वे मारते, वह सुग्रीव ही होता तो कैसा अनर्थ हो जाता। चोटिल सुग्रीव भाग खड़े हुए। राम ने उन्हें बताया कि उन्होंने कोई कदम क्यों नहीं उठाया और वाली को फ़िर से चुनौती देने को कहा। लक्ष्मण ने उनके गले में पहचान चिह्न के रूप में फूलों की एक माला पहना दी। सुग्रीव वाली के महल गए और उन्हें ललकारने लगे।

वाली तुरन्त बाहर जाने ही वाले थे जब उनकी पत्नी तारा ने उन्हें रोका। उसने वाली को बताया कि सुग्रीव इतनी बुरी तरह मार पड़ने और चोटिल होने के बाद भी, इतनी शीघ्रता से वापस आ गए हैं; इस तथ्य का निहितार्थ यह होगा कि उन्हें एक सहयोगी मिल गया है। तारा ने यह भी कहा कि गुप्तचरों ने उसके बेटे अङ्गद को बताया है कि इक्ष्वाकु वंश के दो राजकुमार, राम और लक्ष्मण, उसी प्रदेश में हैं। उसने आशङ्का जताई कि सुग्रीव ने निश्चय ही राम से सहायता माँगी होगी। उसने कहा कि उसे मिली जानकारी के अनुसार, राम वीरता में देवराज इन्द्र के समान हैं और बहुत धर्मनिष्ठ हैं। उसने वाली को परामर्श दिया कि सुग्रीव से लड़ाई छोड़कर उनसे पुनः मित्रता कर लेनी चाहिए।

वाली ने अपने पत्नी के परामर्श पर कोई ध्यान नहीं दिया और कहा कि यदि राम इतने ही धर्मात्मा हैं, तो वे उन पर किसी भी अवसर पर आक्रमण नहीं करेंगे। वे सुग्रीव से युद्ध करने हेतु अपने प्रासाद से बाहर आ गए। दोनों भाई बहुत ही घातक युद्ध में भिड़ गए। धीरे-धीरे, सुग्रीव पिछड़ने लगे और लगभग हारने ही वाले थे। उस अवसर पर, राम ने तीर चला दिया और वाली को बहुत घायल कर दिया। फ़िर भी, इन्द्र द्वारा दी गई कनक-माला के प्रभाव से — जिसे उन्होंने धारण कर रखा था — वाली तुरन्त नहीं मरे। वे मरणासन्न होकर धरती पर पड़े हुए थे।

वाली ने राम से कहा, “मैंने आपको कोई हानि नहीं पहुँचाई है, न ही मैंने आपके राज्य के प्रति कोई अपराध किया है। तो, मुझ पर प्रहार करके आपने अनुचित कार्य किया है। आप मुझ पर आक्रमण करना चाहते, तो आपको मुझे द्वन्द्वयुद्ध के लिए आमन्त्रित करना चाहिए था और मुझसे लड़ना चाहिए था। इसके विपरीत, आपने मुझे तब घायल कर दिया जब मैं किसी दूसरे से युद्ध में व्यस्त था। जैसे मैंने आपके बारे में सुन रखा था, और विश्वास भी करता था, कि आप क्षमा, धर्मपरायणता, वीरता और केवल पापियों को दण्ड देने जैसे गुणों से सम्पन्न हैं। मैंने आपके महान वंश का भी ध्यान रखा था। यही कारण है कि यद्यपि मेरी पत्नी तारा ने मुझे चेतावनी दी थी, यह जानकर मैं युद्ध करने हेतु पूरे उत्साह के साथ बाहर आ गया कि आप कभी इतना नीचे नहीं गिरेंगे कि जब मैं अपने भाई से लड़ रहा होऊँ, तब आप मुझ पर वार कर दें। अब, मुझे पता चला कि भले ही आप धार्मिक होने का दिखावा करते हैं, आप बहुत पापी हैं।

“मुझ जैसे वानर वन में रहते हैं और कन्द-मूल फल खाकर जीवन बिताते हैं, जबकि आप जैसे मनुष्य नगरों में रहते हैं और पकाया हुआ भोजन ग्रहण करते हैं। अतः, हम दोनों में वैर का क्या आधार है? मनुष्य माँस और त्वचा के लिए पशुओं का आखेट करते हैं। तथापि, क्षत्रिय को बन्दर का माँस खाने से मना किया गया है। इसके अतिरिक्त, सज्जन लोगों को बन्दर का चर्म पहनने अथवा इसकी त्वचा और हड्डियों का उपयोग करने की अनुमति नहीं है। इसलिए, मुझे एक पशु के रूप में आखेट करने के लिए भी आपका कोई औचित्य नहीं है।

“अपनी पत्नी की प्राप्ति के लिए सुग्रीव को उपकृत करने के बदले, आप मेरे पास आ सकते थे। भले ही आपकी पत्नी को किसी द्वीप पर या धरती के नीचे बँदी बनाकर रखा गया हो, मैं उन्हें एक ही दिन में आपके पास वापस ले आता। मैं रावण को भी बाँधकर आपके पास पहुँचा देता।

“सुग्रीव के लिए यही उचित रहता कि वह सामान्य क्रम के अनुरूप, मेरी मृत्यु के बाद ही सिंहासन पर बैठता। हालाँकि, अब उसके कारण, आपने

अन्यायपूर्वक मुझ पर मारक चोट पहुँचाई है। अपने कृत्य के लिए आपके पास क्या न्यायोचित तर्क है?”

राम ने वाली की आपत्तियों का विस्तृत उत्तर दिया। उन्होंने कहा, “यह क्षेत्र भी इक्ष्वाकु कुल के अधिकार प्रदेश में पड़ता है क्योंकि उनके पूर्वज मनु महाराज ने इसे उन्हें न्यायपूर्वक दिया था। यह देश वर्तमान में भरत द्वारा शासित है जो कि अत्यन्त धार्मिक हैं। वे और उनके प्रतिनिधिगण पापियों को यथान्याय दण्ड देने के प्रमुख राजधर्म के प्रति समर्पित हैं।

“धर्म के आदेश के अनुसार, छोटा भाई और गुणवान शिष्य स्वयं के पुत्र के समान होते हैं। सुग्रीव तुम्हारा छोटा भाई है। यद्यपि वह निर्दोष था, तुमने उससे अत्यन्त न्यायविरुद्ध व्यवहार किया और उसे किष्किन्धा से बाहर निकाल दिया। उसकी विवाहिता पत्नी रुमा एक प्रकार से तुम्हारी पुत्रवधू के समान है। तब भी, तुमने उस पर अधिकार जताया और कामान्ध होकर, उसके साथ सहवास करते रहे हो। अतः, तुम एक घोर अपराध के दोषी हो। मृत्यु ही वह दण्ड है जोकि उस व्यक्ति के लिए निश्चित किया गया है जो अपनी पुत्री, बहन अथवा अपने छोटे भाई की पत्नी के साथ कामान्ध होकर सम्बन्ध स्थापित करता है। एक राजन्य क्षत्रिय के रूप में, जो कि महाराज भरत का यहाँ प्रतिनिधि है, मैंने तुम्हें यही दण्ड दिया है।

“जिस समय सुग्रीव के साथ मेरी अटूट मित्रता की शपथ ली गई, मैंने अन्य वानरों की उपस्थिति में अपना वचन दिया कि मैं उसे उसकी पत्नी और सम्प्रभुता वापस दिलाऊँगा। मेरे जैसा पुरुष कभी भी अपने वचन को असम्मानित कैसे जाने दे सकता है? यह भी मेरे तुम पर प्रहार करने का एक कारण है।

“तुमने यह आरोप लगाया था कि तुम पर तब वार किया गया जब तुम अपने भाई के साथ लड़ रहे थे। भूलना नहीं कि तुम केवल एक बन्दर हो। यह मनुष्यों की परम्परा नहीं है कि वे किसी पशु को युद्ध के लिए आमन्त्रित करें, और केवल तभी उसे मार दें। उदाहरण के लिए, एक आखेटी किसी

हिरण को मार देता है, चाहे वह चौकस हो या असावधान, और चाहे वह उसका सामना करे या उससे विमुख हो। तुम्हारे एक बन्दर होने के नाते, यह अप्रासङ्गिक है कि तुम किसी से लड़ रहे थे या नहीं, जब तुम मेरे तीर से बेधे गए थे।

“धर्म के जानकारों द्वारा आधिकारिक के रूप में स्वीकार किए गए दो श्लोकों के माध्यम से मनु ने घोषणा की है — ‘जो पुरुष पापों को बनाए रखते हैं, वे राजाओं द्वारा दण्डित किए जाने पर दोषों से मुक्त हो जाते हैं, और पुण्य कर्म करने वालों की तरह स्वर्ग आरोहण करते हैं। एक चोर या तो दण्ड द्वारा अथवा क्षमादान देकर मुक्त कर दिए जाने से, अपने पापों से पूरी तरह से मुक्त हो जाता है। परन्तु, जो राजा पापी को दण्ड नहीं देता है, वह उस मनुष्य के पाप का भागी होता है।’ तुमने एक घोर पाप किया था। तुम्हें दण्ड देकर मैंने तुम्हें उस पाप से मुक्त कर दिया है। अब तुम स्वर्ग जा सकते हो।”

वाली भगवान राम के स्पष्टीकरण से पूर्णतः सन्तुष्ट थे। हाथ जोड़कर, उन्होंने राम से कहा, “आपने जो कहा है, वह पूर्णतः सही है। मेरे द्वारा भूल से कहे गए अशोभनीय और कठोर शब्दों के लिए मुझे क्षमा करें।” फ़िर उन्होंने राम से अपने युवा पुत्र अङ्गद की रक्षा करने और सुग्रीव तथा अङ्गद के बीच प्रगाढ़ सम्बन्ध स्थापित कराने की विनती की। राम ने कृपापूर्वक उनका अनुरोध स्वीकार कर लिया।

27. धर्मान्तरण — एक विसङ्गति

एक बार, एक धर्मान्तरणकर्ता ने एक व्यक्ति से कहा कि उसने उस व्यक्ति के धर्म और जाति को बदल दिया था। कुछ दिनों बाद, उस “धर्मान्तरित” व्यक्ति ने धर्मान्तरणकर्ता को भोजन के लिए आमन्त्रित किया। आतिथेय ने

अपने अतिथि को सूअर का माँस परोसा। अतिथि ने पूछा, "यह क्या है?" आतिथेय ने उत्तर दिया, "यह सूअर का माँस है, महाशय," "क्या! सुअर का माँस!" अतिथि ने चिल्लाया, "इसे मेरी थाली से हटा दो। मैं ऐसी वस्तुएँ नहीं खाता हूँ।" आतिथेय तो पीछे हटने वाला नहीं था। उसने आपत्ति जताई, "आपने मुझे बताया कि आपने मेरे धर्म और जाति बदल दिया था। अब आपको जो कुछ मैं देता हूँ, उसे आपको क्यों स्वीकार नहीं करना चाहिए?" "सूअर का माँस अशुद्ध है," अतिथि ने उत्तर दिया। आतिथेय ने तर्क दिया, "जिस तरह आपने मुझ पर जल छिड़क कर मेरे धर्म और जाति को बदल दिया, उसी तरह मैंने भी सूअर के माँस पर जल छिड़क कर उसे भेड़ के माँस के रूप में परिवर्तित कर दिया। इसलिए आपके दृष्टिकोण से, यह भेड़ का माँस होना चाहिए, न कि सूअर का माँस। यह आश्चर्य की बात है कि आप इसे खाने के लिए स्वीकार नहीं कर रहे हैं।" धर्मान्तरणकर्ता के पास कोई उत्तर नहीं था।

शास्त्र इस बात को स्वीकार नहीं करते हैं कि किसी हिन्दू को किसी भी प्रक्रिया से — जैसे कि जल का छिड़काव — किसी भी धर्म में वास्तव में परिवर्तित किया जा सकता है। यदि कोई व्यक्ति सनातन धर्म का पालन करना छोड़ देता है तो वह भ्रष्ट, अर्थात् पतित, बन जाता है। विभिन्न पापों के प्रायश्चित्त निर्धारित हैं। कोई व्यक्ति अपने शास्त्र-विहित कर्तव्य को त्यागने के कारण, प्रायश्चित्त करके आगे बढ़ सकता है जैसे कि "धर्मान्तरण" कभी हुआ ही नहीं था।

ईश्वर, सभी की शरण

एक व्यक्ति को अधर्म को त्यागने के लिए और धर्म के पथ पर चलने के लिए, सर्वाधिक सहायता जो मिल सकती है, वह केवल भगवान से है, जो सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक और धर्म के सर्वश्रेष्ठ रक्षक तथा प्रतिपादक हैं। भगवान और उनके प्रति भक्ति इस खण्ड की विषय-वस्तु है।

28. अदृश्य होते हुए भी ईश्वर का अस्तित्व है

एक लड़के ने वायु सहित हर उस वस्तु के अस्तित्व को स्वीकार करने से मना कर दिया, जो उसे दिखाई न देती हो। उसके पिता ने पेड़ के फड़फड़ाते हुए पत्तों की ओर सङ्केत करते हुए कहा, "वायु के कार्य को देखो, जिसे मानने से तुम मना करते हो।" "आप मुझे पत्ते दिखा रहे हैं, वायु नहीं। वायु कहाँ है?" लड़के ने प्रत्युत्तर दिया। पिता ने तुरन्त लड़के की नाक के छिद्रों और मुख को दबाकर बन्द कर दिया। श्वासरोध का अनुभव करते हुए, लड़के ने स्वयं को छुड़ाने के लिए सङ्घर्ष किया। एक मिनट के भीतर, पिता ने उसे छोड़ दिया। "आपने मेरे श्वास को रोक दिया था। इससे पीड़ा हुई," लड़के ने विरोध जताया। पिता ने पूछा, "तुम श्वास में क्या भीतर लेना चाहते थे?" "वायु," इसके अस्तित्व को स्वीकार करते हुए लड़के ने उत्तर दिया।

अप्रत्यक्षता सदैव अस्तित्वहीनता की द्योतक नहीं होती है। भगवान, वायु के समान, आँखों से नहीं देखे जा सकते हैं, परन्तु निश्चयपूर्वक उनका अस्तित्व है। यह वे हैं जो चराचर जगत् की सृष्टि, पालन और संहार करते हैं।

29. एक व्याकुलता में नास्तिक

एक मन्त्री — जो एक नास्तिक था परन्तु मुझमें बहुत आदरभाव रखता था — मेरे दर्शन के लिए आया। मुझसे बातचीत के समय, उसने टिप्पणी की, "हमारे पूर्वज निश्चय ही बुद्धिमान थे। बहुत पहले, लोग अपने दायित्वों का ठीक से पालन करते थे। यद्यपि उनमें से कुछ लोग दोषपूर्ण कार्य करते होंगे, सामान्य रूप से शासननियम और आदेश के परिपालन को सुनिश्चित करने के लिए बहुत बड़ी सङ्ख्या में पुलिसकर्मियों की आवश्यकता नहीं थी। कारण यह था कि लोगों को भगवान और शास्त्रों में विश्वास था। परिणामस्वरूप, उन्हें भगवान के दण्ड का भय रहता था।

"इन दिनों, मेरे जैसे लोग घोषणा करते हैं कि भगवान का अस्तित्व नहीं है और धर्म निरर्थक है। हम सोचते थे कि लोग इस प्रकार की वाक्पटुता से मोहित हो जाएँगे और हमारे द्वारा निर्देशित किए जाएँगे। तथापि, हमारी योजना का विपरीत प्रभाव पड़ा। अब लोगों को किसी का भय नहीं है और असावधानी से वे देश के नियमों का उल्लङ्घन करते हैं। वे नैतिकता को अत्यल्प महत्त्व देते हैं। हमने परिदृश्य से भगवान को दूर कर दिया, परन्तु अनुशासन को सुनिश्चित करने के लिए कोई उपयुक्त प्रतिस्थापन नहीं पा सके। मुझे लगता है कि पूर्वजों ने बुद्धिमानी से भगवान की परिकल्पना की और जिसकी उन्होंने कल्पना की थी, उसका प्रचार-प्रसार किया।"

जैसे देखा जा सकता है, यहाँ तक कि एक नास्तिक को भी लाभ होगा कि वह भगवान को न नकारे!

30. भगवान सर्वोत्कृष्ट जादूगर

एक जादूगर ने कुछ लोगों के समक्ष प्रसिद्ध भारतीय रस्सी के इन्द्रजाल का प्रदर्शन किया। उसने एक रस्सी ऊपर फेंकी, इस पर चढ़ा और देखते ही देखते अदृश्य हो गया। यद्यपि दर्शक उस जादूगर को देख नहीं सकते थे, तथापि वे एक युद्ध की ध्वनि सुन सकते थे। फ़िर उन्होंने उसका शरीर चूर-चूर होकर गिरते हुए देखा। थोड़ी देर बाद, वह उनके समक्ष बिना किसी चोट के और फुर्ती के साथ उपस्थित हो गया। "यह सब कुछ मेरी इन्द्रजाल की शक्ति के कारण हुआ है। वास्तव में केवल मैं ही उपस्थित था," जादूगर ने आश्चर्यचकित दर्शकों के समक्ष स्पष्ट किया।

कुछ नास्तिकों का अभिप्राय था, "किसी घट के निर्माण के लिए, कुम्भकार को मिट्टी की आवश्यकता होती है; अपने बैठने और उसके चक्के जैसी सामग्रियों के लिए स्थान की आवश्यकता होती है। यह माना जाता है कि ब्रह्माण्ड को

भगवान ने बनाया है। उन्होंने ऐसा नहीं किया होगा। अन्ततोगत्वा, विश्व के आरम्भ के पूर्व, उनके पास ब्रह्माण्ड के विधान हेतु आवश्यक सामग्री, पदार्थों के संसाधन के लिए उपकरण और यहाँ तक कि अपने बैठने के लिए स्थान का भी अभाव रहा होगा।"

यह आपत्ति असमर्थनीय है। वह जादूगर कभी भूमि पर अपनी स्थान से नहीं हिला। तथापि, सम्भवतः चूँकि जादूगर ने दर्शकों को सम्मोहित कर दिया था, उन्होंने एक ऐसा प्रदर्शन देखा जिसने उन्हें आश्चर्यचकित कर दिया। इसी प्रकार, ईश्वर, जो सर्वश्रेष्ठ ऐन्द्रजालिक हैं, अपनी मायाशक्ति से, बिना किसी सामग्री, उपकरण अथवा स्थान के, विश्व को अभिव्यक्त कर देते हैं। यहाँ तक कि एक सामान्य मनुष्य भी ईंटों और टार के बिना, घरों और सड़कों सहित एक सपनों के विश्व को प्रकट कर सकता है। तब भगवान की, बिना उनके लिए बाह्य सामग्री के, ब्रह्माण्ड को बनाने की क्षमता में आश्चर्य क्या है?

31. ईश्वर की दोषहीन रीतियाँ

जब एक व्यक्ति सड़क पर टहल रहा था, तो उसने कद्दू की पतली लता देखी। उसने सोचा, "निश्चय ही भगवान कितने क्रूर होंगे कि उन्होंने इस पतली लता पर एक भारी फल का बोझ डाला है?" वह आगे बढ़ा और एक विशाल नीम के वृक्ष के पास पहुँचा। इसके छोटे फलों को देखकर, उसने सोचा, "सचमुच, भगवान पागल होंगे। उन्होंने इतने बड़े वृक्ष को इतना छोटा फल दिया है।" उसने अभी इस प्रकार विचार करना समाप्त ही किया था, तभी एक फल उसकी एक पलक पर गिरा। छोटा होने के कारण, उससे उसे कम पीड़ा हुई। तुरन्त, उसे आभास हुआ, "मैंने भगवान पर बिना पर्याप्त विचार के दोष लगाया। यदि कहीं भगवान ने इस वृक्ष को भारी कद्दू का बोझ डाला होता, तो मेरा भाग्य क्या रहा होता? यह केवल उनके इस वृक्ष को छोटे फल और उस पतली लता को भारी कद्दू देने का परिणाम है कि आज मैं एक छोटी सी चोट के साथ बच निकल सका।"

एक राजा था। उसका एक बहुत ही धार्मिक मन्त्री था जो सदैव मानता था, "ईश्वर जो भी चाहते हैं, वह हमारे कल्याण के लिए होता है।" एक दिन, उस राजा ने अपनी अङ्गुली काट ली और वह बहुत सन्तप्त था। उसने अपने मन्त्री को बुलाया और उससे पूछा, "क्या आप कहते हैं कि यह भी मेरे भले के लिए हुआ है?" मन्त्री ने सकारात्मक उत्तर दिया। क्रोधित होकर राजा ने मन्त्री को जेल में डाल दिया।

अगले दिन, राजा आखेट के लिए वन गया। वह अपने सेवकवृन्द से अलग हो गया और जंगल में अपना मार्ग खो बैठा। कुछ उग्र आदिवासियों ने, जो अपने पूज्य देवता के लिए नरबलि देने की इच्छा रखते थे, उस राजा को देखा और पकड़ लिया। वे उसे अपने पुजारी के पास ले गए। पुजारी ने राजा की परीक्षा की और कहा, "यह व्यक्ति बलि दिए जाने योग्य नहीं है। उसकी एक अङ्गुली नहीं है और हम केवल उसे ही बलि दे सकते हैं जो पूर्ण हो।" राजा को छोड़ दिया गया। जीवित बनकर स्वयं को धन्य मानते हुए, वह अपने राजभवन लौट आया। उसे आभास हुआ कि उसने अनुचित रीति से अपने मन्त्री को दण्ड दिया है; अगर उसने अपनी उङ्गली नहीं खोई होती — जिसे उसके मन्त्री ने उसके हित में माना था — तो वह मर गया होता। उसने अपने मन्त्री को जेल से छोड़ दिया और उससे क्षमायाचना की। राजा की जिज्ञासा कुछ बढ़ गई; उसने मन्त्री से पूछा, "क्या आप यह मानते हैं कि आपका कारागार में जाना भी भगवान द्वारा आपकी भलाई के लिए करवाया गया था?" "हाँ", मन्त्री ने उत्तर दिया। "यदि मुझे कारागृह में न डाला गया होता, तो मैं आपके साथ जंगल में होता और मेरी बलि दे दी जाती।"

यदि कोई विश्वासपूर्वक विश्लेषण करता है, तो यह पता चलता है कि जो भगवान ने बनाया है, वह निर्दोष है और जो कुछ भी वे विहित करते हैं, वह व्यक्ति के कल्याण के लिए होता है।

32. भगवान उचित समय पर दण्ड देते हैं

किसी गाँव में, एक दम्पती रहते थे जिनकी कोई सन्तान नहीं थी। अपनी मातृ प्रवृत्ति के कारण, पत्नी अपने पति की तुलना में अधिक उत्सुक थी कि उनके यहाँ एक सन्तान का जन्म हो। वह विभिन्न लोगों से विचार-विमर्श करती रहती थी कि सन्तान की प्राप्ति के लिए वह क्या परिहार अथवा साधन अपना सकती है। पति ने तो लगभग आशा छोड़ दी थी। एक दिन, एक व्यक्ति ने उस महिला से कहा कि यदि वह एक बच्चे की बलि देती है और उसके रक्त से स्नान करती है, तो वह एक सन्तान को जन्म देगी। उसने इसके विषय पर अपने पति से बात की। उसने इस प्रकार के विचार को सोचने तक के लिए अपनी पत्नी को फटकार लगाई।

एक वर्ष बीत गया और वह गर्भवती हो गई। समय पर, उसने एक बच्चे को जन्म दिया जो उन दोनों की आँखों का तारा बन गया। पति ने अपनी पत्नी से कहा, "अच्छा सुनो, क्या मैंने तुम्हें चेतावनी नहीं दी थी की तुम्हें किसी भी बुरे उपाय का आश्रय नहीं लेना चाहिए? वह कार्य भगवान को कभी भी प्रसन्न नहीं करता। तुमने मेरे परामर्श का पालन किया और अब उन्होंने हमें वरदानस्वरूप एक सुन्दर सन्तान दी है।" पत्नी कुछ झेंप गई। यह अनुभव करके कि कुछ गड़बड़ है, पति ने उससे कहा, "अरे बोलो! ऐसा लगता है कि तुम्हारे मन में कुछ है।" लड़खड़ाती हुए शब्दों में, पत्नी ने उत्तर दिया, "क्या आप स्मरण कर सकते हैं कि लगभग एक वर्ष पूर्व, हमारे पड़ोसी का बच्चा मर गया था?" पति अपने मन में उत्पन्न विचार के कारण, व्याकुल हो गया। तथापि, उसने अपना मुखमण्डल भावशून्य रखा और उत्तर दिया, "हाँ, कर सकता हूँ।" उसकी पत्नी की ध्वनि फुसफुसाहट में बदल गई और उसने कहा, "वह बच्चा प्राकृतिक रूप से नहीं मरा। मैंने स्वयं उसे मार डाला था और उसके रक्त में स्नान किया था। यही कारण है कि यह सन्तान हमें प्राप्त हुई है।"

पत्नी की इस स्वीकरोक्ति से पति तो लगभग विक्षिप्त हो गया। उसका मन लड़खड़ाने लगा और उसने भगवान से आपत्ति जताई, "हे ईश्वर! आपके संसार में तो केवल अन्धकार है और कोई न्याय नहीं है।" वह अनुग्रह प्रदान

करने की और पापपूर्ण कृत्यों का दण्ड न देने की भगवान की नीतियों से इतना जुगुप्सित हो गया कि उसने घर छोड़ दिया और बिना लक्ष्य के महीनों तक भटकता रहा। शनैः शनैः, उसका मन कुछ शान्त हुआ और वह गाँव लौट आया। उसने पाया कि वह अपना घर नहीं ढूँढ़ पा रहा है और इसलिए उसने ग्रामीणों की सहायता माँगी। उन्होंने उसे बताया, "तुम्हारे घर छोड़कर जाने के कुछ समय बाद, इस गाँव में एक भूकम्प आया। कुछ घर ध्वस्त हो गए। परन्तु, दुर्भाग्य से तुम्हारा घर तो पूर्णतः ध्वस्त हो गया और तुम्हारे पत्नी तथा बच्चा कुचलकर मर गए।" आघात लगने और दुःखी होने के स्थान पर, उस व्यक्ति ने अपनी आँखें ऊपर उठाईं और कहा, "हे प्रभो! दोष मेरा था। आपके राज्य में, देर है परन्तु अन्धेर नहीं है।" उसे विश्वास हो गया था कि ईश्वरीय दण्ड दिया जा चुका था।

धर्म-शास्त्र के दाता मनु ने कहा है कि जो अधर्म के मार्ग पर चलता है, वह कुछ समय के लिए फलता-फूलता है, समृद्धि प्राप्त करता है और यहाँ तक कि अपने विरोधियों को पराजित भी कर लेता है। तथापि, लम्बी समयावधि में, उसका समूल विनाश हो जाता है। भगवान के न्याय का चक्र धीरे परन्तु निश्चय ही चलता है। पापी को अपने पापों का परिशोध करने का समय दिया जाता है।

33. भगवान का दयापूर्ण न्याय

एक दिन, जब राम और सीता एक ऐसे स्थान पर निवास कर रहे थे जो चित्रकूट पर्वत के उत्तर-पूर्वी तल पर था और गङ्गा से दूर नहीं था, तब एक कौए ने सीता को चोंच मार दी। वह दुष्ट कौवा वास्तव में इन्द्र का पुत्र था। सीता ने उस पक्षी पर मिट्टी के ढेले को फेंककर उसे हटाने का प्रयास किया, परन्तु वह अक्खड़ होकर उनके पास ही रहा। कुछ समय बाद, जब राम उनकी गोद में सो रहे थे, तब उस दुष्ट पक्षी ने सीता के वक्ष पर तेज़ी से प्रहार किया। बार-बार, वह उनकी छाती पर फटा। उनके रक्त ने राम को गीला

कर दिया। सीता ने राम को उठाया। उनकी चोटिल छाती को देखकर, राम ने उनसे पूछा कि इसके लिए कौन उत्तरदायी है। तब उन्होंने स्वयं उस रक्त के धब्बे से युक्त नाखूनों वाले कौवे को सीता के समक्ष उनके निकट बैठा देखा। उस पक्षी ने शीघ्र ही स्वयं को भूमि में छिपा लिया।

क्रुद्ध होकर, राम ने दर्भ में ब्रह्मास्त्र का सन्धान किया और उसे छिपे हुए इन्द्र के पुत्र पर उछाल दिया। वह पक्षी जितनी तीव्र गति से उड़ सका विश्व भर उड़ता रहा, परन्तु उस अस्त्र से पीछा न छुड़ा पाया। इन्द्र, देवों और ऋषियों ने उसे सहायता देने से मना कर दिया। अतः, अन्ततः, उसने भगवान राम की ही शरण ली। यद्यपि वह कौवा मृत्युदण्ड का योग्य था, तथापि राम ने दयापूर्वक उसे शरण प्रदान किया। उन्होंने पक्षी से कहा, जो असहाय होकर उनके पास आया था, "ब्रह्मास्त्र निष्फल नहीं जा सकता है। अतः, तुम स्वयं मार्ग का प्रस्ताव दो।" कौवे ने उत्तर दिया, "आपका तीर मेरी दाहिनी आँख को नष्ट कर दे।" राम ने यह याचना स्वीकार कर ली और इस प्रकार उस अस्त्र ने उसकी दाहिनी आँख को अन्धा बना दिया, परन्तु उसके प्राण को छोड़ दिया।

राम ने इस प्रकार न्याय किया और फ़िर भी महान सहानुभूति का प्रदर्शन किया। यह उल्लेखनीय है कि दया ने राम को मृत्युदण्ड के स्थान पर, अन्यायपूर्ण किसी अत्यल्प दण्ड, जैसे कि एक पङ्ख की हानि, में कम करने हेतु प्रेरित नहीं किया। इन्द्र के पुत्र का नृशंस कृत्य इस उक्ति का उदाहरण है, "वह जो कि काम के वशीभूत होता है, उसे न तो अपने पर लज्जा आती है और न ही वह अपने व्यवहार के परिणामों से डरता है।" ऐसी है काम वासना की विनाशकारी प्रकृति।

एक न्यायाधीश था, जो अपनी भटकी हुई दया के कारण बहुत से कठोर अपराधियों को क्षमा कर देता था। उसका मानना था कि स्वयं अहिंसा का समर्थक होते हुए, उसे हत्यारों और बलात्कारियों को भी आजीवन कारावास जैसे लम्बी अवधि के कष्ट का, अथवा उनका जीवन छीन लिए जाने का, दण्ड नहीं देना चाहिए। एक अवसर पर एक व्यक्ति को उसके समक्ष लाया गया जो बार-बार सशस्त्र डकैती और हत्या का दोषी था।

अभियोजन पक्ष का वाद उस व्यक्ति के विरोध में अभेद्य था। तब भी, उस न्यायाधीश ने निर्णय दे दिया कि अभियोजन पक्ष इस वाद को उचित संशय से परे नहीं प्रस्तुत कर पाया और उस व्यक्ति को चेतावनी देकर मुक्त कर दिया। उस पश्चात्तापविहीन अपराधी ने, पुनः अपने कुत्सित कृत्यों को प्रारम्भ करने से पहले, अधिक समय व्यर्थ नहीं किया।

कुछ दिनों बाद, वह न्यायाधीश के घर में ही घुस गया। उसने बहुमूल्य सम्पत्ति वाली आलमारी को खोल दिया। वह अपनी लूट की सामग्री के साथ भागने ही वाला था कि उस ध्वनि से न्यायाधीश की पत्नी ने जाग कर, उसे देख लिया एवं शोरगुल लगाने का प्रयास किया। बिना एक पल की झिझक के, उस डकैत ने उसे गला घोंटकर मार दिया और भाग निकला। यह सब कुछ नहीं होता, अगर न्यायाधीश ने अपनी अत्यधिक पथभ्रष्ट दया के कारण, न्याय का त्याग नहीं किया होता।

किसी के द्वारा इस जन्म में अथवा पूर्व जन्मों में किया गया कोई भी शारीरिक, वाचिक अथवा मानसिक पाप, उसी के द्वारा अनुभव किए गए कष्ट के रूप में फल देने से नहीं चूकता। इस जन्म में किए गए शास्त्र-निषिद्ध कर्म के परिणाम, प्रायः भावी जन्म में ही मिलते हैं और इसके कारण, कुछ लोग भूल से कल्पना करते हैं कि ईश्वर पापियों को छोड़ देते हैं। एक भ्रष्टाचारी की वर्तमान समृद्धि पूर्वजन्मों में किए गए पुण्य से उत्पन्न है और एक अपव्ययी व्यक्ति की पूर्वजों से मिली सम्पत्ति के समान है। ईश्वर न्यायी होने के कारण, पापी को दण्ड देते हैं, परन्तु करुणामय होने के कारण, पश्चात्ताप कर रहे व्यक्ति के कष्ट को, न्याय का उपहास किए बिना, यथासम्भव कम कर देते हैं। उनकी कार्य पद्धति उपर्युक्त उदाहरण वाले न्यायाधीश के समान मूर्खतापूर्ण नहीं है। जिस तरह एक न्यायाधीश पश्चात्ताप करने वाले पहली बार दोषी को नरमी से देखते हैं, परन्तु पश्चात्तापहीन आभ्यासिक अपराधी को कड़ा दण्ड देते हैं, उसी तरह ईश्वर उसके प्रति उदार रहते हैं जो अनजाने में कई अवसरों पर या जाने-अनजाने में एक बार पाप करता है, परन्तु जानबूझकर और बारम्बार पाप करनेवालों को कठोर दण्ड देते हैं।

कहा गया है — “पिछले जन्म में किया गया पाप उस कर्ता को इस जन्म में रोग के रूप में पीड़ा देते हैं। औषधियों, दान, पवित्र पाठ, हवन और ईश्वर की पूजा से यह निष्प्रभावी हो जाता है।” इसके अतिरिक्त, “अनजाने में या जानते हुए एक बार किए गए पाप के लिए प्रायश्चित्त है। परन्तु, बार-बार और ध्यान से किए कुकर्म के लिए क्या उपाय है?” जबकि व्यक्ति देश के शासन विधि से बच भी निकल सकता है, परन्तु ईश्वर के कर्म-नियमों से वह कभी भी नहीं बच सकता। न्याय और दया भगवान में परम पूर्णता पाते हैं।

34. भगवान के कारण सफलता और महिमा

अपनी सर्वोच्च शक्ति और कृपा से, भगवान ने देवों को दैवीय नियमों का उल्लङ्घन करने वाले असुरों पर युद्ध में विजय और उसके लाभ प्रदान किए। हालाँकि, अपनी सफलता के कारण देवता अभिमानी हो गए। उन्होंने सोचा, “निश्चय ही यह विजय हमारी है! सचमुच, यह महिमा हमारी ही है!” उनके अभिमान को दूर करके उनका भला करने का निर्णय करते हुए, ईश्वर उनके समक्ष एक यक्ष — अर्थात् पूज्य उपदेवता — के रूप में प्रकट हुए।

देवगण यह पहचानने में असमर्थ थे कि वह पुरुष कौन हो सकता है। इसलिए उन्होंने अग्नि से कहा, “आप शक्तिशाली हैं। जाइए और इस व्यक्ति के बारे में पूरी तरह से पता लगाइए।” अग्निदेव सहमत हो गया और यक्ष के पास पहुँचा। हालाँकि, उसकी उपस्थिति में, वह इतना साहस नहीं जुटा पाया कि कुछ बोल सका और इसलिए चुप रह गया। यक्ष ने उससे पूछा, “आप कौन हैं?” अग्नि ने कहा, “मैं अग्नि हूँ, अग्रदूत हूँ, और मुझे ‘जातवेदा’ नाम से भी जाना जाता है, जो सारी सृष्टि को जानने वाला हूँ।” इस प्रकार उसने बढ़-बढ़कर कहा कि वह अपने दो नामों से सुप्रसिद्ध हैं।

यक्ष ने पूछा, “इतने प्रसिद्ध नामों और गुणों वाले आप में कौन सी क्षमता है?” अग्नि ने कहा, “मैं पृथ्वी पर स्थित हर वस्तु को जला सकता हूँ।” यक्ष

ने उसके सामने एक तिनका रखा और कहा, “इस तुच्छ तिनका को जला दीजिए जिसे मैंने यहाँ रखा है। यदि आप इसे नहीं जला सकते, तो सर्वत्र वस्तुओं को हड़पने का अपना घमण्ड छोड़ दें।” अग्निदेव बड़े उत्साह से उत्पन्न गति से उस भूसे के पास गया। चाहे जितना भी उसने प्रयास कर लिया, वह उस तृण के टुकड़े को नहीं जला सका। अपने दावे को सही ठहरा पाने में असमर्थ होकर लज्जित होते हुए, वह चुपचाप देवताओं के पास लौट आया। वह उनसे बोला, “मैं यह जानने में असफल रहा कि यह यक्ष क्या है।”

तब देव वायु की ओर मुड़े और उससे बोले, “जाओ और इस यक्ष के बारे में पता करो।” वायुदेव सहमत हुआ और यक्ष के पास आ गया। यक्ष ने उनसे पूछा, “आप कौन हैं?” वायु बोला, “मैं हूँ वायु, गन्ध का वाहक, और मुझे अन्तरिक्ष में यात्रा करने वाले मातरिश्वा नाम से भी जाना जाता है।” यक्ष ने उनसे पूछा, “ये प्रसिद्ध नामों और इतने गुणों वाले आप में ऐसी कौन सी शक्ति है?” वायु ने कहा, “मैं पृथ्वी पर जो कुछ भी है, उसे उड़ा सकता हूँ।” यक्ष ने उसके समक्ष एक तिनका रखा और कहा, “इसे उठाइए।” वायु बड़ी उमंग और बल के साथ भूसे के पास आया। लेकिन, वह उस तिनका को हिलाने में असमर्थ रहा। अपने आप से लज्जित होकर, वह देवताओं के पास लौट आया और स्वीकार किया कि वह यह पता लगाने में सफल नहीं हो सका कि वह यक्ष वास्तव में कौन था।

अन्ततः, देवताओं ने अपने राजा इन्द्र की ओर देखा और कहा, “हे मघवन्, आप इस यक्ष के बारे में सारी जानकारी प्राप्त कीजिए।” इन्द्र बोले, “ठीक है,” और उसके पास पहुँचे। परन्तु, यक्ष उनकी दृष्टि से ओझल हो गया। परमेश्वर ने उसे साक्षात्कार तक भी नहीं दिया ताकि उसके अपने पद के मारे गर्व को मिटा सके। पूरी तरह से विनम्र, इन्द्र वहीं खड़े रहे जहाँ थे। अन्य देवताओं से विलक्षण, वे लौटे नहीं। उन्होंने सोचा, “यह यक्ष क्या है?” यक्ष पर उनके ध्यान से प्रसन्न होकर, जिस स्थान पर यक्ष था, वहीं पर हिमालय की पुत्री परम-आकर्षक उमा जी प्रकट हुईं। उन्हें भगवान शिव जी से सदा युक्त जानकर, इन्द्र ने उनसे यक्ष के बारे में पूछा।

उमा जी ने उनसे कहा, “वह ब्रह्म था।” उन्होंने आगे समझाया, “असुर केवल भगवान द्वारा जीते गए, और आप देव केवल उनके निमित्त थे। जीत वास्तव में उनकी थी। तथापि, आप लोग मिथ्याभिमान से मानने लगे कि विजय और महिमा आपकी थीं।” चूँकि वार्तालाप और प्रत्यक्षीकरण के माध्यम से यक्ष के पास जाने वाले देवताओं में से अग्नि, वायु और इन्द्र सर्वप्रथम थे, इसलिए वे अन्य देवताओं से श्रेष्ठ हो गए। उनमें से, अग्नि और वायु की अपेक्षा इन्द्र उत्कृष्ट थे क्योंकि वे उमा के शब्दों से यह जानकारी प्राप्त करने वाले सर्वप्रथम थे कि वे यक्ष भगवान थे।

जिस तरह केनोपनिषद् की इस कथा से देखा जा सकता है, जब देवताओं की भी विजय और महिमा केवल ईश्वर के कारण हैं, तो मनुष्य की सफलता और महिमा के बारे में क्या कहा जाना चाहिए?

35. हृदयनिवासी

पाण्डवों में ज्येष्ठ युधिष्ठिर, कौरव दुर्योधन के साथ पासे का खेल खेलने के लिए सहमत हुए। जैसे-जैसे जुआ बढ़ता गया, वे दाँव लगाते गए और उन्होंने न केवल अपने राज्य, अपितु अपने भाइयों को भी खो दिया। अन्ततः उन्होंने द्रौपदी को दाँव पर लगा दिया। फ़िर से उन्हें हार का सामना करना पड़ा। दुर्योधन के दुष्ट आदेश से द्रौपदी को सभा में लाया गया। दुश्शासन उसे अपमानित करने के लिए उसके कपड़े उतारने लगा। द्रौपदी पाण्डवों की ओर मुड़ी और सहायता के लिए चिल्लाई। वे उसकी ओर से हस्तक्षेप करने के लिए तरस रहे थे, परन्तु ऐसा करने की स्थिति में नहीं थे।

यह समझकर कि केवल भगवान ही उसे बचा सकते हैं, द्रौपदी ने प्रार्थना की, “हे कृष्ण, द्वारका-वासिन् (द्वारका के निवासी), आप कहाँ हैं? आइए और मेरे मान की रक्षा कीजिए!” उसकी सहायता के लिए आने में कृष्ण ने कुछ क्षण

लिए। द्रौपदी इस विपत्ति से सफलतापूर्वक निकल आई। बाद में, उसने श्रीकृष्ण से पूछा कि उनका आगमन तत्काल क्यों नहीं हुआ। भगवान ने समझाया, “तुमने मुझे द्वारका के निवासी के रूप में सम्बोधित किया। यही कारण है कि मुझे तुम्हारे समक्ष उपस्थित होने में कुछ समय लगा; मुझे द्वारका से आना था। यदि तुमने मुझे हृदय-निवासिन् (हृदय के निवासी) कहकर बुलाया होता, तो निश्चय ही मैं तुम्हारी सहायता के लिए तत्क्षण आ जाता।”

व्यासजी-प्रणीत महाभारत की अपेक्षा, इस कहानी में कुछ अधिक पहलू है जो यह दर्शाता है कि भगवान निकटतम हैं और इस तथ्य को भूलना हमारे लिए हानिकारक है। लोग कभी-कभी भगवान के बारे में सोचते हैं कि वे वैकुण्ठ या कैलास जैसे किसी दूर के क्षेत्र में निवास करते हैं। वस्तुतः प्राणियों के अन्तर्यामी — भीतर से प्रेरक — ईश्वर ही हैं।

बृहदारण्यक-उपनिषद् सिखवाती है, “जो बुद्धि में स्थित है, जो बुद्धि के भीतर है, जिसे बुद्धि नहीं जानती, जिसका शरीर बुद्धि है और जो भीतर से बुद्धि को नियन्त्रित करता है — वह अन्तर्यामी है, यानी आन्तरिक नियामक है; वह तुम्हारी अविनाशी आत्मा है।”

36. जीव है प्रतिबिम्ब और ईश्वर हैं मूलरूप

एक मूर्ख ने दर्पण को निहारा और अपने मुख का स्पष्ट प्रतिबिम्ब देखा। उसे वह भद्दा लगा। उसने सम्भावित कारण पर विचार किया। उसने देखा कि प्रतिबिम्ब का माथा रिक्त है, उस पर कोई तिलक नहीं है। उसके सौन्दर्यबोध ने उसे प्रतिबिम्ब के माथे पर सिन्दूर लगाने के लिए प्रेरित किया। परन्तु, ऐसा करते समय, उसने अपना मुख थोड़ा हिलाया। परिणामस्वरूप, सिन्दूर का स्थान तिलक की उचित सिद्धाई से हट गया। उसने उस सिन्दूर को प्रतिबिम्ब के माथे पर सिन्दूर लगाने का प्रयास किया, परन्तु फ़िर से असफल रहा।

ऐसी कई असफलताओं के बाद, उस मूर्ख व्यक्ति को बोध हुआ कि प्रतिबिम्ब को सीधे सुशोभित करना असम्भव है। फ़िर उसने अपने माथे पर तिलक लगाया और उसे प्रसन्नतापूर्वक आश्चर्य हुआ कि वह तुरन्त प्रतिबिम्ब में सही स्थान पर दिखने लगा।

प्रतिबिम्ब को ठीक करने के लिए, मूल मुख को सजाना आवश्यक है। उसी प्रकार, यदि हम आनन्द चाहते हैं, तो हमें भगवान की उपासना करनी होगी। इसका कारण यह है कि शास्त्रों के अनुसार, परमात्मा और व्यष्टि जीवात्मा के बीच का सम्बन्ध, एक मुख और उसके प्रतिबिम्ब के बीच के सम्बन्ध जैसा है। मन जीव का दास है। दास का कर्तव्य है अपने स्वामी को प्रसन्न करना। मन अपने स्वामी जीव को कैसे प्रसन्न करे? यदि वह सीधे अपने स्वामी के हित के लिए प्रयास करता है तो उसके प्रयास व्यर्थ होंगे; वे सीधे अपने प्रतिबिम्ब को सजाने वाले मूर्ख के प्रयास के समान होंगे। परन्तु, अगर मन स्वयं को भगवान की ओर निर्देशित करता है, तो उसके स्वामी को आनन्द मिलता है। भगवत्पाद जी ने इस तथ्य को भगवान नरसिंह को सम्बोधित एक श्लोक में बहुत सुन्दर ढंग से स्पष्ट किया है।

37. भक्तिमार्ग पर कोई भी चल सकता है

भक्ति मार्ग पर चलने के लिए क्या कोई विशेष योग्यता अनिवार्य है? यह एक प्रायः उठाया जाने वाला प्रश्न है। एक लोकप्रिय कविता आलङ्कारिक प्रश्नों के रूप में उत्तर प्रदान करती है।

कविता का आरम्भ इस आलङ्कारिक प्रश्न से होता है — “धर्मव्याध की वृत्ति क्या थी?” धर्मव्याध एक कसाई था। उसने बिना किसी लगाव के अपने धर्म का पालन किया और कर्त्तव्यनिष्ठा से अपने माता-पिता की सेवा की। इसके

परिणामस्वरूप, वह एक महान धर्म-अनुगामी माना गया। महाभारत में उसके बारे में एक कहानी है।

अपनी तपस्या से एक ब्रह्मचारी ने कुछ शक्ति प्राप्त कर ली थी। एक निर्दोष पक्षी ने अपनी विष्ठा को उसके सिर पर गिरा दिया। उस ब्रह्मचारी ने क्रोधित होकर ऊपर देखा और वह पक्षी जलकर भस्म हो गया। अपनी अलौकिक शक्ति के सहज आविर्भाव के कारण दम्भ से भरा हुआ वह भिक्षा के लिए आगे बढ़ा। वह एक घर गया और उसने भिक्षा माँगी। घर की गृहिणी ने उसे कुछ समय रुकने के लिए कहा क्योंकि वह अपने पति की सेवा कर रही थी। इससे वह ब्रह्मचारी क्रोधित हो गया। परन्तु, महिला ने शान्ति से उत्तर दिया, "मैं पक्षी नहीं हूँ जो तुम्हारे द्वारा जला दी जाऊँ।"

ब्रह्मचारी को आश्चर्य हुआ कि महिला को घटना के बारे में पता था। विनम्र होकर उसने उस महिला से मार्गदर्शन की याचना की। महिला ने उसे धर्मव्याध के पास जाने का निर्देश दिया, जिसने उसे अपने माता-पिता की सेवा के बारे में विस्तृत निर्देश दिए। वह शिक्षा ब्रह्मचारी के लिए विशेष रूप से प्रासङ्गिक थी क्योंकि उसने अपने माता-पिता के प्रति अपने दायित्व को पूरी तरह से अनदेखा किया था। धर्मव्याध को ईश्वर का बहुत आशीर्वाद प्राप्त हुआ था यद्यपि उनकी वृत्ति कई लोगों द्वारा अवमानित मानी जाती थी। इस प्रकार, किसी की वृत्ति भक्ति के मार्ग पर चलने के लिए कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाती है।

अगला सोच-विचार उम्र का है। क्या किसी को भक्त होने के लिए निर्धारित आयु का होना चाहिए? विचाराधीन श्लोक पूछता है, "ध्रुव की उम्र क्या थी?" ध्रुव के पिता उत्तानपाद की दो पत्नियाँ थीं। ध्रुव की सौतेली माँ सुरुचि उसे प्यार नहीं करती थी। एक बार, जब ध्रुव ने अपने पिता की गोद में बैठने की इच्छा की, तब वे निराश हो गए क्योंकि सुरुचि चाहती थी कि उत्तानपाद अपने बच्चे को प्यार से पुचकारे। रोते-रोते ध्रुव अपनी माँ सुनीति के पास गए। दुर्भाग्य से सुनीति उनकी सहायता करने की स्थिति में नहीं थी। उसने उन्हें प्रभु से प्रार्थना करने को कहा।

अपने हृदय में दृढ़ सङ्कल्प के साथ, ध्रुव वन में चले गए। ऋषि नारद ने बच्चे को देखा और उनसे बहुत प्रसन्न होकर, उन्हें भगवान नारायण की उपासना में दीक्षित किया। ध्रुव ध्यान में लीन बैठे रहे। ईश्वर उनके प्रेम से इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने उनके सामने प्रकट होकर घोषणा की कि वे अपने पिता के प्रेम को अर्जित करेंगे और बाद में एक महान राजा बनेंगे। भगवान ने और भी कहा कि उनकी मृत्यु के बाद, वे सतत आकाश में ध्रुव तारे के रूप में रहेंगे। चूँकि ध्रुव को जब भगवान के दर्शन हुए, तब वे एक छोटे बालक थे, यह स्पष्ट है कि भक्ति के मार्ग पर चलने के लिए कोई आयु प्रतिबन्ध नहीं है।

क्या महान विद्वत्ता की आवश्यकता है? कविता पूछती है, "गजेन्द्र की सीख क्या थी?" गजेन्द्र एक हाथी थे जो अपनी पत्नियों के साथ रहते थे। वे भगवान के बहुत बड़े भक्त थे। एक दिन एक मगरमच्छ ने अपने जबड़े से उनका पैर पकड़ लिया। दोनों के बीच प्रचण्ड सङ्घर्ष हुआ। मगरमच्छ ने धीरे-धीरे प्रभुत्व प्राप्त कर लिया। जीवन के लिए निराश होकर, गजेन्द्र ने उसे बचाने के लिए भगवान को पुकारा। भगवान विष्णु वहाँ पहुँचे, मगरमच्छ को मार डाला और गजेन्द्र को मुक्त कर दिया। इस प्रकार एक अशिक्षित हाथी गजेन्द्र भगवान की कृपा प्राप्त करने में सक्षम रहे। अतः विद्या का अभाव भक्ति में बाधक नहीं है।

क्या किसी को उच्च जन्म का होना चाहिए? क्या यह आवश्यक है कि भगवान की कृपा प्राप्त करने के लिए केवल ब्राह्मण ही होना चाहिए? श्लोक पूछता है, "विदुर की जाति क्या थी?" विदुर का जन्म एक दासी के यहाँ हुआ था। वैसे तो, वे एक उच्च जाति के व्यक्ति नहीं थे। जब भगवान कृष्ण पाण्डवों के दूत के रूप में हस्तिनापुर आए, तब उन्होंने कौरव राजकुमारों द्वारा उन्हें दिए गए राजमहलों में नहीं, प्रत्युत विदुर के घर में रहने का विकल्प चुना। इससे पता चलता है कि भगवान नीच जाति को भक्ति के मार्ग पर चलने और सफल होने के लिए कोई बाधा नहीं मानते हैं।

हो सकता है कि वृत्ति, उम्र, शिक्षा और जाति जैसे कारक मायने नहीं होते। परन्तु क्या ऐसा हो सकता है कि महान धैर्य और मर्दानगी आवश्यक हैं?

श्लोक पूछता है, “उग्रसेन का क्या पौरुष था?” उग्रसेन कंस के पिता थे। राक्षस कंस ने अपने पिता को बंदी बना लिया था और सत्ता हथिया ली थी। कंस का भतीजा कोई और नहीं, किन्तु भगवान कृष्ण थे। जब उन्हें मथुरा लाया गया, तो उन्होंने एक द्वन्द्वयुद्ध में कंस को मार डाला और उग्रसेन को सिंहासन पर बैठाया। इस प्रकार, जिस व्यक्ति में वीरता की कमी थी, उस पर भी प्रभु की कृपा थी।

क्या शारीरिक सौन्दर्य कुछ ऐसा है जो भगवान का ध्यान आकर्षित करता है? “क्या कुब्जा एक आकर्षक युवती थी?” पद्य में निहित प्रति-प्रश्न है। जब भगवान कृष्ण मथुरा पहुँचे, तो एक कुबड़ी महिला ने, जो निश्चित रूप से कोई सुन्दरी नहीं थी, उन्हें इत्र प्रस्तुत किया। प्रभु ने सन्तुष्ट होकर उसे आशीर्वाद दिया। उसकी विकृति सुन्दरता में बदल गई। इस प्रकार, एक रमणीय रूप की अनुपस्थिति ईश्वर की कृपा की प्राप्ति में बाधा नहीं डालती।

लोग सामान्यतः सम्पन्नता से प्रसन्न होते हैं। क्या प्रभु भी ऐसे ही हैं? पद्य में प्रति-प्रश्न है, “क्या सुदामा के पास बहुत धन था?” सुदामा भगवान कृष्ण के बचपन के मित्र थे। उन्होंने एक साथ अध्ययन किया और बाद में अलग हो गए — कृष्ण एक राजकुमार बन गए और सुदामा एक समर्पित ब्राह्मण गृहस्थ बन गए। सुदामा को अपनी दरिद्रता के कारण अत्यधिक कष्ट उठाना पड़ा। हालाँकि, उन्होंने उसे बड़े धैर्य के साथ सहन किया। दरिद्रता की समस्याओं का सामना करने में असमर्थ, उनकी पत्नी ने उनसे अपने मित्र भगवान कृष्ण के पास जाने का अनुरोध किया। अपने प्रिय मित्र से मिलने के विचार से बहुत प्रसन्न होते हुए, उन्होंने उसे स्वीकार कर लिया।

उनकी पत्नी ने उन्हें कुछ चूड़ा दिए। सुदामा गए और भगवान कृष्ण से मिले। प्रभु ने उनका उचित सम्मान के साथ स्वागत किया। सुदामा को अपने लाए हुए मुरमुरे को समर्पित करने में लज्जा का अनुभव हुआ। परन्तु भगवान कृष्ण ने तुरन्त उसे देख लिया और उसे माँग बैठे। प्रभु उसे खाने लगे। कुछ समय बाद, उनकी पत्नी रुक्मिणी ने उन्हें रोक लिया। जब सुदामा वापस लौटे, तो उन्हें अपने पुराने, जीर्ण-शीर्ण घर के स्थान पर एक भव्य भवन

मिला। उन्होंने देखा कि उनकी पत्नी और बच्चे बहुमूल्य वस्त्र पहने हुए थे। उन्हें लगा कि यह प्रभु ही थे जिन्होंने उन्हें समृद्ध बनाया था। यह स्पष्ट है कि प्रभु समृद्धि जैसे कारकों की उपेक्षा करते हैं।

भगवान किसको महत्त्व देते हैं? वे केवल भक्ति को मानते हैं। जहाँ भक्ति है, वे सन्तुष्ट हो जाते हैं।। तात्पर्य यह है कि भक्ति मार्ग पर चलने के लिए किसी विशेष योग्यता की आवश्यकता नहीं है।

38. ईश्वर किसी पर भी कृपा करते हैं जो उनके बारे में सोचता है

वृन्दावन में भगवान कृष्ण द्वारा बजाई गई बाँसुरी से निकलने वाले दिव्य सङ्गीत ने गोपियों को मन्त्रमुग्ध कर दिया। उनका मन भगवान के लिए प्रेम से भर गया व उन्होंने एक-दूसरे से उनकी लीला के बारे में बात की। फ़िर, उन्होंने प्रभु शिव जी की पत्नी कात्यायनी को, उनकी कृपा से श्री कृष्ण को अपने पति के रूप में प्राप्त करने हेतु, प्रसन्न करने का निर्णय लिया।

मार्गशीर्ष के ठंडे महीने में, प्रतिदिन ब्राह्म मुहूर्त में उठकर यमुना में स्नान किया। फ़िर, उन्होंने देवी कात्यायनी की एक बालू की प्रतिमा बनाई और सुगन्ध, फूल, धूप, दीप तथा खाद्य पदार्थों के साथ उनकी पूजा की। उनमें से प्रत्येक ने बार-बार देवी से प्रार्थना की, “कृपया मुझे नन्द के पुत्र को मेरे पति के रूप में प्राप्त करने का आनन्द प्रदान करें। मैं आपको प्रणाम करती हूँ।” उन्होंने यज्ञों में दी गई आहुतियों के अवशेषों को ग्रहण किया।

उनका उत्साह कम हुए बिना एक महीना बीत गया। प्रभु ने निश्चय किया कि उन्हें आशीर्वाद देने का समय आ गया है। गोपियाँ नदी में निर्वस्त्र होकर नहाती थीं। यह उनके धार्मिक अनुष्ठानों में एक कमी थी और देवताओं के

प्रति अनादर भी। कृष्ण, जिन्हें अभी अपनी किशोरावस्था में प्रवेश करना था, अपने बालक मित्रों के साथ उस स्थान पर आ गए जहाँ वे स्नान कर रही थीं। उन्होंने किनारे पर पड़े उनके वस्त्रों को उठा लिया और इस तरह, शीघ्र ही उन्हें अपने दोष सुधारने में सक्षम बनाया।

उन्होंने उनसे कहा, "आपकी आराधना करने के आपके सङ्कल्प के बारे में मुझे पता है। मुझे यह स्वीकार है। यह पूरा होने योग्य है। अपने मन को मेरे लिए समर्पित किए हुए लोगों की मेरे प्रति कामना, काम-सुख के लिए नहीं हैं; भुना या उबला हुआ अनाज अङ्कुरित होने के लिए नहीं होते। व्रज को लौटें। सफलता आपकी है। जिस उद्देश्य के लिए आपने कात्यायनी की पूजा का यह व्रत रखा है, उसके अनुसार आप आने वाले रातों में मेरे साथ क्रीडा करेंगी।"

महाभारत युद्ध के वर्षों बाद, जब यादवों का विनाश निकट था, भगवान ने उद्धव को विस्तृत उपदेश दिया। अपने उपदेश के समय, भगवान ने कहा, जैसा भागवत में कहा गया है कि गोपियों में बुद्धितीक्ष्णता की कमी थी, वे वेदों के जानकार नहीं थीं, उन्होंने महान सन्तों की सेवा नहीं की थी और उन्होंने तपस्या नहीं की थी। तथापि, उन्होंने केवल प्रेम के माध्यम से ही प्रभु को प्राप्त किया। प्रभु ने आगे कहा, "मेरे सच्चे स्वरूप से अनभिज्ञ, गोपियों ने मुझे अपने रमणीय प्रियतम के रूप में चाहा। फ़िर भी, मेरे साथ अपने जुड़ाव के कारण, उन शत-सहस्रों ने मुझे, यानी परब्रह्म को, प्राप्त किया।"

कंस को आकाशवाणी द्वारा चेतावनी दी गई थी कि देवकी का आठवाँ पुत्र उसे मार डालेगा। इसलिए, वह देवकी के प्रत्येक बच्चे को जन्म लेते ही मार डालने के लिए आगे बढ़ा। कृष्ण के जन्म के बाद, ईश्वर के निर्देश के अनुसार, वसुदेव अपने पुत्र कृष्ण को गोकुल में ले गए और उन्हें यशोदा के पास छोड़ दिया। फ़िर वे अपने साथ उस छोटी बच्ची को ले आए जिसे यशोदा ने जन्म दिया था। जब कंस ने उस बच्ची को — जो कोई और नहीं, किन्तु योग-माया थी — मारने का प्रयास किया, तब वह आकाश में उड़ गई और अष्टभुज-रूप लेकर उसने घोषित किया, "अरे मूर्ख, तुम्हारे जीवन को समाप्त कर देने वाले तुम्हारे शत्रु ने जन्म ले लिया है और वह कहीं और है।"

इसके बाद, कंस ने बार-बार कृष्ण को मारने का प्रयास किया, परन्तु हर बार असफल रहा। उसे कृष्ण से इतना अधिक भय था कि वह निरन्तर दिन-रात भगवान के बारे में सोचता रहा, चाहे वह पी रहा हो, खा रहा हो, बोल रहा हो, चल रहा हो या सपने देख रहा हो। अन्त में, जब कृष्ण ने उसका संहार किया, तो वह प्रभु में विलीन हो गया। जबकि एक ओर गोपियों ने भगवान को प्राप्त किया प्रेम के द्वारा, वहीं दूसरी ओर कंस ने प्राप्त किया भय के कारण।

शिशुपाल रुक्मिणी से विवाह करना चाहता था, परन्तु कृष्ण रुक्मिणी की इच्छा के अनुसार, उन्हें अपने साथ ले गए। कृष्ण के साथ शिशुपाल और उसके सहयोगियों ने सङ्घर्ष किया परन्तु वे सब हार गए। इसके बाद, शिशुपाल ने प्रभु का सम्पूर्ण रूप से तिरस्कार किया। भगवान कृष्ण के प्रति उसकी घृणा इतनी तीव्र बनी थी कि वह सदैव प्रभु के बारे में सोचने से नहीं बच सकता था। अन्त में, जब कृष्ण ने युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के अवसर पर उसका वध कर दिया, तो उसका प्रभु में विलय हो गया। इस प्रकार, शिशुपाल ने ईश्वर को उनके प्रति घृणा के नाते प्राप्त किया।

कृष्ण अर्जुन के सबसे प्रिय मित्र और शुभचिन्तक थे। जब कृष्ण ने महाभारत युद्ध से ठीक पहले अपना विश्वरूप प्रकट किया, तो वे विस्मय और भय से भर गए। उन्होंने प्रार्थना की, “आपके इस महानता को नहीं जानते हुए और आपको मात्र मेरे मित्र मानते हुए, मैंने आपको प्यार या अनजाने में, ‘हे कृष्ण,’ ‘हे यादव,’ ‘हे मित्र,’ कहकर अविनीत रूप से सम्बोधित किया है। चलने, आराम करने, बैठने और खाने के समय, मैंने निजी और सार्वजनिक रूप से, आपको उपहास में नीचा दिखाया है। हे अनन्त, मैं आपसे यह सब क्षमा करने की विनती करता हूँ।” अर्जुन और दूसरे पाण्डव मित्रता के माध्यम से भगवान के पास पहुँचे।

वृष्णियों ने अपने कुल के सदस्य के रूप में कृष्ण से सम्पर्क किया। कृष्ण भगवान ने उनके साथ रहकर और उनकी रक्षा करके उन्हें अनुगृहीत किया। जहाँ तक योगियों का प्रश्न है, वे आज तक शुद्ध भक्ति के माध्यम से भगवान

से जुड़े हुए हैं। एक श्लोक में कहा गया है कि गोपियों ने मनोकामना के माध्यम से भगवान को प्राप्त किया, भय से कंस ने, घृणा के नाते शिशुपाल ने, मित्रता से पाण्डवों ने, पारिवारिक सम्बद्धता द्वारा वृष्णियों ने और भक्ति के माध्यम से योगियों ने भगवान को प्राप्त किया।

तात्पर्य यही है कि प्रभु पर भले ही कोई कैसे भी अपने मन केन्द्रित करे, तो वह ईश्वर की कृपा का पात्र बन जाता है। फ़िर भी, भगवान के प्रति कंस और शिशुपाल के घृणित भावना, लोगों द्वारा कभी नहीं अपनाया जाना चाहिए। बदले में, भक्ति के माध्यम से भगवान के पास जाना चाहिए। उनसे भला कोई भी कैसे आतङ्कित अनुभव कर सकता है या उनसे घृणा कर सकता है, क्योंकि वे दया के सागर हैं और अत्यन्त प्यारे हैं।

अहङ्कार एक भक्त और भगवान के बीच खड़ा रहता है। अपने प्रति गोपियों के प्रेम और उनकी अहङ्कारहीनता से जीत लिए गए कृष्ण ने, उनके साथ रासक्रीड़ा की। हालाँकि, जिस क्षण उन्हें अपनी सुन्दरता पर गर्व का अनुभव हुआ और उन्होंने स्वयं को अन्य महिलाओं से श्रेष्ठ माना, क्योंकि कृष्ण उन पर ध्यान दे रहे थे, तब कृष्ण उनके बीच से अदृश्य हो गए। प्रभु अपने साथ एक ही गोपी को ले गए क्योंकि उसने घमण्ड को स्थान नहीं दिया था। कृष्ण द्वारा अपने साथ अकेले में कुछ समय बिताने पर, उसने स्वयं को विशिष्ट समझा। तुरन्त ही प्रभु ने उसे छोड़ दिया। केवल तब जब गोपियों को अपनी मूर्खता का बोध हुआ और वे भगवान के लिए तरसने लगीं कि वे उनके साथ आ गए।

इस प्रकार, एक व्यक्ति के लिए यही सही उपाय है कि वह निरन्तर ईश्वर के बारे में सोचता रहे, अहङ्कार को कोई स्थान न दे और स्वयं को उनके सामने पूरी तरह से आत्मसमर्पण कर दे।

39. भगवान हमें स्वीकार करेंगे

यदि हम ईश्वर की ओर मुड़ें, तो क्या वे हमें स्वीकार करेंगे, चूँकि हम सचमुच यह निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि हमारा जीवन किसी पशु के जीवन से बहुत विलक्षण है? हम अपनी अधिकांश शक्ति और समय अपनी रोजी रोटी कमाने में, और बचे हुए समय का अधिकांश सोने में, बिताते हैं। तब हम पशुओं से बहुत अलग होने का दावा कैसे कर सकते हैं, जब तक कि हम दृढ़ता से ईश्वर के प्रति समर्पित न हों और आध्यात्मिक जीवन व्यतीत न करें?

अपने *शिव-भुजङ्ग-स्तोत्र* में भगवत्पाद जी यह प्रश्न भगवान शिव जी से पूछते हैं और फ़िर भगवान से कहते हैं कि भले ही वह किसी पशु के समान हों, उन्हें स्वीकार करें। क्यों? क्या नन्दी शिव जी के वाहन नहीं हैं? निश्चय ही, यदि शिव जी एक साँड़ नन्दी को स्वीकार कर सकते हैं, तो उनके द्वारा पशुतुल्य भक्त को स्वीकार करने में कोई समस्या नहीं होनी चाहिए। वास्तव में, शिव जी भक्त के पशु होने का परिवाद कैसे कर सकते हैं, जबकि उन्होंने स्वयं एक पशु को ही अपना बना लिया है?

पशुतुल्य होना एक बात है और पापी होना दूसरी बात है। क्या होगा अगर भक्त दोषों से भरा हो? तो क्या भगवान उसे स्वीकार करेंगे? भगवत्पाद जी विचाराधीन श्लोक में शिव जी से कहते हैं कि इस स्थिति में भी, शिव जी को अपना प्रेम दिखाना चाहिए। क्यों? क्या शिव जी ने चन्द्र को अपने मस्तक पर नहीं रखा है, भले ही चन्द्र ने जघन्य पाप किया हो? उसने अपने गुरु बृहस्पति की पत्नी तारा को गर्भवती बना दिया था। निश्चित रूप से, यदि शिव जी ऐसे दोष वाले व्यक्ति को अपने सिर पर रख सकते हैं, तो उनके पास केवल भक्त के दोषों के कारण उसको अस्वीकार करने का कोई कारण नहीं होना चाहिए।

चाहे एक भक्त पशुतुल्य हो तथा पापी हो, तब भी भगवान द्वारा स्वीकार किए जाने योग्य हो। परन्तु, क्या भक्त की प्रार्थना कपट के गन्ध से पूरी तरह से मुक्त नहीं होनी चाहिए? क्या भक्त को कम से कम मिथ्याचार से मुक्त

नहीं होना चाहिए? यहाँ भी भगवत्पाद जी असहमत हैं, क्योंकि वे शिव जी से कहते हैं, “यदि आप ‘दो जीभ वालों’ के विरोधी हैं, तो यह कैसे हो सकता है कि आप विभाजित जीभ वाले साँप को गले के आभूषण के रूप में रखते हैं? यदि आप साँप को अपना सकते हैं, तो मुझे क्यों नहीं?”

अन्त में, भगवत्पाद जी शिव जी को स्मरण दिलाते हैं कि किसी भी व्यक्ति की स्थिति, चाहे जैसी भी हो, वह अनिवार्य रूप से प्रभु द्वारा स्वीकार किए जाने पर धन्य हो जाता है। प्रार्थना का निहितार्थ यह है कि भगवान की करुणा असीम है और यदि हम स्वयं को उनके लिए अर्पित करते हैं, तो हमारे सभी दोषों और कमियों के होते हुए भी, ईश्वर हमें स्वीकार करेंगे।

40. भगवान अपने सच्चे भक्त को कभी भी नहीं छोड़ते

दैत्यराज हिरण्यकशिपु का पुत्र प्रह्लाद भगवान के प्रति अत्यन्त समर्पित था। उसके पिता ने उस पर आक्रोश जताया और उसे गम्भीर परिणाम भुगतने की धमकी दी। विना भयभीत हुए, उस लड़के ने भगवान पर ही अपना विश्वास बनाए रखा। हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद को मार देने के कई प्रयास किए, परन्तु भगवान के हस्तक्षेप के नाते, सभी प्रयास व्यर्थ हुए। क्रोध से दहाड़ते हुए, हिरण्यकशिपु ने अपने बेटे से प्रश्न किया, “तुम कहते रहते हो कि तुम्हारा भगवान परम शक्ति हैं। कहाँ है वह ईश्वर, जिसके बारे में तुम इतनी डींग मारते हो?” “वे सर्वत्र हैं,” बेटे ने उत्तर दिया। “क्या वह इस स्तम्भ में है?” राजा ने पास का एक खंभा दिखाते हुए पूछा। “अवश्य, पिताजी,” प्रह्लाद ने उत्तर दिया। “ठीक है, तो उसे बुलाओ। मझे देखना है कि क्या वह प्रकट होता है और तुम्हारा सम्मान की रक्षा करता है,” हिरण्यकशिपु ने चुनौती दी। प्रह्लाद ने मन ही मन प्रभु से प्रार्थना की। अचानक खंभा दो भागों में टूट गया और भगवान नरसिंह आविर्भूत हो गए। प्रभु ने घमण्डी दैत्य का वध किया और अपने बालक भक्त को आशीर्वाद दिया।

भगवान अपने भक्तों के कल्याण के बारे में बहुत ध्यान रखते हैं। उनसे सचमुच प्रेम करने वालों की सहायता करने के लिए, किसी भी सीमा तक चले जाते हैं। क्या बालक प्रह्लाद के वचन को सही ठहराने के लिए, वे नरसिंह के रूप में प्रकट नहीं हुए?

41. भक्ति के चरण

शिवानन्द-लहरी में भगवत्पाद जी ने भक्ति के विभिन्न चरणों का वर्णन और चित्रण किया है। प्रारम्भ में, भक्त प्रयासपूर्वक अपना मन भगवान की ओर मोड़ता है और उनके चरणों को पकड़ लेता है। अङ्कोल वृक्ष के बीज का अपने मूल वृक्ष से चिपकना इसका दृष्टान्त बन सकता है। जब भक्त अपने मन को भगवान की ओर मोड़ लेता है तब भगवान उसके प्रति अत्यन्त अनुकूल हो जाते हैं और उस पर कृपा करते हैं। यह ऐसा है जैसे ईश्वर भक्त को अपनी ओर खींच रहे हों और उसे कहीं और जाने से रोक रहे हों। इसके लिए दृष्टान्त एक चुम्बक की ओर खींची जाने वाली सुई है। यह दूसरे चरण को लक्षित करता है।

तीसरा चरण तब होता है जब भक्त का हृदय भगवान पर पूरी तरह से केन्द्रित होता है और बदले में, भगवान भक्त के प्रति अत्यन्त लगाव रखते हैं। स्थिति की तुलना एक पवित्र पत्नी की है, जो अपने पति की प्रेम से सेवा करती है और पति उसकी स्नेह की भावनाओं का प्रतिदान करता है। भक्त धीरे-धीरे भगवान का एक आभूषण बन जाता है। वास्तव में, अगर प्रह्लाद नहीं होता, तो भगवान नरसिंह के रूप में प्रकट नहीं हुए होते और उन्होंने संसार पर अपनी कृपा नहीं बरसाई होती। तो एक तरह से, भगवान की महिमा को भक्त बढ़ाता है। एक लता का किसी वृक्ष को बाँधना और उसे सुशोभित करना इसका एक दृष्टान्त है। इस चौथे चरण को पार करने पर, भक्त भगवान में पूर्ण रूप से एकीभूत हो जाता है। महासागर में एक नदी

का मिल जाना इसका दृष्टान्त है। एक बार जब नदी समुद्र में मिल जाती है, तो उसे सागर से अलग नहीं किया जा सकता। भक्त भी भगवान से अविभाज्य हो जाता है।

42. देवी माता बिना विलम्ब किए अनुग्रह करती हैं

एक भक्त प्रार्थना करना चाहता था, "हे भवानी, मुझ पर जो कि आपका एक दास है, अपनी दयादृष्टि करें।" इसलिए उसने, "भवानि त्वम्," शब्दों के साथ प्रारम्भ किया। अपने भक्त की मनोकामना को पूरी करने के लिए देवी इतनी उत्सुक थीं कि उन्हें यह नहीं पता चला की "त्वम्", अर्थात् "तुम", के बाद भक्त के ठहराव, केवल क्रमिक शब्दों के बीच का अन्तराल है। अनुरोध को पूरा मानते हुए, उन्होंने तुरन्त उसे "भवानित्वम्", यानी भवानी होने की अवस्था, प्रदान की; यानी उन्होंने उसे अपने साथ एक बना दिया। भगवत्पाद जी ने अपनी सौन्दर्य-लहरी में यह कहा है।

43. सर्वव्यापी भगवान की लीला

एक बार, दक्षिण भारत की एक नदी में अचानक बाढ़ आ गई और उसके किनारे का बाँध टूट गया। उस देश के राजा ने सभी लोगों को आदेश दिया कि वे बाँध में बालू डालकर अतिप्रवाह को रोकें। प्रत्येक व्यक्ति को टूटे हुए क्षेत्र का एक भाग आवंटित किया गया। लोगों में एक निर्धन बूढ़ी थी, जो पिट्टु (चावल के आटे से बनी एक दक्षिण भारतीय मिठाई) बनाकर उसे बेचकर अपनी आजीविका चलाती थी। शारीरिक श्रम के लिए बहुत दुर्बल होने के कारण, वह राजा के आदेश को पूरा करने में अपनी असमर्थता के बारे में चिन्तित रही।

इस बीच, भगवान शिव जी ने एक दिव्य लीला करने के बारे में सोचा। इसलिए, उन्होंने एक कुली का मानुष रूप धारण किया और बुढ़िया के पास पहुँचे। भोलापन से युक्त चहरे वाले बनकर, उन्होंने पूछा, "जबकि अन्य सभी लोग नदी के किनारे पर परिश्रम कर रहे हैं, तो आप यहाँ बैठी हैं। क्या आप राजा द्वारा दिए गए काम को पूरा करने की इच्छा नहीं रखती हैं?" बुझे हुए स्वर में उस बुढ़िया ने उत्तर दिया, "मेरे बेटे, मुझे क्या करना है? जर्जर होने के नाते, मैं कठिन श्रम करने की स्थिति में नहीं हूँ। और तो और, यदि मैं आवंटित काम करती हूँ, तो मुझे अपना व्यापार खोना पड़ेगा और इसके कारण, भूखा रहना पड़ेगा। हालाँकि, मैं राजादेश का उल्लङ्घन भी नहीं कर सकती। इसलिए, मैं दुविधा में फँस गई हूँ।"

इस पर प्रतिक्रिया करते हुए प्रभु ने कहा, "दादी जी, चिन्ता मत करें। मैं आपके भाग के बाँध की देखभाल करूँगा। आप मुझे बदले में क्या देंगी?" "मैं उस काम के लिए भुगतान करने में भी सक्षम नहीं हूँ जिसे तुम करने का प्रस्ताव कर रहे हो। हाय! मैं कितनी दुर्भाग्यशाली हूँ!" बूढ़ी औरत ने अपना दुःख व्यक्त किया।

प्रभु ने उत्तर दिया, "आह! ठीक है। ऐसा लगता है कि आपके पास कुछ पिट्टु हैं जो अच्छी तरह से नहीं बने हैं और जिन्हें कोई नहीं क्रय करेगा। यदि आप मेरे वेतन के बदले मुझे वे दे दें, तो मेरे लिए इतना पर्याप्त होगा।" इस प्रकार बोलते हुए, शिव जी ने लीलापूर्वक सभी पिट्टु खा लिए। मध्याह्न के भोजन का समय बीत गया। अपनी भूख शान्त करने के बाद, उन्होंने राहगीरों के साथ गप्पें मारते हुए समय निकाल दिया।

कुछ समय बाद लोगों ने देखा कि बाँध के एक विशिष्ट स्थल से पानी बह रहा है। यह स्पष्ट रूप से बूढ़ी औरत को आवंटित किया गया भाग था। राजा तक समाचार पहुँचा और वे तुरन्त घटनास्थल पर पहुँच गए। आसपास के लोगों ने उनसे कुली की उदासीनता का परिवाद किया। राजा ने कुली को बेंत से पीटा। जैसे ही उन्होंने ऐसा किया, सभी को वेदना होने लगी। सभी आश्चर्यचकित थे कि क्या अपराधी के स्थान पर, राजा ने उन सबकी पिटाई की है। वास्तव में, यहाँ तक कि सम्राट ने भी अपनी स्वयं की

पिटाई की पीड़ा अनुभव किया! तभी तो राजा को पता चला कि वह श्रमिक कोई और नहीं, अपितु स्वयं ईश्वर ही हैं।

यह कहानी बताती है कि ईश्वर सभी प्राणियों के आन्तरिक सार के रूप में निवास करते हैं। तत्त्वतः निराकार होते हुए भी, ईश्वर अपने भक्तों के लिए रूप धारण कर सकते हैं और करते भी हैं। उनकी दिव्य लीला अत्यन्त मनोहर है। एक कवि कहता है, "हे ईश्वर, जब तक आपने पिट्टु का सेवन समाप्त नहीं कर लिया, तब तक आपने अपनी सर्वव्यापकता का प्रदर्शन नहीं किया!"

44. भगवान के रूप

एक व्यक्ति अपने कार्यस्थल पर शर्ट, पतलून और टाई पहना हुआ था। एक मित्र ने उसे कन्धे पर थपथपाया और कहा, "मुझे यह देखकर प्रसन्नता हुई कि आप सजीले हैं। यह इस प्रकार का परिधान है जो आपके लिए एक बिक्री प्रतिनिधि के रूप में सफल होने के लिए आवश्यक है।" सन्ध्याकाल को वह व्यक्ति घर आया और धोती पहनकर विष्णु-सहस्रनाम का पठन करने के लिए बैठ गया। तभी आए दूसरे मित्र बोले, "यह सच है कि काम पर जाने के समय, आपको एक अंग्रेज़ जैसा परिधान धारण करना होता है। परन्तु, यह आप पर बहुत जँचने वाले परिधान है। मुझे आपको इसमें देखना अच्छा लगता है।"

कहानी से पता चलता है कि कोई विभिन्न प्रकार के परिधानों को धारण करता है, तो उनसे अलग-अलग लोगों को सन्तुष्ट करता है। ईश्वर तो वस्तुतः निराकार हैं; परन्तु, अपने भक्तों के लिए वह अलग-अलग रूपों में स्वयं को अभिव्यक्त करते हैं। पुराणों में प्रभु की कई अभिव्यक्तियों का वर्णन किया गया है। शास्त्र-वर्णित शिव, विष्णु, आदि के रूपों में निहितार्थ है।

उदाहरणार्थ, शिव के दस हाथ हैं। दस हाथ दसों दिशाओं को लक्षित करते हैं — जिसमें ऊपर और नीचे की दिशाएँ सम्मिलित हैं — एवं ईश्वर की

सर्वव्यापकता के द्योतक हैं। शिव को त्रिनेत्र के रूप में जाना जाता है। सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि इन आँखों को गठित करते हैं। उनकी जटा में चन्द्र-कला है। यह चन्द्र ज्ञान का द्योतक है। शिव का इसे अपनी जटाजूट में पहनना, भगवान के शुद्ध ज्ञान से सम्पन्न होने का सूचक है। "ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वशक्त और सर्वव्यापक हैं और उनसे पृथक कुछ भी नहीं है" — यह पौराणिक विवरणों का एक साधारण आन्तरिक अर्थ है।

45. भक्त की भेंट

एक भक्त ने भगवान को कुछ समर्पण करने का निर्णय लिया। "मुझे क्या देना चाहिए?" इस प्रश्न से वह चिन्तित था। उसने विचार किया, "भगवान को पशुपति — अर्थात्, प्राणियों के स्वामी — नाम से जाना जाता है। इसलिए उन्हें उपहार में एक पशु देना उचित होगा। वह कौन सा पशु है जिसे मैं उन्हें समर्पित करूँ?" उचित विचार के बाद, उन्होंने शिव जी से कहा, "मेरे पास एक गाय है, जो आपके प्रति मेरी भक्ति के अतिरिक्त, और कुछ नहीं है।" उनको लगा कि शिव जी पूछेंगे, "तुम्हारी गाय की विशेषता क्या है?" अतः, उन्होंने स्पष्ट किया, "यह अपने दूध के रूप में अमित आनन्द देती है।"

"यह कितनी बार दूध देती है?" शिव जी की जिज्ञासा हो सकती है। इसलिए, उस व्यक्ति ने कहा, "यह बार-बार दूध देती है।" ऐसा सोचकर कि भगवान का अगला प्रश्न, "यह कहाँ रहेगी?" होगा, उसने कहा, "यह गौशाला में रहेगी जो कि आपके चरण हैं।" उसे लगा कि प्रभु उससे इस प्रश्न का उत्तर चाहते हैं — "क्या इसका बछड़ा भी है," और इसलिए उसने बताया, "इसका एक बछड़ा है, 'पुण्य'।" "हे ईश्वर, आप पशुपति हैं। यह एकमात्र गाय है जो मेरे पास है। कृपया इसे लें और इसकी रक्षा करें," भक्त ने अपनी बात पूरी की।

वास्तव में, भगवान को भक्त से कुछ नहीं चाहिए। हालाँकि, भक्त प्यार से जो कुछ भी देता है, उसे प्रभु स्वीकार करते हैं और अपने अनुग्रह प्रदान करते हैं।

भगवान कृष्ण ने कहा है, "जब कोई मुझे भक्ति के साथ एक पत्ता, फूल, फल या थोड़ा जल समर्पित करता है, तो मैं शुद्ध-हृदय वाले उस भक्त के भक्तिपूर्ण उपहार को स्वीकार करता हूँ।"

46. मूर्ति पूजा पर आलोक

एक व्यक्ति ने भगवान गणेश की एक मिट्टी की बनी हुई मूर्ति क्रय की और गणेश चतुर्थी के अवसर पर उसका पूजन करने लगा। तीन दिनों के बाद, उसने प्रतिमा को एक नदी में विसर्जित कर दिया। यह सब कुछ उसके एक मित्र ने देखा जिसे मूर्ति पूजा के विषय में कुछ विशेष ज्ञान नहीं था और इसलिए जो उसने देखा उससे उलझन में पड़ गया।

मित्र - तुम एक मूर्ति की बड़ी ही श्रद्धा से पूजा कर रहे थे। फ़िर भी, अब तुमने उसे नदी में फेंक दिया है। क्यों?

आराधक - पहले तो मूर्ति में पवित्रता नहीं थी और वह केवल एक मिट्टी की सुन्दर आकृति थी। फ़िर मैंने विनायक चतुर्थी की पूजा आरम्भ होने से पहले, यथाविधि उसमें भगवान गणेश जी का आवाहन किया। तब यह पवित्र देव-प्रतिमा बन गई। इसे साक्षात् भगवान मानकर, मैंने इसकी पूजा की। पूजन की नियत अवधि की समाप्ति पर, मैंने भगवान से अपनी विशेष उपस्थिति वापस लेने का अनुरोध किया। मूर्ति ने अपनी पवित्रता खो दी और केवल मिट्टी का टुकड़ा बन गई। वह मिट्टी का टुकड़ा था जिसे मैंने नदी में विसर्जित कर दिया था।

मित्र - मिट्टी के एक खण्ड का पवित्र बन जाना और पुनः अपनी वास्तविक दशा में लौट आना कैसे सम्भव है? और तो और, एक भक्त में इतनी क्षमता कैसे हो सकती है कि वह इन परिवर्तनों को करा सके?

आराधक - एक उदाहरण पर विचार करें। एक साधारण मनुष्य है जिससे हम सभी परिचित हैं। हम जब चाहें उससे मिल सकते हैं। अगर वह व्यक्ति किसी उच्चपदस्थ सरकारी अधिकारी से मिलना चाहता है, तो उसे मिलने का समय पाने हेतु भागदौड़ करनी पड़ती है। हम जैसे लोगों के सुझाव पर वह चुनाव में प्रत्याशी के रूप में रखा होता है और हमारे वोटों से जीत जाता है।

फ़िर वह मन्त्री बन जाता है। उसके उपरान्त, जब हम उससे मिलना चाहते हैं तब हमें उसका समय तय करना पड़ता है। वही अधिकारी लोग, जिनसे मिलने में उसे पहले कठिनाई होती थी, अब उसके पास आकर उसके आदेशों का पालन करते हैं। उसे सुरक्षा और अच्छे आवास की सुविधा दी जाती है। मन्त्री के रूप में अपने कार्यकाल के बीत जाने के बाद, वह फ़िर एक बार चुनाव में प्रत्याशी के रूप में लड़ता है। इस बार, लोग उसे पहले जैसे वोट नहीं देते हैं, जिसके कारण वह अब हार जाता है। इस प्रकार वह फ़िर से पहले जैसा ही साधारण व्यक्ति बनकर रह जाता है। मन्त्री पद के विशेष सुविधाएँ और अधिकार अब उसके नहीं रहते हैं।

हम जैसे लोग उस साधारण व्यक्ति को अपने वोटों से मन्त्री बनाते हैं और उसके बाद, फ़िर उसे उसकी पुरानी स्थिति में लौटा ले आते हैं। इसी तरह, भक्त द्वारा किए आवाहन के उत्तर में, भगवान उस मूर्ति में अपनी विशिष्ट कृपा बरसाते हैं और वह मूर्ति पवित्र बन जाती है। भक्त की पूजा को स्वीकार कर लेने के बाद, भक्त के अनुरोध पर भगवान अपनी विशिष्ट उपस्थिति का संहरण कर लेते हैं और वह मूर्ति अपनी पुरानी दशा में लौट आती है।

एक मन्दिर में एक मूर्ति मूल रूप से एक पहाड़ी पर एक चट्टान का भाग हो सकती है; हो सकता है कि लोग उस चट्टान पर चले हों और उस पर मूत्र विसर्जन भी किया हो। एक मूर्तिकार एक साधारण चट्टान को छेनी से एक सुन्दर मूर्ति में बदल देता है। फ़िर भी वह पवित्र नहीं होती। हालाँकि, वह तब पवित्र हो जाती है जब इसे किसी मन्दिर में विधिवत् रूप से प्रतिष्ठित किया जाता है। इसके बाद, लोग इसकी पूजा करते हैं। वही मूर्तिकार, जिसने पहले उस पर हथौड़े से वार किया था, अब उसके सामने साष्टाङ्ग प्रणाम करता है और यहाँ तक कि उसे छूता भी नहीं है।

मित्र - आपकी पूजा के समय, आप क्यों मूर्ति को श्रद्धापूर्वक कुछ चढ़ाते हैं? वैसे भी, उन्हें प्राप्त करने के लिए वह एक मिलीमीटर तक भी नहीं हिली।

आराधक - यह हमारी पवित्र संस्कृति है कि जब कोई सम्मानित अतिथि घर आते हैं, तब हम उनका आदरपूर्वक स्वागत-सत्कार करें। उन्हें आसन पर बिठाएँ तथा उनके चरणों को धोएँ। उन्हें भोजन कराएँ। भक्तजन मूर्ति में केवल मिट्टी या पत्थर नहीं, प्रत्युत भगवान की जीवित उपस्थिति देखते हैं। वे ऐसा मानते हैं कि ईश्वर स्वयं को समर्पित की हुई वस्तु को स्वीकार करते हैं, यद्यपि मूर्ति स्वयं समर्पित की गई वस्तुओं को ग्रहण करने के लिए अपने हाथों को नहीं फैलाती है। यही कारण है कि मैंने पाद्य — अर्थात् उनके पैरों को धुलने के लिए जल — समर्पित किया। फ़िर मैंने उन्हें भोजन कराया; यही मेरी नैवेद्य की भेंट थी।

मान लीजिए कि कोई अतिथि एक आतिथेय के घर में किसी महिला के साथ दुर्व्यवहार करके या बहुमूल्य वस्तुएँ चुराकर उसे दिए जाने वाले सम्मान के लिए स्वयं को अयोग्य सिद्ध करता है। तब तो यह सम्भव है कि आतिथेय उसे पुलिस के हाथों में सौंप दे। भगवान के सम्बन्ध में, उनके भक्त की पूजा के लिए अयोग्य सिद्ध होने की कोई सम्भावना नहीं है। इसलिए, भक्त पूजा के बीच में पूजा की जाने वाली मूर्ति को कभी नहीं छोड़ते हैं।

मित्र - विनायक चतुर्थी के दिन, एक ही काल में अनेक स्थानों पर गणेश जी की पूजा की जाती है। वे किस मूर्ति में निवास करने का चयन करते हैं? उनके चयन को क्या प्रभावित करता है?

आराधक - वे सभी मूर्तियाँ — जिनमें भगवान का आवाहन यथाविधि ठीक-ठीक किया जाता है — पवित्र बन जाती हैं। जहाँ-जहाँ वायुदाब काम होता है, वायु उधर जाती है। उसी प्रकार, भगवान, जो कि सर्वत्र व्याप्त हैं, उन सभी मूर्तियों में विशेष रूप से सन्निविष्ट हो जाते हैं, जहाँ उनकी शास्त्रविधि से पूजा होती है, चाहे कितनी ही मूर्तियाँ कितने ही विभिन्न स्थानों पर क्यों न हों।

मित्र - कहीं पर समर्पित किया गया भोजन बहुत कम होता है और कहीं बहुत अधिक होता है। क्या ऐसा नहीं है कि देवता के लिए समर्पित अत्यल्प

भोजन अपर्याप्त होता है और बहुत अधिक भोजन आवश्यकता से अधिक होता है?

आराधक - नहीं। वेदों में, यह कहा जाता है कि जिस देवता को यह चढ़ाया जाता है, उसकी इच्छा के अनुसार समर्पण की मात्रा भी परिवर्तित हो जाती है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यदि कोई भक्त गणपति हवन में एक निश्चित सङ्ख्या में मोदक, जैसे 1000, चढ़ाने का सङ्कल्प करता है, तो उसे वह सङ्ख्या अवश्य देनी चाहिए। उसे यह नहीं सोचना चाहिए, "यह गणेश जी के खाने के लिए बहुत अधिक है," और कम चढ़ाएँ। वास्तव में, भगवान को किसी भी वस्तु की आवश्यकता नहीं होती है, परन्तु एक उपासक द्वारा भक्ति के साथ जो कुछ भी अर्पित किया जाता है, उसे स्वीकार कर लेते हैं और उसी से तृप्त हो जाते हैं।

47. अनेक लोगों का संयुक्त प्रभाव

एक सोमयाजी ने अपने द्वारा अनुष्ठान किए जाने वाले सोम-याग में बलिदान के लिए कुछ बकरियाँ क्रय कीं। जब वे उन्हें अपने घर ले जा रहे थे, तीन लोगों ने मोटी, स्वस्थ बकरियों को देखा और उन्हें अपराह्न के भोजन के लिए खाना चाहा। सोमयाजी को ठगने के लिए, उन्होंने एक योजना बनाई। फ़िर वे सड़क के किनारे अलग-अलग स्थानों पर छिप गए।

कुछ समय बाद, उनमें से एक ने सोमयाजी से मिला और चिल्लाकर कहा, "हे सोमयाजी, यह क्या है? आप पवित्र लग रहे हैं और अपने माथे पर पवित्र भस्म धारण कर रखी है। उसी समय, आपके साथ कुत्ते भी हैं।" सोमयाजी दंग हो गए। हालाँकि, उनका सन्देह शान्त हो गया जब उन्होंने बकरियों की ओर देखा। तिरस्कारपूर्वक, उन्होंने उस व्यक्ति से कहा, "हट जाओ! क्या तुम नहीं देख सकते कि मैं केवल बकरियों को घर ले जा रहा हूँ, कुत्तों को नहीं? मुझे मूर्ख बनाने का प्रयास मत करो।"

कुछ समय बाद, दूसरा धूर्त उनसे मिला और बोला, "हे सोमयाजी, आपको क्या हो गया है? क्या आपका मन बिगड़ गया है? यह चौंकाने वाली बात है कि आप, एक अतिरुढ़िवादी व्यक्ति — जिन्हें भूल से कुत्ते के सम्पर्क में आने पर भी स्नान करना चाहिए — अब कुत्तों को खींच रहे हैं। आपको धिक्कार है!" इस बार, सोमयाजी पूरी तरह से भ्रमित थे क्योंकि दो व्यक्तियों ने कह दिया था कि वे कुत्तों को ले जा रहे हैं। फ़िर भी, उस बात की उपेक्षा करते हुए, वे अपने मार्ग पर चलते रहे।

अब तीसरा ठग सामने आ गया। सोमयाजी के प्रति सम्मान का नाटक करते हुए, उसने उनके सामने साष्टाङ्ग प्रणाम किया और कहा, "मुझे जो कहना है, उसके लिए कृपया मुझे क्षमा करें। मैं आपको समझ पाने में विफल हूँ। आपके एक हाथ में एक पवित्र कमण्डलु है, परन्तु दूसरे हाथ में, आप एक रस्सी पकड़े हुए हैं, जिससे तीन कुत्ते बँधे हुए हैं। सचमुच बड़ा वैषम्य है!" इस बार, सोमयाजी को कोई अनिश्चय नहीं था। उन्हें बिना सन्देह के विश्वास हो गया था कि वे अपने याग के लिए कुत्तों को ही ले जा रहे हैं।

उन्होंने विचार किया, "तीन लोगों ने तीन अलग-अलग स्थानों पर एक ही बात कही है। मेरी क्षीण हो रही दृष्टि और भोलेपन का लाभ उठाकर, विक्रेता ने मुझे धोखा दिया होगा। मुझे बकरियों के स्थान पर कुत्तों का बोझ ढोना पड़ा; यह निश्चित रूप से मेरे पिछले पापों का प्रभाव है। कितनी लज्जा की बात है!" इस प्रकार सोचते हुए, उन्होंने अपने दिखावटी शुभचिन्तक से अनुरोध किया, "कृपया इन कुत्तों को दूर ले जाओ। यदि मैं इन्हें यज्ञशाला में ले चला जाता, तो वास्तव में क्या हो जाता! मैं सम्भावित टिप्पणियों के बारे में सोचकर भी काँपता हूँ। तुम्हारे कारण, मैं निन्दा और लज्जास्पद स्थिति से बच गया हूँ। तुम्हें इन कुत्तों के लिए मुझे कुछ भी भुगतान करने की आवश्यकता नहीं है। मैं उनसे छुटकारा पाकर बहुत प्रसन्न हूँ।" फ़िर उन्होंने कृतज्ञतापूर्वक बकरियों को सौंप दिया।

इस प्रकार जब तीन व्यक्तियों ने एक ही बात कही, तो सोमयाजी की मनोभावना में रूपान्तरण हो गया। एक और एक ग्यारह होते हैं! यदि इस

तरह के छलपूर्वक शब्दों का ही प्रभाव इतना हो सकता है, तो कई भक्तों की हार्दिक प्रार्थनाओं के प्रभाव के बारे में कहने की क्या आवश्यकता है? ऐसी प्रार्थनाएँ उन कारकों में से एक हैं जिनके कारण, मन्दिर की मूर्तियों को ईश्वर पवित्रता प्रदान करते हैं।

48. गोपुरम नम्रता को प्रेरित करते हैं

एक सड़क पर दो दोस्त साथ चल रहे थे। उनमें से एक डींगें मारने वाला और भीतर तक अहङ्कारी था। उसने अपने मित्र से कहा, "मेरी जितनी उपलब्धि और कौन प्राप्त कर सकता है? मैं अपने कार्यस्थल पर अपरिहार्य हूँ और प्रभूत धन कमाता हूँ।" वह इसी प्रकार अपनी विभिन्न उपलब्धियों को सूचीबद्ध करता हुआ बोलता रहा। दोनों एक बृहत गोपुर वाले एक मन्दिर के पास से होकर जा रहे थे। डींगे मारने वाले व्यक्ति के मित्र ने उससे कहा, "बस, इस गोपुर पर एक दृष्टि डालो।" अहङ्कारी ने पलटकर देखा। एक बृहत वास्तुशिल्प की अद्भुत वस्तु होने के कारण, उसने उसे विस्मय से भर दिया। जैसे ही वह उस गोपुर पर टकटकी लगाए खड़ा था, उसे लगा कि वह नगण्य है। उसने अनुभव किया कि इस विशाल गोपुर की तुलना में, वह केवल एक कीट जैसा प्राणी है। यह उसके लिए अहम् को चकनाचूर करने वाला अनुभव था।

हमारे पूर्वजों ने लोगों में विनम्रता को प्रेरित करने के लिए, बृहत गोपुरों का निर्माण किया।

49. शिवरात्रि का महत्त्व

एक बार, ब्रह्मा और विष्णु में विवाद उगा कि सबसे श्रेष्ठ कौन है। भगवान शिव उनके सामने एक लिङ्ग के रूप में प्रकट हुए। विष्णु ने भगवान शिव के चरणों का पता लगाना चाहा और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए, उन्होंने एक वराह का रूप धारण किया। हंस का रूप धारण करके, ब्रह्मा भगवान के शीर्ष ढूँढने हेतु निकल पड़े। उनमें से कोई भी अपने लक्ष्य का पता नहीं लगा सके। इसलिए उनका अभिमान कुचल गया। उन्हें बोध हुआ कि परमात्मा, सर्वव्यापी प्रभु, सबसे महान हैं।

यह कहानी त्रिमूर्तियों में अन्तर करने के लिए नहीं है, न ही इस भावना को प्रेरित करने के लिए है कि विष्णु शिव से छोटे हैं। इसका प्राथमिक उद्देश्य यह दिखाना है कि ब्रह्माण्ड के सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी भगवान सबसे महान हैं। कहा गया है कि कथा में वर्णित अभिव्यक्ति शिवरात्रि को हुई थी, जो माघ-मास में कृष्ण-पक्ष की चतुर्दशी के दिन पड़ती है। उस दिन उपवास रखना चाहिए और रात भर जागकर शिव जी की पूजा करनी चाहिए। निद्रा को त्यागकर ईश्वर के विषय में न सोचते हुए रात को बिताना निरर्थक है।

रात भर पूजा करने का क्या फल है? इस प्रश्न का उत्तर एक श्लोक में मिलता है जिसका अर्थ है, “हे आँखों, आपको ध्यानपूर्वक इस सबसे शुभतम और अति पवित्र रात को जागे रहने के लिए कहा जाता है। यदि आप ऐसा करती हैं, तो आप दोनों के बीच आप जैसा आपका मित्र अपना सान्निध्य देगा।” विचार यह है कि यदि कोई शिवरात्रि पर पूजा करता है, तो वह स्वयं शिव के समान हो जाता है।

50. किस देवता की प्रार्थना करें

एक ब्राह्मण किसी बाढ़ आई नदी के तट पर हिचकिचाता हुआ खड़ा था, और उसे पार करने की प्रतीक्षा कर रहा था। उसने उस मार्ग से आ रहे एक मुसलमान से दूसरे किनारे पर जाने के मार्ग के बारे में पूछताछ की। "मेरे दोस्त, ख़ुदा पर भरोसा करें और कूद जाएँ," मुसलमान ने कहा, "वे आपको पार ले जाएँगे।" परन्तु ब्राह्मण चतुर था। चूँकि वह सम्भावित आपदा से दूर रहना चाहता था, इसलिए उसने मुसलमान से कहा, "आप पहले गोता लगाओ। फ़िर मैं पीछे आऊँगा।" "बहुत अच्छा," मुसलमान ने कहा। अपनी दाढ़ी को मुट्ठी में लेकर, "अल्लाह-हो-अकबर!" बोलते हुए, उसने छलांग लगा दिया। किसी तरह, वह स्वयं को पार करने में सफल रहा।

अब ब्राह्मण ने थोड़ा साहस जुटाया। उसने विघ्न-विनाशक गणेश जी से प्रार्थना की। जैसे ही उसने छलांग लगाई, तो सोचा कि यदि वह गणेश जी के पिता शिव जी से प्रार्थना करता, तो उसके बचने की अधिक सम्भावना होती। इसलिए, उसने डुबकी लगाते हुए शिव जी की शरण ली। गणेश जी ने सोचा कि उनके महान पिता ब्राह्मण की रक्षा करेंगे। दूसरी ओर, उस व्यक्ति को बचाने के लिए शिव जी ने गणेश जी की अपेक्षा की, जिनका बाधाओं पर अधिकार क्षेत्र था। किसी ने सहायता नहीं दी। संशय में पड़े ब्राह्मण ने अपनी अन्तिम यात्रा की।

एक व्यक्ति को यह समझना चाहिए कि ये एक ही भगवान हैं जो शिव, विष्णु, गणेश, आदि के रूप में प्रकट होते हैं; इसलिए, उसे यह नहीं सोचना चाहिए कि एक देवता दूसरे की तुलना में उसकी सहायता करने के लिए कम शक्तिशाली है। हालाँकि, यह एक व्यक्ति के लिए पूरी तरह से वैध है कि उसके कोई इष्ट-देवता हों, जैसे शिव। उसे सोचना चाहिए, "यह मेरे प्रिय शिव हैं, जिन्होंने विष्णु जैसे सभी अन्य देवताओं के रूपों को ग्रहण किया है," न कि "विष्णु शिव से अलग और निकृष्ट हैं।" ऐसे दृष्टिकोण

रखने वाला व्यक्ति किसी भी विधिवत् स्थापित मन्दिर में पूरी तरह से प्रसन्न-चित्त होगा और इन विचारों द्वारा कष्ट में नहीं डाला जाएगा, जैसे कि, "अगर मैं विष्णु से प्रार्थना करता हूँ तो क्या शिव मुझसे अप्रसन्न होंगे?"

51. महान भक्त का लक्षण

एक बार, भगवान विष्णु के पास नारद गए और उनसे पूछा, "आपका सबसे बड़ा भक्त कौन है?" प्रभु ने कहा, "एक किसान है जो सचमुच मेरे लिए समर्पित है।" इस पर नारद क्रोधित हो उठे और बोले, "क्या! क्या मैं आपका सबसे बड़ा भक्त नहीं हूँ? वह बेचारा कुत्सित किसान उतना भक्तिमान कैसे हो सकता है जितना मैं हूँ?" भगवान ने नारद से कहा कि वे जाएँ और स्वयं उस व्यक्ति को देखें। नारद ने किसान की गतिविधियों की समीक्षा की। हर प्रातःकाल किसान उठकर, भगवान की प्रार्थना करने के बाद अपने घरेलू कार्यों में भाग लेता। उसके बाद, वह खेतों में जाता और कुछ समय के लिए भगवान के विचार में लीन होकर मौन बैठे रहता। फ़िर वह अपने कृषि कार्य को सम्भालता। उनकी अगली प्रार्थना सायंकाल के लिए नियत रहती।

यह सब देखकर नारद भगवान विष्णु के पास लौटे और उन्होंने आपत्ति उठाई, "यह क्या है? किसान तो प्रायः आपका नाम भी नहीं दोहराता है। वह महान भक्त कैसे हो सकता है?" भगवान विष्णु ने कहा, "उत्तर देने से पहले, मैं आपको एक कार्य दूँगा। कृपया पानी से भरी हुई इस कटोरी को लें और सड़कों का चक्कर लगाएँ। फ़िर मेरे पास लौट आएँ। कृपया यह सुनिश्चित करें कि पानी की एक बूँद तक नहीं गिरे।" कटोरे को लेकर नारद चल पड़े। वे अभी कुछ दूर चले ही थे कि उन्हें यह चिन्ता सताने लगी कि उसमें से एक या दो बूँदें गिर सकती हैं। इस चिन्ता ने उन्हें यहाँ तक अपने वश में कर लिया कि उनका मन कटोरे के पानी के अतिरिक्त कुछ भी सोचने में असफल रहा। अपने कार्य के पूरा होने पर, वे प्रभु के पास लौट आए।

भगवान विष्णु ने उनसे पूछा, “जब आप सड़कों पर थे, तब आपने कितनी बार मेरे नाम का स्मरण किया था?” नारद अचम्भे में डाले गए और उन्होंने कहा, “मैं आपका नाम कैसे जप सकता था? अन्ततोगत्वा, मैं इस कार्य में बहुत व्यस्त था; वैसे भी, मुझे यह सुनिश्चित करना था कि तनिक भी पानी न गिरे।” प्रभु ने कहा, “किसान भी आपकी तरह व्यस्त था। तब भी, उसने मेरा स्मरण किया। इसी ने उसे महान भक्त बनाया है।”

एक प्रातःकाल, युधिष्ठिर भगवान कृष्ण से मिलने आए। उन्होंने कृष्ण को गम्भीर ध्यान में अचल बैठा पाया। जब कृष्ण ने अपनी आँखें खोलीं, तो युधिष्ठिर ने आदरपूर्वक उनसे पूछा, “आप ब्रह्माण्ड के सृष्टिकर्ता और संहारकर्ता हैं, तथा आदि और अन्त के बिना हैं। फ़िर भी, आप गहरे ध्यान में बैठे थे। कृपया आप क्या मुझे अपने ध्यान का महत्त्व बता सकते हैं?”

कृष्ण ने उत्तर दिया, “बाणों की शय्या पर लेटे हुए भीष्म ने अपना मन मुझ पर लगा लिया है। इसलिए, मेरा मन उन पर लग गया।” यद्यपि वे कई बाणों से छेदे गए थे और गहरी वेदना में थे, तब भी भीष्म ने कृष्ण के बारे में इतनी प्रगाढ़ता से सोचा कि उन्होंने पूरी तरह से भगवान के मन को अपनी ओर खींच लिया।

52. एकाग्रता

द्रोणाचार्य ने पाण्डवों और कौरवों दोनों को धनुर्विद्या के सूक्ष्म पहलुओं को निष्पक्ष रूप से समझाया। उनकी शिक्षा के अन्त में, उन्होंने उनके लिए एक परीक्षा आयोजित की। “वृक्ष पर बैठे उस छोटे पक्षी को देखें,” गुरु ने कहा, “आपको इसे एक तीर से नीचे गिराना होगा।” उन्होंने अपने शिष्यों को एक-एक कर बुलाया और पूछा, “अब तुम क्या क्या देखते हो?” प्रत्येक शिष्य ने उत्तर दिया, “गुरुजी, मैं पक्षी, वृक्ष और परिवेश को भी देखता हूँ।” गुरु ने उससे कहा, “तुम धनुर्विद्या में महारत नहीं हो।” अन्त में अर्जुन की बारी

आई। द्रोणाचार्य ने उनसे वही प्रश्न पूछा। अर्जुन ने उत्तर दिया, “पूज्य गुरुजी, मुझे केवल चिड़िया दिखाई देती है, और कुछ नहीं।” गुरु ने उसे तीर छोड़ने को कहा। शिष्य ने आज्ञा मानी। पक्षी गिर गया।

यह कहानी किसी के लक्ष्य या किए जा रहे कार्य पर गहन एकाग्रता की प्रशंसनीयता को सामने लाती है। ध्यान के समय, भगवान पर मन को केन्द्रित करना निश्चित रूप से बहुत महत्त्वपूर्ण है, विशेषकर आध्यात्मिक साधक के लिए। हालाँकि, कई लोग कहते हैं कि वे ध्यान करने में असमर्थ हैं क्योंकि उनका मन भटकता रहता है। प्रायः, उनकी एकाग्रता में कमी का एक प्रमुख कारण, ध्यान में उनकी अभिरुचि की अपर्याप्तता होती है।

एक व्यक्ति को गिनने के लिए सौ रुपये के नोटों का एक पैकेट दिया गया। जैसे ही वह गिनती में व्यस्त था, एक मित्र ने उसे बुलाया। हालाँकि, उसने बुलावे को नहीं सुना और इसलिए उसने ऊपर नहीं देखा। अपना कार्य पूरा करने के बाद ही उसने अपने मित्र की उपस्थिति पर ध्यान दिया। उसने अपने मित्र से कहा, “मेरा पूरा ध्यान नोटों पर था, क्योंकि मुझे पता था कि मेरी गिनती में कोई भी त्रुटि मेरे लिए महँगी सिद्ध होगी।”

उस व्यक्ति ने अपने कार्य को महत्त्वपूर्ण माना और इसलिए वह अपना ध्यान ठीक प्रकार से लगाने में सक्षम रहा। इस तरह, यदि कोई व्यक्ति ध्यान को बहुत महत्त्वपूर्ण मानता है और अनुभव करता है कि उसे ध्यान के समय असावधानी से बहुत अधिक हानि होती है, तो सम्भावना है कि वह भगवान पर अपना मन केन्द्रित करने में सफल होगा।

भाग्य और मानव प्रयत्न की परिधि

जब यह कहा जाता है कि एक व्यक्ति को अधर्म का त्याग करना चाहिए, धर्म का पालन करना चाहिए और भगवान के प्रति भक्ति विकसित करना चाहिए, तब एक अन्तर्निहित परिकल्पना यह है कि मनुष्य अपने जीवन के पथ को नियन्त्रित कर सकता है। क्या मनुष्य वास्तव में स्वतन्त्र है, या उसके जीवन की सभी घटनाएँ पूर्व-निर्धारित हैं? क्या नियति पर विजय पाना सम्भव है और, यदि हाँ, तो कैसे? इस अनुच्छेद में इन प्रश्नों पर विचार किया गया है।

53. भाग्य और स्वतन्त्र इच्छा

दो किसानों के खेत विस्तार में एक जैसे थे और उनमें एक जैसी मिट्टी थी। उन्होंने समान रूप से कड़ा परिश्रम किया, अपनी भूमि को अच्छी तरह जोत दिया और समान गुणवत्ता के बीज बोए। खेतों के ऊपर वृष्टि न तो बहुत अधिक और न ही कम हुई थी और इसलिए, फसलों में अच्छी वृद्धि हुई थी। उचित समय पर उन्होंने अपनी कटाई की। सन्ध्याकाल को अपने घर जाने से पहले, वे प्रसन्नता के साथ अनाज के बड़े-बड़े ढेर देख पा रहे थे, जो उनके प्रयासों के परिणाम थे। उनके द्वारा प्राप्त पैदावार में कदाचित् ही कोई अन्तर था।

उस रात उनके सोते समय, एक भूमि पर बहुत भारी वर्षा हुई और दूसरी ओर केवल थोड़ी सी बूँदा-बाँदी हुई। अगले प्रातःकाल, जब वे अपनी खेत पर गए, तो एक ने पाया कि वृष्टि ने उसके अनाज को नष्ट कर दी है, जबकि दूसरे ने निश्चिन्तता का अनुभव किया क्योंकि उसके अनाज के ढेर अक्षत थे।

इस प्रकार, उनके प्रयासों में समानता के होने पर भी, उन्हें प्राप्त परिणाम स्पष्ट रूप से भिन्न थे। एक किसान का भाग्य प्रतिकूल था और दूसरे का अनुकूल, जिसके कारण पहले की हानि हुई और दूसरे का लाभ हुआ। जो लोग वेदों और शास्त्रों में आस्था रखते हैं और तर्कसङ्गत हैं, वे मनुष्यों के अनुभवों को केवल आकस्मिक नहीं मानते।

दो छात्रों ने एक परीक्षा लिखी। जिस लड़के ने ठीक से पढ़ाई की थी उसने दो प्रश्नों को छोड़कर सभी का अच्छी तरह से उत्तर दिया। दूसरा तो केवल दो प्रश्नों के सही उत्तर देने में सफल रहा। परीक्षक एक निष्पक्ष, लेक़िन आलसी, व्यक्ति था। उसने पहले लड़के के दो प्रश्नों के उत्तरों की समीक्षा की। वे दोषपूर्ण निकले। अन्य उत्तरों को भी दोषपूर्ण मानते हुए उसने लड़के को कम अङ्क प्रदान किए।

फ़िर उसने दूसरे लड़के की उत्तर पत्रिका को लिया। जाँच के लिए उसके द्वारा चुने गए उत्तर सही थे। यह मान लेते हुए कि शेष उत्तर भी सही होंगे, उसने

उस लड़के को अधिक अङ्क प्रदान किए। परिणाम देखने पर, जिस लड़के ने श्रेष्ठतर अध्ययन किया था, वह दुःखी था, जबकि दूसरा आनन्दित था। इस प्रकार, कड़े परिश्रम का परिणाम बुरा रहा और बुरी तैयारी से अच्छे अङ्क मिले। यहाँ भी भाग्य का हाथ देखा जाता है।

एक निर्धन व्यक्ति था जो एक अपव्ययी और पियक्कड़ था। उसकी पत्नी ने जुड़वाँ बच्चों को जन्म दिया। अपने बच्चों को प्यार से देखते हुए, उसने अपने पति से कहा, "वे राजकुमार दिखते हैं।" पति ने हँसते हुए कहा कि वह उन्हें चक्रवर्ती और राजा नाम देगा। एक निर्धन परिवार के सदस्यों के लिए वे व्यंग्यात्मक नाम थे। घरेलू खर्चों को पूरा करने के लिए, उसकी पत्नी एक बहुत ही सम्पन्न दम्पती के घर में, एक घरेलू सेविका के रूप में काम करती थी। माँ बनने के बाद, वह अपने बच्चों को अपने कार्यस्थल पर ले जाने लगी क्योंकि उनकी देखभाल के लिए उनकी झोंपड़ी पर कोई नहीं था। अच्छे स्वभाव एवं दूसरे की स्थिति को समझने वाले होने के कारण, उसके नियोक्ताओं ने उससे तनिक भी आपत्ति नहीं जताई।

जुड़वाँ बच्चों के पिता के विपरीत, उनकी माँ बहुत उत्सुक थी कि उन्हें स्कूल भेजा जाए। इसलिए, जब वे पाँच साल के थे, तो उसने उन्हें एक सरकारी विद्यालय में भर्ती कराया, जो निश्शुल्क शिक्षा प्रदान करता था। जल के साथ एक मछली की तरह, जुड़वाँ बच्चे अपने स्कूल के साथ सहज हो गए। चक्रवर्ती को अपनी माँ से विशेष रूप से लगाव था और इसलिए उसने विद्यालय जाने से पहले, अपने नियोक्ता के घर पर कुछ समय के लिए उसकी सहायता करने पर बल दिया। उधर राजा झोंपड़ी में झाड़ू लगाकर और अपनी माँ द्वारा भोजन पकाने के लिए उपयोग किए गए पात्रों को माँजने के बाद, स्कूल जाता था और अपने भाई से मिलता था।

धनिक दम्पती का एक बेटा था जो जुड़वा बच्चों के समान वय का ही था। उनके विवाह के पाँच साल बाद उसका जन्म हुआ था। उन्होंने उस पर प्रेम की वर्षा कर दी। महिला के गर्भ धारण करने से ठीक पहले, उन्होंने सन्तान-प्राप्ति के लिए एक साधु पुरुष का आशीर्वाद माँगा था। वह साधु इधर से

उधर भटकता था और भीख माँगकर प्राप्त भोजन से अपना भरण-पोषण करता था। इस कारण, वह व्यापक रूप से अकिञ्चन नाम से जाना जाता था; यह मानते हुए कि उनकी पत्नी ने उस सत्पुरुष के आशीर्वाद के कारण गर्भ धारण किया था, पति ने अपने बेटे का नाम अकिञ्चन रखा, जो एक अपार भाग्य का उत्तराधिकारी था। अकिञ्चन ने चक्रवर्ती से मित्रता की और दोनों ने हर प्रातःकाल कुछ समय एक-दूसरे के साथ बिताए।

जब चक्रवर्ती नौ साल का था, तब उनकी प्यारी माँ की मृत्यु हो गई। अपने बच्चों को छोटी-से-छोटी बात पर डाँटना और उनकी पिटाई करना, उनके पियक्कड़ व निकम्मे पिता का अभ्यास था। अपनी पत्नी के निधन होने के कारण, उन्हें पहले की तुलना में कम पैसे से काम चलाना पड़ा और इससे वह बहुत चिड़चिड़ा हो गया। वित्तीय स्थिति को सुधारने के लिए, चक्रवर्ती ने अपने स्कूल के समय से पहले और बाद में, प्रातः और सायंकाल, अकिञ्चन के घर पर काम करने लगा। उसके भाई राजा ने अपनी झोंपड़ी में खाना पकाने, झाड़-पोंछ और धोने का काम करने का तय किया।

अकिञ्चन और चक्रवर्ती बहुत अच्छे मित्र बन गए। एक दिन अकिञ्चन ने अपनी माँ से पूछा, “क्या मैं प्रतिदिन कार से चक्रवर्ती को अपने साथ ले जा सकता हूँ और उसे उसके स्कूल में छोड़ सकता हूँ? वैसे तो उसका विद्यालय लगभग मेरे विद्यालय के मार्ग में ही है।” “अवश्य,” उसकी माँ ने कहा, “मैं स्वयं यह सुझाव देना चाहती थी।” इसके बाद अकिञ्चन और चक्रवर्ती दोनों एक साथ विद्यालय के लिए निकलने लगे।

एक दिन, जिस कार में वे जा रहे थे, उसकी एक बड़ी दुर्घटना हो गई। चालक की स्थल पर मृत्यु हो गई। मलबे में अकिञ्चन के पैर जकड़ गए और तुरन्त ही उसमें आग लग गई। जब तक उसे आस-पास के कुछ उपकारी लोगों द्वारा बाहर निकाला जाता, तब तक उसे झुलसने से बड़े घाव हुए; उसके पैर बुरी तरह से क्षतिग्रस्त हो गए थे। चक्रवर्ती ने अकिञ्चन के माता-पिता को फ़ोन किया और उन्होंने एक एम्बुलेंस को बुलाया। वेदना से चीत्कार करते हुए, अकिञ्चन को चिकित्सालय ले जाया गया। वहाँ, डॉक्टरों

के पास शल्य-चिकित्सा प्रक्रिया से उसके पैरों को काटने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं था। विच्छेदन और व्यापक रूप से झुलसने के कारण, अकिञ्चन को बहुत पीड़ा झेलनी पड़ी। एक महीने की गहन पीड़ा के बाद, वह ठीक होता हुआ प्रतीत हुआ। अचानक, उसे निमोनिया (फेफड़ों की सूजन) हो गई। डॉक्टरों ने उसकी परिचर्या करने का पूरा प्रयास किया, परन्तु उससे उस पर कोई लाभदायक प्रभाव नहीं हुआ और वह चल बसा।

अकिञ्चन के माता-पिता उजाड़ हो गए थे। समय बीतने के साथ, उनका दुःख कुछ क्षीण हुआ, परन्तु हर बार जब वे अकिञ्चन के कक्ष से होकर जाते या उसमें प्रवेश करते, तब उन्हें बहुत दुःख होता और वे लगभग ध्वस्त हो जाते। छह महीने बीत जाने के बाद, वे उस पवित्र साधु, अकिञ्चन, के दर्शनार्थ गए। उन्होने उन्हें परामर्श दिया, "अपना घर बेच दो और दूसरे नगर में चले जाओ; एक बेटा भी गोद लो।" उन्हें वह परामर्श उचित लगा और उन्होंने उसके अनुसार आगे बढ़ने का निर्णय लिया।

अकिञ्चन की माँ ने अपने पति से कहा, "हम चक्रवर्ती को लम्बे समय से जानते हैं और वह निस्सन्देह एक सभ्य लड़का है। अकिञ्चन को उससे बहुत प्रेम था। किसी अनजान लड़के के स्थान पर, हम उसी को क्यों नहीं गोद ले लेते?" पति निःसंकोच सहमत हो गया, क्योंकि उसका भी चक्रवर्ती के बारे में अच्छा अभिप्राय था। उन्होंने अपने विचार के बारे में चक्रवर्ती से बात की और उसकी प्रतिक्रिया को अनुकूल पाते हुए, उसके पिता से सम्पर्क किया। उन्होंने चक्रवर्ती को गोद लेने की इच्छा व्यक्त की और उस व्यक्ति को प्रभूत धनराशि देने का प्रस्ताव रखा। उस अपव्ययी व्यक्ति को अपने बेटे से दूर होने में कोई संकोच नहीं था; जहाँ तक उसकी सोच थी, राजा तो वहाँ उनके घर में काम करने के लिए था ही।

चक्रवर्ती बचपन से ही रुग्ण रहता था, परन्तु प्रदूषणरहित पर्वतीय प्रदेश में अपने नए घर में प्राप्त पौष्टिक आहार और उत्कृष्ट चिकित्सा देखभाल के कारण, उसने शीघ्र ही शारीरिक बलिष्ठता प्राप्त कर ली। उसके गोद लेने वाले माता-पिता में, उसके प्रति गहरा स्नेह विकसित हो गया; उन्होंने उसे एक उत्कृष्ट

विद्यालय में भेजा और उसकी हर माँग को उत्सुकता से पूरा किया। उन्होंने कभी उससे कठोरता से बात नहीं की; उनके द्वारा उसे शारीरिक दण्ड देने का प्रश्न ही नहीं उठता था।

अकिञ्चन के लिए सब कुछ ठीक चल रहा था। फ़िर पैदा होने के उपरान्त, उसके द्वारा किसी बड़े दोष के न किए जाने पर भी, उस अच्छे लड़के ने अपने पैर खो दिए, हफ्तों तक अतीव पीड़ित रहा और अन्ततः, उसका निधन भी हो गया। दूसरी ओर, चक्रवर्ती व्याधि, निर्धनता, अपनी प्यारी माता की मृत्यु और अपने पिता के बुरे व्यवहार के कारण बहुत कष्ट झेलता था। उसने जन्म से लेकर अब तक कुछ भी दोष नहीं किया था ताकि उसे इतना कष्ट झेलना पड़े। अकिञ्चन के माता-पिता द्वारा उसे गोद लिए जाने के बाद, उसकी दशा पूरी तरह से बदल गई। जिस सड़क दुर्घटना के बारे में लड़कों को कोई भनक नहीं थी और जिस पर उनका कोई नियन्त्रण नहीं था, उसने मौलिक रूप से उनके जीवन का मार्ग बदल दिया। अकिञ्चन के अनुकूल रहे भाग्य ने, उससे मुँह मोड़ लिया। दूसरी ओर, जो भाग्य चक्रवर्ती से मुँह सिकोड़ता था, उसे देखकर मुस्कुराने लगा।

इस तरह के कई उदाहरण नियति की शक्ति — जो वास्तव में पिछले जन्म में व्यक्ति द्वारा किए गए, तथा वर्तमान जन्म में फलित होकर इस जन्म के कारण रहे, कर्म के अतिरिक्त कुछ और नहीं हैं — उसको उजागर करने के लिए दिए जा सकते हैं। इसी तरह, स्वतन्त्र इच्छा से प्रयुक्त प्रयास की शक्ति के पक्ष में उदाहरणों की कोई कमी नहीं है।

मद्र देश के धर्मपरायण और न्यायपूर्ण शासक अश्वपति, सन्तान-प्राप्ति का इच्छुक था। इसलिए, गायत्री मन्त्र का जप करते हुए, प्रतिदिन उसने अग्नि में सहस्रों हवियाँ प्रदान कीं। उससे प्रसन्न होकर, देवी सावित्री उसके सामने प्रकट हुईं और उन्होंने उससे कहा कि उसकी इच्छा पूरी होगी। कालान्तर में उसे एक पुत्री का जन्म हुआ। राजा ने देवी के सम्मान में, जिसने उस पर कृपा की थी, बेटी का नाम सावित्री रखा। जब वह बड़ी हो गई, तो राजा ने अपने मन्त्री के साथ उसे यात्रा पर भेजा ताकि वह एक भावी पति की

पहचान कर सके। जब वह लौटी, तो देवर्षि नारद अश्वपति के साथ थे। सावित्री ने कहा कि वह द्युमत्सेन के पुत्र सत्यवान् से विवाह करना चाहती है।

द्युमत्सेन अचल धर्मनिष्ठ था और वह शाल्व देश पर शासन किया करता था। वह और उसकी पत्नी भी सदैव सत्य ही बोलते थे। इसलिए, उन्होंने अपने इकलौते पुत्र का नाम सत्यवान् रखा। जब सत्यवान् बालक ही था, तब द्युमत्सेन ने अपनी दृष्टि खो दी। स्थिति का लाभ उठाते हुए, एक पड़ोसी राजा ने शाल्वदेश पर सफलतापूर्वक आक्रमण किया। परिणामस्वरूप, द्युमत्सेन को अपने बेटे और पत्नी के साथ जंगल जाने के लिए विवश होना पड़ा। सत्यवान् को जंगल में देखकर, सावित्री को लगा कि वह उसके लिए आदर्श पति है।

नारद ने कहा कि सत्यवान् बहुत रूपवान, इन्द्र के समान वीर, पृथ्वी के समान सहनशील और आत्मसंयमी हैं। ऋषि ने आगे बताया कि परन्तु उसमें एक बड़ी कमी है और वह यह है कि एक वर्ष में उनकी मृत्यु हो जाएगी। ऋषि की बात सुनकर, अश्वपति ने सावित्री से एक दूसरा पुरुष चुनने को कहा। फ़िर भी, सावित्री ने कहा, "मैंने एक बार उन्हें अपने पति के रूप में चाहा है। भले ही वे दीर्घायु हो या अल्पायु, मैं उनके बदले किसी अन्य व्यक्ति का चयन नहीं कर सकती।" नारद ने राजा से कहा, "सावित्री को अपने धर्मसङ्गत निर्णय से विचलित नहीं किया जा सकता। सत्यवान् में अनुपम गुण हैं। मेरा अभिप्राय है कि आपको उसे अपनी बेटी दे देनी चाहिए।"

अश्वपति ने द्युमत्सेन से सम्पर्क किया, उसकी स्वीकृति प्राप्त की और फ़िर, अपनी बेटी का सत्यवान् से विवाह किया। विवाह के बाद, सावित्री ने अपने गहने उतार दिए और जंगल में अपने जीवन के लिए एक साधारण गेरुए वस्त्र को धारण कर लिया। वह सत्यवान् के लिए एक आदर्श पत्नी और द्युमत्सेन और उनकी पत्नी के लिए एक आदर्श बहू सिद्ध हुई। उससे वे बहुत प्रसन्न थे।

ऋषि नारद ने सावित्री को सटीक क्षण निर्दिष्ट किया था जिस पर सत्यवान् अन्तिम साँस लेने वाला था। उसने इस बात की जानकारी अपने पति को नहीं दी। परन्तु, वह सतत चिन्तित थी कि क्या होने वाला है। निर्दिष्ट दिन से चार दिन पहले, उसने एक उपवास प्रारम्भ किया और निश्चल होकर खड़ी हो

गई। द्युमत्सेन द्वारा पूछे जाने पर, उसने उत्तर दिया कि वह एक व्रत का पालन कर रही है। उसने एक निवाला भी नहीं खाया और अन्तिम दिन तक वहीं रही जहाँ वह थी। उस प्रातःकाल, उसने औपचारिक रूप से अपना धार्मिक अनुष्ठान समाप्त कर दिया, परन्तु उसने घोषणा की कि वह सन्ध्याकाल तक खाना नहीं चाहती है।

जब सत्यवान् हवन के लिए समिधा एवं फूल और फल लाने जाने वाला था, तब सावित्री ने जंगल में उसके साथ जाने की इच्छा उससे व्यक्त की। सत्यवान् ने उससे पूछा, "तुमने अतीत में जंगल में कार्य नहीं किया है। मार्ग कठिन है। तुम अपने उपवास के कारण बलहीन हो गई हो। तुम दूर तक कैसे चल पाओगी?" सावित्री ने अनुरोध किया, "मैं उत्साही हूँ और अपने उपवास से थकी नहीं हूँ। इसलिए, कृपया मुझे आपके साथ जाने से मना न करें।" सत्यवान् ने उसकी इच्छा मान ली, परन्तु वह चाहता था कि अपने माता-पिता की स्वीकृति प्राप्त करे। सावित्री ने उनकी सहमति प्राप्त की और सत्यवान् के साथ चली गई।

घने जंगल में दोनों ने फूल इकट्ठे किए। फ़िर अपनी कुल्हाड़ी लेकर, सत्यवान् लकड़ी काटने के लिए आगे बढ़ा। कुछ समय बाद, उसने थकान का अनुभव किया। उसके सिर और अङ्गों में बहुत वेदना हुई और वह इतना निर्बल अनुभव कर रहा था कि खड़ा भी नहीं हो पा रहा था। उसने अपनी स्थिति सावित्री को बताई। वह दौड़कर उसके पास गई, और जैसे ही वह लेट गया, उसने अपना सिर उसकी गोद में रख लिया। सत्यवान् ने अपनी आँखें बन्द कर लीं।

उस समय, सावित्री ने एक तेजोमय साँवले व्यक्ति को पाश पकड़े हुए देखा। वह श्रद्धापूर्वक उठ खड़ी हुई और उनसे पूछी, "आपका शरीर मनुष्यों जैसा नहीं है। मुझे लगता है कि आप एक देव हैं। कृपया मुझे बताएँ कि आप कौन हैं।" उस तेजोमय व्यक्ति ने कहा, "मैं यमराज हूँ। तुम्हारे पातिव्रत्य और तपस्या के कारण, तुम मुझे देखने और मुझसे बातें करने में सक्षम हो। तुम्हारे पति का जीवनकाल समाप्त हो गया है। मैं उनका प्राण ले जाने आया

हूँ।" "हे देव, मैंने सुना है कि आपके दूत मनुष्यों की आत्मा को लेने का कार्य करते हैं। ऐसा क्यों है कि आप स्वयं आए हैं?" सावित्री ने पूछा। यम ने उत्तर दिया, "मेरे आने का कारण यह है कि सत्यवान् सद्गुणों का सागर है और धर्मनिष्ठ है।" फ़िर, ऋषि नारद द्वारा निर्दिष्ट सटीक क्षण में, यम ने सत्यवान् की आत्मा को वापस ले लिया; सत्यवान् की साँस थम गई।

अपने पति के प्रति समर्पण और अपने धार्मिक आचरणों के बल पर, सावित्री यम का अनुसरण करने में सक्षम थी और उसने ऐसा ही किया। यमराज ने उसे लौटने को कहा। हालाँकि, उसने कहा, "जहाँ मेरे पति जाते हैं या ले जाए जाते हैं, मैं भी उनके साथ जाऊँगी; यह धर्म के अनुसार है। सत्य को जानने वाले विद्वज्जनों ने घोषणा की है कि जब कोई व्यक्ति दूसरे के साथ चलता है, तो वे मित्रता से जुड़ जाते हैं। आपके साथ मेरे चलने से हमारे बीच उत्पन्न मेलभाव के बल पर, आपसे बात करना चाहती हूँ।" फ़िर उसने ऐसे शब्द बोले, जो यम को भा गए।

यम - मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। सत्यवान् के प्राण को छोड़कर कोई वरदान माँग लो।

सावित्री – मेरे ससुर की नेत्रदृष्टि और शक्ति वापस लौट आएँ।

यम – मैं तुम्हें वह प्रदान करता हूँ। अब लौट जाओ। स्वयं को कष्ट मत दो।

सावित्री – अपने पति के पास होने पर, मुझे कोई कष्ट अनुभव नहीं होता। मैं आपके साथ चलूँगी जहाँ भी आप उन्हें ले जाएँगे। यह कहा गया है कि एक अवसर पर भी सन्तों के साथ निकटता सबसे वाञ्छनीय है। उनके साथ मित्रता तो और भी अधिक मूल्यवान है। इस प्रकार, व्यक्ति को सदैव सन्तों की सङ्गति में रहना चाहिए।

उसके द्वारा सत्सङ्गति की प्रशंसा सुनकर और अपने पति तथा उनकी उपस्थिति में रहने की इच्छा व्यक्त करने पर, यम प्रसन्न हुए।

यम – दूसरा वर माँगो, परन्तु सत्यवान् के जीवन का वरदान मत माँगना।

सावित्री – कृपया मेरे ससुर को अपना राज्य पुनः प्राप्त करा दें और वे धर्ममार्ग से कभी भी विचलित न हों।

यम – तथास्तु। अब तुम लौट जाओ।

सावित्री – आप जैसे महान लोग तो शरण में आए शत्रुओं को भी क्षमा कर देते हैं। कृपया मुझ जैसे व्यक्ति पर दया करें।

यम – अपने पति के जीवन को छोड़कर, कोई भी वरदान माँग लो।

सावित्री – मेरे पिता, राजा अश्वपति, का कोई पुत्र सन्तान नहीं है। कृपया उन्हें एक पुत्र सन्तान का आशीर्वाद दें।

यम – जैसा तुम चाहती हो वैसा ही होगा। तुम बहुत दूर आ गई हो। अब लौट जाओ।

तब सावित्री ने यमराज की स्तुति की और अपने शब्दों से उन्हें प्रसन्न कर दिया।

यम - मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। अपने पति के जीवन की पनःप्राप्ति के अतिरिक्त, कोई चौथा वरदान माँग लो।

सावित्री – मेरे पति और मेरे शक्तिशाली एवं पराक्रमी पुत्र हों, जो हमारे वंश को आगे बढ़ाएँ।

यम ने उससे वह देने का वचन किया जो वह चाहती थी। तब सावित्री ने उनसे कहा कि पहले तीन वरदानों से विलक्षण, चौथे को उसके पति के जीवन को लौटाए बिना पूर्ण नहीं हो सकता है। वह एक पतिव्रता महिला होने के कारण, सत्यवान् के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष से पुत्र नहीं पैदा कर सकती थी। यम ने उसकी बात मानी और सत्यवान् की आत्मा को मुक्त कर दिया।

तब यम ने उससे कहा, "तुमने मुझे अपने धर्मसम्मत वचनों से पूर्ण तृप्ति दी है। सत्यवान् स्वस्थ बना दिया जाएगा और तुम्हारे द्वारा वापस लिए जाने के योग्य होगा। वह लम्बे समय तक तुम्हारे साथ रहेगा और अपने धर्मपालन से, महान प्रसिद्धि प्राप्त करेगा। तुम दोनों के पुत्र होंगे जो राजा बनेंगे।" इस वरदान को देने के बाद, यम चले गए।

सावित्री वापस अपने पति के शरीर के पास लौट आई और उसका सिर अपनी गोद में रखकर बैठ गई। सत्यवान् ने आँखें खोलीं। उसने सोचा कि वह बहुत समय तक सोया था और उसे आश्चर्य हुआ कि सावित्री ने उसे पहले क्यों नहीं जगाया। उसने कहा कि उसने एक गहरे रंग के व्यक्ति को देखा था और जानना चाहता था कि वह व्यक्ति कहाँ है। सावित्री ने उसे आश्वासन दिया कि वह उसे बाद में बताएगी। फ़िर, वह उसे अपने निवास पर वापस ले गई।

दम्पती के लौटने पर कुछ ऋषि द्युमत्सेन के साथ थे। उन्होंने सत्यवान् से पूछा, "तुम दोनों इतनी देर रात के बदले पर बहुत पहले वापस क्यों नहीं आए? तुम्हारे माता-पिता चिन्तित थे।" सत्यवान् ने उत्तर दिया कि वह सो गया था। एक ऋषि ने घोषणा की, "तुम्हारे पिता की दृष्टि अचानक ठीक हो गई है। सम्भवतः सावित्री इसका कारण बता सकती है।" उसने उन सभी घटित घटनाओं का वर्णन किया। अगले प्रातःकाल, द्युमत्सेन के पूर्व के प्रजा जंगल में आए और उससे मिले। उन्होंने उससे कहा, "हे राजन्, आपका शत्रु और उसका परिवार उसके ही मन्त्रियों द्वारा मार डाला गया है।" उन्होंने उससे शाल्व देश के साम्राज्य की बागडोर सम्भालने का अनुरोध किया। यम ने जो वचन दिया था, वह सब पूरा हो गया।

द्युमत्सेन के भाग्य के अनुसार, उसे अन्धा होना और जंगल में रहना था। सावित्री के प्रयासों से उसने अपनी दृष्टि और अपना राज्य पुनः प्राप्त कर लिए। अश्वपति के भाग्य में पुत्र नहीं थे। परन्तु, उसने प्राप्त किया। सत्यवान् को युवावस्था में मरना था, परन्तु वह लम्बे समय तक जीवित रहा; उसने पुत्रों को जन्म दिया और कई वर्षों तक शाल्व राज्य पर शासन किया। यह कहानी इस बात का जीता जागता उदाहरण है कि किस तरह से जो होना भाग्य में तय है, उसे मानवीय प्रयासों से निश्चित रूप सें बदला जा सकता है।

मार्कण्डेय के भाग्य में उसके 16 साल की उम्र में मृत्यु होनी थी, परन्तु भगवान शिव जी की उनकी भक्तिपूर्ण पूजा के कारण, वह जीवित रहा।

व्यास के पुत्र शुक इतने महान योगी थे कि उन्हें चुने हुए समय पर ही मुक्ति मिल गई थी। व्यक्तिगत प्रयास और भगवान की कृपा से, भाग्य के क्रम के परिवर्तन के कई उदाहरण आसानी से उद्धृत किए जा सकते हैं।

न तो नियति और न ही व्यक्तिगत प्रयास अकेले मानव जीवन की दिशा निर्धारित करते हैं; उनका एक दूसरे पर महान प्रभाव है। भाग्य — या अतीत के कर्म जो फलित होने लगे हैं — मानव प्रयास और दैवीय कृपा, ये मिलकर, जो कुछ भी होता है, उसे नियन्त्रित करते हैं। मनु ने भाग्य और व्यक्तिगत प्रयास की तुलना रथ के दो पहियों से की है; रथ एक पहिए पर नहीं चल सकता।

महाभारत युद्ध के बाद, कृष्ण पाण्डवों को भीष्म के पास ले गए, जो बाणों की शय्या पर लेटे थे, फ़िर भी तीव्रता से भगवान का ध्यान कर रहे थे। भगवान ने भीष्म को वेदना से मुक्त किया और उन्हें निर्बाध और पूर्ण ज्ञान प्रदान किया। फ़िर, उन्होंने भीष्म से उनसे पूछे गए प्रश्नों के उत्तर देने को कहा। युधिष्ठिर द्वारा पूछे गए प्रश्नों में से एक था, "भाग्य अधिक शक्तिशाली है या मनुष्य प्रयत्न?" अपने विस्तृत उत्तर में, भीष्म ने ब्रह्मा जी से वसिष्ठ द्वारा इसी तरह का प्रश्न पूछे जाने पर, ब्रह्मा जी के दिए गए उत्तर का उल्लेख किया।

उन्होंने कहा, "नियति की तुलना बीज से, और व्यक्तिगत परिश्रम की तुलना भूमि से, की जा सकती है। न तो बीजरहित भूमि में और न ही बिना बोए बीज से फसल होती है। बीज और मिट्टी के संयोजन से, फसलें बढ़ती हैं। नियति और पुरुष प्रयत्न के संयुक्त प्रभाव से लोग स्वर्ग चले जाते हैं।

"कर्म का कर्ता अपने कर्मों का फल भोगता है; सुख और दुःख क्रमशः अच्छे और बुरे कर्मों के फल होते हैं। किए गए कर्म का सदैव परिणाम होता है। यदि किसी के कर्म का कोई फल नहीं होता, तो सभी कार्य तुच्छ होंगे; केवल नियति पर निर्भर रहने से लोग आलसी हो जाएँगे।

"प्रयास से सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है, परन्तु जो मानव आलसी बनकर बैठा रहता है, उसे केवल भाग्य से कुछ भी नहीं मिल सकता। अच्छी तरह से निर्देशित मानवीय प्रयासों से, व्यक्ति स्वर्ग, भोग की वस्तुओं और अपनी इच्छाओं की पूर्ति को प्राप्त कर करता है। देवताओं ने प्रयत्न के बल पर मनुष्य की अपेक्षा अपने लिए उच्च स्थान प्राप्त किया। जिस प्रकार एक छोटी सी आग वायु की सहायता से बढ़ जाती है, उसी तरह निर्बल और अनुकूल भाग्य की क्षमता में बहुत बढ़ोत्तरी होती है जब भाग्य व्यक्तिगत परिश्रम से जुड़ा होता है। एक सज्जन व्यक्ति जो अपने प्रयासों में परिश्रमी है, वह उस धन को प्राप्त कर सकता है जो प्रतिकूल भाग्य द्वारा छिपा हुआ और परिरक्षित रहता है।

"एक पापी शीघ्र ही अपना बहुमूल्य लाभ खो देता है; मोह और लोभ में डूबे मनुष्य की सहायता भाग्य नहीं करता। एक मनुष्य ने भले ही अपने अनुकूल भाग्य से अपार धन, स्त्री और भोग की वस्तुएँ प्राप्त की हों, परन्तु वह निष्क्रिय बैठता, तो उनका आनन्द नहीं ले सकता है। जब तेल समाप्त हो जाता है, तब दीया बुझ जाता है। इसी तरह, मनुष्य-प्रयत्न के अभाव में, अनुकूल भाग्य अपना प्रभाव खो देता है। अनुकूल भाग्य एक ऐसे व्यक्ति का उत्थान नहीं कर सकता जो बुराई के मार्ग पर चलता हो; नियति में कोई अन्तर्निहित शक्ति नहीं है।

"जैसे एक शिष्य अपने गुरु का अनुसरण करता है, उसी प्रकार भाग्य द्वारा निर्देशित व्यक्ति का कर्म भी, उसके व्यक्तिगत प्रयास का अनुसरण करता है। व्यक्ति स्वयं ही स्वयं का मित्र है और स्वयं ही स्वयं का शत्रु है। सत्कर्म देवताओं का आश्रय है और इससे सब कुछ प्राप्त होता है। जो सदाचार में स्थित है, भाग्य उसके आड़े नहीं आ सकता है।"

54. भाग्य को टालने का एक अनुचित प्रयास

लूटपाट करने वाले एक व्यक्ति को पुलिस ने पकड़कर न्यायालय में प्रस्तुत किया। न्यायाधीश ने उसे दोषी पाया और उसे पाँच वर्ष की कठोर दण्ड सुनाया। उस व्यक्ति को जेल में डाल दिया गया और हर दिन काम पर रखा गया। उसने जेल के भोजन को उस स्वादिष्ट भोजन की तुलना में नीरस पाया, जिसका वह आदी था। वह मूल रूप से एक आलसी व्यक्ति था और उसे प्रतिदिन घंटों श्रम करने के लिए कहा जाता था। उसे घूमना-फ़िरना बहुत इष्ट था, परन्तु अब उसके पास ऐसा करने का अवसर नहीं था। कारागार के जीवन से खिन्न और पूरी तरह से निराश होकर उसने भागने का मन बना लिया।

उसने एक योजना बनाई और उपयुक्त अवसर के लिए अपने समय की प्रतीक्षा की। अवसर मिलते ही वह दो रक्षकों पर गम्भीर प्रहार करके फरार हो गया। वह जेल से दूर भागकर दूसरे नगर में चला गया और वहाँ भेष बदलकर रहने लगा। उसने कदाचित् अपनी स्वतन्त्रता का आनन्द पाना प्रारम्भ किया था कि तभी एक पुलिस दल उसकी खोज में वहाँ आ गया। उसने भागने का प्रयास किया परन्तु वह पकड़ा गया। अपने कारागृह से भागने के कारण, उसने न केवल अच्छे व्यवहार के कारण पहले से निर्धारित समयावधि से पूर्व मुक्त होने का अवसर खो दिया, अपितु अतिरिक्त जेल की अवधि भी प्राप्त की।

कुछ लोग, जिन स्थितियों में स्वयं को पाते हैं, उनसे उत्पीड़ित होते हुए, आत्महत्या को बचने का एक साधन मानते हैं। हालाँकि, शास्त्र चेतावनी देते हैं कि आत्महत्या अत्यधिक पापपूर्ण है। उसे करने से व्यक्ति दुःख को टालने में सफल नहीं होता, क्योंकि उसे मृत्यु के बाद, और अधिक कष्ट झेलने पड़ते हैं। पिछले जन्मों के कर्म जो फल देने लगे हैं, उनके द्वारा वर्तमान जन्म लाया गया है। यदि कोई अपने जीवन को समाप्त करके पिछले दुष्कर्मों के परिणाम से बचने का प्रयास करता है, तो उसकी स्थिति

उस कहानी के उस व्यक्ति जैसी होगी, जिसने भागकर जेल में अपने दुःखी जीवन को समाप्त करने का प्रयास किया था। स्वयं के भाग्य से भागने का प्रयास करना स्वतन्त्र इच्छा का एक दोषपूर्ण प्रयोग है और वह अवश्य विफल होगा।

55. प्रतिकूल भाग्य से निपटने का मार्ग

एक व्यक्ति ने अपने जीवन में पहली बार कुछ पैसे चुराए। वह शङ्काओं से पीड़ित था। उसकी अन्तरात्मा ने उसे सताया; उसने यह भी सोचा, "क्या लोगों को पता चल जाएगा कि मैं चोर हूँ?" हालाँकि, आसानी से पैसा कमाने के अनुभव ने उसे दुबारा चोरी करने के लिए प्रेरित किया। इस बार, उसे पहले से कम डर लगा और अपनी अन्तरात्मा द्वारा कम क्लेश का सामना करना पड़ा। समय बीतने के साथ, वह एक पूरे चोर के रूप में विकसित हो गया; उसकी अन्तरात्मा ने उसे सताना बन्द कर दिया और उसने किसी भय या घबराहट का अनुभव नहीं किया।

कर्म दो प्रकार के परिणाम देते हैं। पहला दृष्ट फल है। उदाहरणार्थ, जब कोई व्यक्ति भरपेट भोजन करता है, तो उसकी भूख शान्त हो जाती है। दूसरा परिणाम तत्काल प्रकट नहीं होता; वह उस कृत्य को फ़िर से करने की प्रवृत्ति का उत्पादक है। उदाहरण के लिए, जिसने मिठाई का स्वाद चखा है, उसे किसी अन्य अवसर पर उसे खाने की इच्छा होती है।

कार्यवाही का प्रकार जो भी हो, उससे प्रवृत्तियाँ विकसित होती हैं। इसलिए, जो व्यक्ति अच्छा जीवन जीना चाहता है, उसके लिए अच्छी प्रवृत्तियों को विकसित करना बुद्धिमानी होगी। प्रतिकूल भाग्य किसी की बुरी प्रवृत्तियों को उत्तेजित करने वाली परिस्थितियों को उत्पन्न करके, उसे भटका देता है। प्रयत्न करके और दृढ़ एवं अच्छी प्रवृत्तियों को विकसित

करके, कोई भी बुरी प्रवृत्तियों को रोक सकता है। जब कोई ऐसा करने में सफल हो जाता है, तब प्रतिकूल भाग्य उसे अधर्म के मार्ग पर ले जाने में सक्षम नहीं रह जाता है।

योगवासिष्ठ में कहा गया है, "यदि आप अच्छी प्रवृत्तियों की बाढ़ में बह जाते हैं, तो आप सर्वोच्च अवस्था को प्राप्त कर लेंगे। यदि कोई बुरी प्रवृत्ति आपको विपत्ति की ओर ले जाती है, तो आपको उसे अपने प्रयास से पराजित करना होगा। प्रवृत्तियों की नदी शुभ और अशुभ मार्गों पर बहती है। पुरुष-प्रयत्न से, उसे शुभ मार्ग से जोड़ा जाना चाहिए।"

चित्तशुद्धि और वैराग्य की ओर

56. चित्तशुद्धि आवश्यक है

दो मित्र थे। उनमें से एक अपना समय धार्मिक कार्यों में बिताता था। दूसरे में महिलाओं के प्रति लम्पटता थी और वह वेश्याओं के यहाँ जाता था। उसने बार-बार स्वयं को सुधारने का प्रयास किया, परन्तु लोभ बढ़ता ही गया। वह अपने आप पर लज्जित हुआ और अपने मित्र से ईर्ष्या करने लगा। यहाँ तक कि किसी वेश्या के साथ होने पर भी, उसने अपने मित्र के पवित्र कार्यों पर चिन्तन किया और स्वयं को पवित्र नहीं होने के कारण धिक्कारता रहा। दूसरी ओर, जप या पूजा करते समय, धार्मिक व्यक्ति इस बात का विचार करता था कि उसका साथी क्या करता है।

उन दोनों की मृत्यु के बाद, धार्मिक व्यक्ति ने स्वयं को नरक में पाया; उसका मित्र स्वर्ग में पहुँचा। धर्मपरायण व्यक्ति ने परिवाद किया कि उसके साथ बड़ा अन्याय हुआ है, जबकि उसके साथी को अकारण पुरस्कृत किया गया है। उसे बताया गया, "तुम्हारा मित्र कामुक सुखों के आगे झुकते हुए भी तुम्हारी ईश्वर की पूजा के बारे में सोचता रहा। उसके अच्छे विचारों ने उसे स्वर्ग में पहुँचा दिया। तुमने ईश्वर की पूजा करते हुए भी, पाप कृत्यों पर चिन्तन किया। नरक वह स्थान है जहाँ तुम्हारे गन्दे विचारों ने तुम्हें पहुँचाया है।"

इस कथा की शिक्षा यह है कि केवल धार्मिक कृत्यों में संलग्न रहना पर्याप्त नहीं है और बुरे विचारों को तनिक भी स्थान न देना आवश्यक है। इस कहानी से यह अनुमान लगाना त्रुटिपूर्ण होगा कि मन में अच्छे विचार हों, तो दुराचार विनाशकारी नहीं होते।

(भौतिक कारक मन को प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए, पूर्ण विश्वास के साथ गङ्गा में स्नान, व्यक्ति को न केवल शारीरिक रूप से, अपितु आध्यात्मिक रूप से भी शुद्ध करता है। भोजन का मन पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। इन पहलुओं पर अगले तीन कथाओं में विचार किया गया है।)

57. महापावनी गङ्गा

एक बार शिव और पार्वती काशी के ऊपर आकाशमार्ग से जा रहे थे। पार्वती ने कई लोगों को गङ्गा जी में स्नान करने हेतु एक दूसरे के साथ होड़ लगाते हुए देखा। उन्होंने प्रभु से पूछा, "इतने सारे लोग गङ्गा जी में स्नान कर रहे हैं। उनका मानना है कि उनका स्नान उन्हें उनके पापों से छुटकारा दिलाता है। क्या यह सच है कि गङ्गा जी उनके पाप धो देती है? यदि ऐसा है, तो क्या लोग जानबूझकर पाप नहीं करेंगे और फ़िर अपने दुष्कर्मों के परिणामों से मुक्त होने के लिए, गङ्गा जी में स्नान नहीं करेंगे?" प्रभु ने उत्तर दिया, "मैं आपको समझाऊंगा। परन्तु, पहले आप एक बूढ़ी महिला का रूप धारण करें। मैं एक असहाय पुरुष के रूप में प्रकट होऊंगा जो आपका पति है और जल में डूब रहा है। हम सहायता के लिए चिल्लाएँगे।" फ़िर उन्होंने पार्वती को कुछ और निर्देश दिए।

तदुपरान्त, पार्वती गङ्गा जी के पास खड़ी हो गाईं, और अपने डूबते पति की ओर सङ्केत करते हुए चिल्लाईं, "क्या मेरे पति को कोई नहीं बचाएगा?" उसी क्षण, बड़ी सङ्ख्या में लोग तेज़ी से जल में उतरे। जैसा कि पहले ही निर्देश दिया गया था, पार्वती ने उन लोगों को चेतावनी दी, "किसी निष्पाप व्यक्ति के अतिरिक्त कोई मेरे पति को छू नहीं सकता है। इसलिए, पापियों को आगे बढ़ने की आवश्यकता नहीं है।" एक व्यक्ति को छोड़कर सभी पीछे हट गए। उस व्यक्ति ने गङ्गा जी में कूदकर उनके पति को बाहर निकाला।

पार्वती ने उसकी सहायता के लिए धन्यवाद दिया, परन्तु तुरन्त ही यह पूछ बैठीं, "मैंने कहा था कि केवल एक निष्पाप व्यक्ति मेरे पति को छू सकता है। आपने उन्हें कैसे छुआ? क्या आप निष्पाप हैं?" उस व्यक्ति ने उत्तर दिया, "हाँ, मैं पापरहित हूँ। मैंने गङ्गा जी में छलांग लगाई और उसके बाद ही आपके पति को बचाया। एक बार जब मैं गङ्गा जी के सम्पर्क में आया, तो मेरे सारे पाप धुल गए।" पार्वती और शिव फ़िर आकाशमार्ग से चले गए। शिव ने उन्हें सम्बोधित करते हुए कहा, "यदि किसी व्यक्ति में इतनी गहरी आस्था है, तो गङ्गा जी निश्चित रूप से उसके पापों को धो देंगी।"

गङ्गा जी लोगों को शुद्ध करती हैं। जब उनकी शरण में जाने वाले व्यक्ति की श्रद्धा प्रगाढ़ होती है, तो वह उससे बहुत लाभान्वित होता है। परन्तु, इसका अर्थ यह नहीं है कि यदि कोई जानबूझकर पाप करता है और फ़िर गङ्गा जी में स्नान करता है, तो वह पापों से छुड़ा दिया जाएगा।

58. मन पर आहार का प्रभाव

किसी छोटे से आश्रम में एक योगी रहते थे। प्रतिदिन वे आहार के लिए भिक्षाटन करते और जो मिले, उसे ग्रहण करते थे। इस प्रकार, वे एक शान्त और नीरवतापूर्ण जीवन बिताते थे। वहाँ के राजा के मन में उन मुनि के लिए बहुत सम्मान था। एक दिन, उसने भिक्षा के लिए उन तपस्वी को अपने महल में आमन्त्रित किया। संन्यासी ने कहा, "हे राजन्! मैं भीख माँगकर प्राप्त भोजन ही खा रहा हूँ। मुझे नहीं पता कि अगर मैं आपके महल में कुछ भी खाऊंगा, तो उससे मेरा मन कैसे प्रभावित होगा। इसलिए, मुझे लगता है कि आपके निमन्त्रण को अस्वीकार करना मेरे लिए सबसे अच्छा है।"

हालाँकि, शासक के बार-बार के अनुरोधों के उत्तर में, वे मान गए। जब तपस्वी अपने भोजन के बाद हाथ धो रहे थे, तो उनकी दृष्टि एक मोतियों के हार पर पड़ी। यह देखते हुए कि कोई भी उन्हें नहीं देख रहा है, उन्होंने उसे उठाया और अपने कमण्डलु में डाल दिया। फ़िर, वे बड़े कक्ष में गए, उन्होंने राजा को आशीर्वाद दिया और अपने आश्रम में लौट आए। कुछ समय बाद ही वे अपने कृत्य पर विचार करने लगे।

इस बीच, रानी ने उस कण्ठहार के खो जाने के बारे में राजा से परिवाद किया, जिसे उसने स्नानगृह में छोड़ दिया था। राजा ने स्थिति का विश्लेषण किया और यह निष्कर्ष निकाला कि सेवकों में से एक ने इसे चुराया होगा। उनसे सच्चाई उगलवाने के लिए, राजा ने उन सेवकों की कड़ी पिटाई करने

की विधि अपनाई। सेवक अपने निर्दोष होने की दुहाई देते रहे। जब उनमें से एक ने परामर्श दिया कि वे मुनि चोर हो सकते हैं, तब सम्राट क्रोधित हो गया।

आश्रम में, तपस्वी व्यग्र थे। "मैंने आज क्या कुत्सित कर्म कर दिया है! किसके लिए मैंने हार चुराया? यदि मैं इसे पहनकर भिक्षा के लिए जाऊँ, तो निश्चित रूप से कोई भी मुझे भोजन नहीं देगा। अगर मैं इसे यहाँ छोड़ दूँ, तो कोई इसे चुरा सकता है। मैं चौर्योन्मादी क्यों बन गया? मैंने कई हार देखें हैं, परन्तु उनको पाने की इच्छा से कभी प्रभावित नहीं हुआ था। आज एक लालसा पैदा हुई है; इस तथ्य का तात्पर्य यही है कि मेरा मन अशुद्ध हो गया है। क्या कारण हो सकता है?" उन्होंने विचार किया। उनकी समझ में आया कि उस दिन उन्होंने जो भोजन किया था, वह उनकी मानसिक अशुद्धि का कारण रहा होगा।

वे बलात् वमन करके राजा के पास गए। राजमहल में कोलाहल देखकर उन्होंने उसका कारण पूछा। राजा ने उत्तर दिया कि किसी ने भी यह स्वीकार नहीं किया था कि उसने खोया हुआ हार चुराया था। योगी ने कहा, "ये निर्दोष लोग कैसे दोषी होंगे? यह कण्ठहार ले लीजिए," और पश्चात्तापी तपस्वी बोलते रहे, "मैं, चोर, आपके लिए लाया हूँ।"

स्तब्ध होकर राजा ने संन्यासी से पूछा, "आप एक महान सन्त हैं। क्या आपके लिए यह उचित है कि आप हार उठा लें? इसके अतिरिक्त, क्या हुआ कि आप इसे वापस ले आए? मैं पूरी तरह से भ्रमित हूँ। कृपया स्पष्ट करें।" मुनि ने उत्तर दिया, "प्रारम्भ में, मैंने आपके महल में भिक्षा के लिए आपके निमन्त्रण को अस्वीकार कर दिया था। तथापि, मैंने अन्ततः आपके अनुरोध को स्वीकार कर लिया। परिणाम यह हुआ कि इतने सारे लोगों को अनावश्यक पीटा गया है और मैंने कुख्याति कमाई है। हे राजन्! आपने अपने धान्यागार में इतने चावल जमा कर रखे हैं। मुझे सन्देह है कि क्या आपने इसे न्याय विधि से एकत्र किया है।" "मुझे यह कहने के लिए खेद है कि इतना चावल इकट्ठा करने के लिए अनुचित साधनों को नियोजित किया गया है," सम्राट ने सच्चाई से उत्तर दिया। "मैंने इस चावल को केवल एक दिन खाया और तब भी यह मेरे मन को कलुषित करने के लिए पर्याप्त था," योगी ने कहा। "ऐसे में, मैं आप सभी पर,

जो इसे प्रतिदिन खाते हैं, इसके प्रभाव के बारे में सोचकर चौंक जाता हूँ। इसलिए, कृपया मुझे इसके बाद, भोजन के लिए आमन्त्रित न करें। मैं भीख माँगकर अपना भोजन प्राप्त करूँगा जैसा कि मैंने अब तक किया है।" "क्या भिक्षा का भोजन भी अशुद्ध नहीं हो सकता?" राजा ने पूछा। "भोजन अशुद्ध हो सकता है, परन्तु वह केवल तब तक जब तक कि उसे मेरे भिक्षपात्र में नहीं डाला जाता। ऐसा शास्त्रों का निर्णय है," ऋषि ने स्पष्ट किया।

यह कहानी दर्शाती है कि आहार मन को प्रभावित करता है। खाद्य पदार्थों को सात्त्विक, राजस और तामस के रूप में वर्गीकृत किया गया है। सात्त्विक भोजन शुद्ध होता है तथा शक्ति और अच्छा स्वास्थ्य प्रदान करता है; दही सात्त्विक आहार का एक उदाहरण है। राजस खाद्य इच्छा और क्रोध को उत्तेजित करता है; कटु पदार्थ इसके उदाहरण हैं। तामस भोजन से सुस्ती, नींद आदि आते हैं; दुर्गन्धयुक्त खाद्य और उच्छिष्ट पदार्थ तामस आहार के उदाहरण हैं। रसोइया की मानसिकता और बालों का एक रोम जैसे दोषपूर्ण कारकों की उपस्थिति भी, आहार की शुद्धता पर प्रभाव डालते हैं। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि ठीक से पकाए गए सात्त्विक आहार का ही सेवन करें।

59. प्राण बचाने को छोड़ कर, अशुद्ध आहार से बचना चाहिए

एक बार, कुरु प्रदेश में फसलें आंधी-तूफान से नष्ट हो गईं। फ़िर अकाल पड़ गया। बहुत तनावपूर्ण परिस्थितियों में होने के कारण, वैदिक विद्वान उषस्ति चाक्रायण ने आश्रय माँगा और किसी गाँव के एक घर में रहा। भोजन के लिए भटकते समय, वे उस गाँव में रहने वाले एक महावत से मिले। महावत घटिया गुणवत्ता की काली दाल खा रहा था। भुखमरी से उत्पीड़ित, चाक्रायण ने उससे खाने के लिए कुछ दाल माँगी। महावत ने उत्तर दिया, "मैं

जिस पात्र में से खा रहा हूँ, उसमें जो दालें हैं, उनके अतिरिक्त मेरे पास और कोई दाल नहीं है। आप क्या कहते हैं मुझे क्या करना चाहिए?"

चाक्रायण ने उत्तर दिया, "उन्हें मुझे दे दो।" उससे पाकर, उन्होंने महावत के बचे हुए भोजन को खा लिया। महावत ने तब चाक्रायण को पानी दिया। हालाँकि, चाक्रायण ने यह कहते हुए उसे स्वीकार करने से मना कर दिया, "अगर मैं इसे पीता हूँ, तो मैं अनुचित काम करूँगा, क्योंकि मैं ऐसा पानी पी रहा होऊँगा जो दूसरे द्वारा आंशिक रूप से पिया गया है।" महावत ने पूछा, "क्या आपने जो दालें खायीं, वे मेरे भोजन के अवशेष नहीं थीं?" चाक्रायण ने स्पष्ट किया, "यदि मैंने उन्हें नहीं खाया होता, तो मैं भोजन के अभाव से मर जाता। हालाँकि, मुझे शुद्ध पानी कहीं और मिल सकता है।"

चाक्रायण उन्हें दी गई दाल का एक भाग अपनी पत्नी के पास ले गए। पत्नी पहले से ही कुछ अच्छा खाना खा चुकी थी, जिसे वह भीख माँगकर प्राप्त करने में सफल रही थी। परन्तु, चूँकि चाक्रायण के प्रति अनादर दिखाना नहीं चाहती थी, इसलिए जो उन्होंने उसे दिया, उसने उसे स्वीकार कर लिया। फ़िर, उसने दालों को बचाकर रख लिया। अगले दिन, चाक्रायण ने उससे कहा, "अगर मैं कुछ आहार प्राप्त कर पाता हूँ, तो मैं उसे खाकर शक्ति प्राप्त करूँगा। तब मैं राजा द्वारा किए जाने वाले यज्ञ में जाने की स्थिति में होऊँगा। मुझे योग्य समझकर, वे मुझे ऋत्विक् के कार्यों में नियोजित करेंगे और मुझे पुरस्कृत करेंगे।" उनकी पत्नी उन दालों को ले आई जो उसने बचाकर रखा था और कहा, "ये वो काली दालें हैं जो आपने मुझे दी थीं।" चाक्रायण ने उन्हें खा लिया। फ़िर वे यज्ञ में गए। वहाँ, अनुष्ठान और सम्बन्धित क्रिया-विधि और ध्यान-उपासनाओं के बारे में उनके ज्ञान की अत्यधिक प्रशंसा की गई। उन्हें पुरस्कृत किया गया।

सामान्यतः, एक व्यक्ति को केवल शुद्ध सात्त्विक आहार सेवन करना चाहिए। छान्दोग्य-उपनिषद् की इस कहानी से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि किसी महान व्यक्ति के लिए, स्वयं को भूखा मरने से बचाने के लिए, उच्छिष्ट जैसे निषिद्ध आहार को खाने की अनुमति है, परन्तु वह बाध्यकारी नहीं है। ऐसा करने से उसे कोई पाप नहीं लगेगा। हालाँकि, यदि

वह आजीविका के उचित साधन उपलब्ध होने पर भी, निषिद्ध वस्तुओं का उपभोग करे, तो वह निन्दनीय रूप से कार्य कर रहा होगा; इसलिए, चाक्रायण ने दूषित पानी पीने से मना कर दिया।

60. गृहस्थ का आचरण कैसा होना चाहिए

एक जिला कलेक्टर व्याकुल था। उसके कार्यालय में उसे यूँही मिलने आए उसके मित्र ने उसकी व्याकुलता को पहचाना और पूछा, "आपकी समस्या क्या है?" कलेक्टर ने कहा, "मेरी पत्नी और मेरे बच्चे व्याधिग्रस्त हैं। पहले मेरा बेटा रुग्ण हुआ और उसका संक्रमण दूसरों में फैल गया।"

मित्र - क्या तुमने डॉक्टर को नहीं बुलाया?

कलेक्टर - अवश्य, मैंने बुलाया। उन्होंने औषधियाँ लिखीं और कहा कि वे कुछ दिनों में ठीक हो जाएँगे।

मित्र - एक चौथाई एकड़ वाले घर में रहने वाले मात्र चार लोगों की व्याधि से तुम इतने चिन्तित हो। तो तुम अपने अधिकार क्षेत्र में आने वाली समस्याओं से कैसे निपटते हो, जो अनेक सहस्र एकड़ विस्तार वाला है और जहाँ लाखों की जनसङ्ख्या है? यदि वास्तव में तुम्हारे क्षेत्र में महामारी हो, तो तुम्हारी स्थिति क्या होगी?

कलेक्टर - मैं स्वास्थ्य विभाग को सूचित करूँगा। जाँच की जाएगी और रोग की पहचान — हैजा, प्लेग या किसी और अन्य के रूप में — होगी। स्वच्छता-सहित उपचार और निवारक-उपाय युद्ध स्तर पर किए जाएँगे। मैं एक शान्त मस्तिष्क के साथ ऐसी स्थिति को कुशलतापूर्वक सम्भाल लूँगा।

मित्र - अगर इतनी बड़ी एवं व्यापक समस्या को तुम बिना घबराए निपटा सकते हो, तो तुम एक ही घर के चार सदस्यों तक सीमित छोटी समस्या को लेकर इतने व्याकुल क्यों हो?

कलेक्टर - दूसरों के विपरीत, जो लोग अभी व्याधिग्रस्त हैं, वे मेरे अपने हैं।

गहरे लगाव और इस भावना — "यह व्यक्ति या पदार्थ मेरा अपना है" — का हानिकारक प्रभाव ऐसा है कि कड़े परिश्रम से और कुशलता से, बिना किसी हानि के अपने आधिकारिक कर्तव्यों का निर्वहन करने वाले कलेक्टर के सामने जब विचार अपनी पत्नी और बच्चों की आई, तब वह अक्षम हो गया और चिन्ता से घिर गया।

एक तीर्थयात्री, अपने नगर जाने के मार्ग में एक धर्मशाला में रुका। उसने वहाँ पर परोसे गए निःशुल्क भोजन ग्रहण करके अपनी भूख का शमन किया। फ़िर, अच्छा काम करके पुण्य कमाने का इच्छुक, वह वहाँ आने वाले तीर्थयात्रियों को भोजन परोसने में वहाँ के कर्मचारियों के साथ मिल गया। इसके बाद, उसने उस स्थल को स्वच्छ करने में सहायता की। रात में सो जाने के पहले, वह दूसरों के साथ बात-चीत में लगा रहा, उन लोगों के प्रति सहानुभूति व्यक्त की जिन्होंने उसे अपनी व्यक्तिगत समस्याएँ बताईं और उन्हें लाभकारी सुझाव भी दिए।

उसने ऐसा बर्ताव किया जैसे कि वह धर्मशाला उसका घर हो और वहाँ के लोग उसके परिवार के सदस्य हों। फ़िर भी, उसका मन पूरी तरह से शान्त था और वह अगले प्रातःकाल, बिना किसी झिझक या खेद के चला गया। अपने घर लौटने के बाद, एक व्यक्ति ने उससे पूछा, "तुमने कल रात कहाँ बिताई थी?" "धर्मशाला में," उसने उत्तर दिया। "वहाँ क्या हुआ?" उसके सम्बन्धी ने पूछा। "कुछ महत्त्व की बात नहीं। मैंने वहीं खाया, सोया और चला गया। बस इतना ही।"

एक विवाहित व्यक्ति के कई कर्तव्य और उत्तरदायित्व होते हैं और उसे अपने परिवार को पीड़ित करने वाली कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। शास्त्र और भगवत्पाद जी ने उन्हें बिना किसी लगाव के अपने पारिवारिक जीवन बिताने का परामर्श दिया है। वह जब अपने कार्यालय से जुड़े कार्यों में लगा हो, तब उसे अपने कर्तव्यों के पालन में उपर्युक्त कलेक्टर की तरह होना चाहिए और धर्मशाला में अपने प्रवास के समय उस तीर्थयात्री की तरह होना चाहिए। तब तो वह प्रभावी ढंग से और कुशलता

से अपने कर्तव्यों का पालन करेगा और परिवार की समस्याओं का सामना करेगा, वह भी किसी मानसिक पीड़ा के बिना।

61. आचरण और मानसिक प्रतिक्रियाओं में एकरूपता

एक व्यक्ति ने कई लोगों को भोजन के लिए आमन्त्रित किया। उसके अतिथिओं में से एक युवा था जो हृष्ट पुष्ट था व अधिक भोजन ग्रहण करने वाला था। दूसरा एक बच्चा था जिसे बहुत कम भोजन की आवश्यकता थी। एक अतिथि को मिठाइयाँ इष्ट थीं जबकि दूसरे को वे इष्ट नहीं थी। आतिथेय ने सोचा, “मुझे अपने अतिथियों के बीच भेदभाव नहीं करना चाहिए। तो मुझे उनमें से हर एक को समान मात्रा में भोजन परोसना चाहिए।” परिणामस्वरूप, भोजन के अन्त तक, अधिक खाने वाले युवक को आश्चर्य हुआ और उसने सोचा, “मुझे क्यों आमन्त्रित किया गया और फ़िर भूखा रखा गया?” बच्चे का — जिसे उसके माता-पिता ने भोजन व्यर्थ न करने की शिक्षा दी थी — पेट फूल गया और पेट में तेज़ वेदना हुई। मिठाई अभिलषित न करने वाले व्यक्ति ने बड़बड़ाते हुए कहा, “मुझे एक बार नहीं, किन्तु तीन बार क्यों मीठा परोसा गया, और वह भीयो तब जब कि मेरे यह सङ्केत देने पर भी कि मुझे वह नहीं चाहिए?” कोई भी अतिथि सन्तुष्ट नहीं था। दूसरी ओर, एक और आतिथेय ने अपने अतिथियों को उनकी आवश्यकताओं और स्वाद के अनुसार परोसा। उनकी कार्यशैली ने यह सुनिश्चित किया कि उनके प्रत्येक अतिथि की भूख और उनके स्वाद को सन्तुष्ट किया जाए। सब प्रसन्न होकर चले गए।

लोग मनोरञ्जन के लिए एक नृत्यमण्डप में जाते हैं, परन्तु सभी की रुचि एक जैसी नहीं होती। किसी को कर्ण के पात्र का अभिनय कर रहे पात्रधारी को देखकर प्रसन्नता होती है; दूसरे को भीष्म के चित्रण में आनन्द आता है। पहले वाले को वीर-रस के प्रति आकर्षण है, जबकि दूसरे में शान्त-रस के प्रति झुकाव है। हालाँकि ऐसा होते हुए भी, अलग-अलग व्यक्तियों के आनन्द में एक समानता है।

एक व्यक्ति को अपने धर्म का निरन्तर पालन करने और अधर्म को त्यागने का निर्देश शास्त्रों में दिया गया है। उदाहरणार्थ, कृष्ण अर्जुन से कहते हैं, "अपने स्वधर्म पर दृढ़ रहकर, मनुष्य श्रेय प्राप्त करता है।" एक ऐसे व्यक्ति के आचरण में निश्चित रूप से समानता होती है जो सदैव निषिद्ध कार्य से दूर रहता है और उन कार्यों को करता है जो उसे अलग-अलग व्यक्तियों के प्रति और विभिन्न परिस्थितियों में करना चाहिए। व्यवहार में ऐसी समानता रखने वाला व्यक्ति उस नृत्य-नाटक के समान होता है जो समान रूप से दर्शकों के विभिन्न सदस्यों का मनोरञ्जन करता है और उस आतिथेय की तरह होता है जो अपने सभी अतिथियों की भूख और रूचि को समान रूप से सन्तुष्ट करता है।

प्रायः, किसी का मन इच्छाओं और द्वेषों से भरा होता है। राग और घृणा से प्रभावित होकर, लोग अधर्म के मार्ग पर भटक जाते हैं। दुर्योधन के प्रति लगाव के कारण, धृतराष्ट्र ने विदुर के हितप्रद परामर्शों का पालन नहीं किया। यहाँ तक कि जब दुर्योधन और भीम बालक थे, तब भी द्वेष के मारे, दुर्योधन ने भीम को मार डालने का प्रयास किया। इस प्रकार, राग और द्वेष आचार-व्यवहार में सच्ची समानता के प्रति बाधाएँ हैं।

यदि कोई व्यक्ति लगाव और घृणा से छुटकारा पा लेता है, तो संसार के प्रति उसकी मानसिक प्रतिक्रियाओं में एकरूपता का लक्षण होता है; वह मित्रतापूर्ण व्यक्ति के प्रति लगाव और प्रतिरोधी व्यक्ति के प्रति घृणा अनुभव नहीं करता है। जब कोई व्यक्ति राग और द्वेष से मुक्त होता है, तब वह सदैव धर्म-मार्ग पर चलता है; उसके आचरण में एकरूपता होती है। मानसिक स्तर पर समता विकसित करने की दिशा में, आचरण में एकरूपता एक महत्त्वपूर्ण पग है। इस प्रकार, मानसिक प्रतिक्रियाओं में समानता और आचरण में एकरूपता जुड़ी हुई हैं।

62. कर्म-योग

तीन भाई छुट्टियों में एक पहाड़ी प्रदेश गए और एक घर में रुके, जिसे उन्होंने अपने लिए पंजीकृत किया था। एक रात जब वे गहरी नींद में थे, एक प्रचण्ड भूकम्प ने उस क्षेत्र में विध्वंस मचा दिया। उस घर की छत गिर गई और वे तीनों मर ही जाते, यदि छत की तुला दण्ड का एक भाग कमरे के फर्नीचर पर आकर न अटकता। उस चरचराने की ध्वनि सुनकर भाईयों को लगा कि छत उनपर कुछ पल में गिरने ही वाली है। सहायता के आने तक उनके अपने स्थान पर बने रहने का प्रश्न ही नहीं था।

वे कक्ष के बाहर जाने वाले दो द्वारों की ओर मुड़े। बिजली के शॉर्ट सर्किट के कारण उनमें से एक के पास आग लग गई थी। आग की लपटें फैल रही थीं। खिड़कियों से टूटे शीशे के टुकड़े दूसरे द्वार की ओर जाने के मार्ग पर बिखरे हुए थे। एक भाई आग वाले द्वार की ओर भागा। वह बाहर भागने में सफल तो रहा, पर आग के कारण अत्यधिक जल गया और कई सप्ताह तक अस्पताल में भर्ती रहा। दूसरे भाई ने आग के मार्ग से जाने के सङ्कट को देख लिया, अतः वह शीशे के बिखरे टुकड़ों वाले मार्ग से यथासम्भव शीघ्रता से निकल गया। मार्ग में पड़े शीशे के टुकड़े उसके पैरों में चुभ गए थे। उसे दो दिन तक अस्पताल में भर्ती रहना पड़ा।

तीसरे भाई ने सोचा, “यहाँ रहना तो मूर्खता होगी। आग वाले द्वार की ओर जाना तो मूर्खता है क्योंकि उससे अपरिहार्य रूप से जलन के घाव आएँगे। अतः मुझे दूसरे द्वार से ही निकलना चाहिए। परन्तु, मुझे अपने पैर बचाने के लिए कुछ तो करना ही होगा। उसने शय्या की चादर को चीरकर एक-एक भाग को अपने एक-एक पैर पर बाँध लिया। उसने शीघ्रता से काम किया; अतः यह पूरी प्रक्रिया कुछ क्षणों में पूर्ण हो गई। तत्पश्चात्, वह अपने चुने हुए द्वार की ओर चला। वह सकुशल वहाँ से निकलने में सफल रहा।

कोई भी व्यक्ति बिना कुछ किए रह नहीं सकता, जैसे कि वे भाई अपने कक्ष में ही बने रहने की स्थिति में नहीं थे, जहाँ वे लेटे थे। मनुष्य के सभी कर्मों का परिणाम होता ही है। यदि वह अधर्म में संलग्न होता है, तो भविष्य

में अत्यन्त पीड़ा सहनी होगी, चाहे वह नरक में हो या धरती पर। उसका आचरण आग वाले द्वार की ओर भागने वाले उस भाई के समान होगा। जो अच्छे कर्म करता है, वह कुछ समय के लिए आनन्द की अनुभूति करता है, या तो स्वर्ग पाकर या धरती पर एक अच्छा जन्म पाकर। परन्तु, किसी भी स्थिति में उसे पुनर्जन्म लेना ही पड़ता है। इसलिए, अत्यन्त पुण्यार्जन के पश्चात् भी, संसार का बन्धन भोगना ही पड़ता है। उसका आचरण दूसरे भाई के समान होता है। आग से प्रज्वलित द्वार वाले मार्ग का चयन सरल लगता है, जैसे बुराई के मार्ग का। दूसरे द्वार का मार्ग चुनना, धर्म के मार्ग के समान, कठिन था जिसमें अपनी इन्द्रियों व मन को नियन्त्रित रखना पड़ता है।

भगवान ने बताया है कि एक व्यक्ति कर्मों से बिना बंधे भी, उन्हें किस प्रकार कर सकता है। व्यक्ति को फल की लालसा किए बिना, अपने सभी कर्मों व उनके फल ईश्वर को समर्पित कर, अपने कर्म करते रहना चाहिए। इस प्रकार कर्म करते हुए भी, कर्मफल के लगाव से निर्लिप्त रहना ही कर्म-योग कहलाता है। कर्म-योगी की तुलना तीसरे भाई से की जा सकती है, जो उसी द्वार से निकलकर बच गया, जिससे कि दूसरा भाई गया था (पर बिना किसी चोट के)। तीनों में से सबसे बुद्धिमान भाई ने पट्टियाँ बाँधकर अपने पैरों की रक्षा कर ली; कर्म-योगी भी अपने कर्मों व उनके फल ईश्वर को समर्पित कर, स्वयं की रक्षा कर लेता है।

एक व्यक्ति ईश्वर की पूजा करके उन्हें फल और अन्य खाद्यों का नैवेद्य लगाया करता था। पूजा के पश्चात्, वह उस नैवेद्य का एक अंश प्रसाद के रूप में ग्रहण करता था। उसके एक नास्तिक मित्र ने उपहास करते हुए, एक बार उससे कहा, “नैवेद्य की यह प्रक्रिया तुम्हारी मूढ़ता है। जो फल तुम ईश्वर को समर्पित करते हो, वह वहीं रहता है जहाँ उसे रखा गया था। न ही उसमें किसी भी प्रकार का कोई भौतिक विकार आता है। और तो और, उसे अन्ततः तुम ही ग्रहण करते हो, न कि वह ईश्वर, जिनकी तुमने पूजा की।”

भक्त ने मन्दहास सहित उत्तर दिया, “मैं प्रभु को इस विश्वास के साथ नैवेद्य लगाता हूँ कि भगवद्गीता के उनके वचन के अनुसार, वे उसको स्वीकार

करेंगे। स्वीकृत करने के पश्चात्, वे अपनी इच्छानुसार उसका विनियोग करने के लिए पूर्णतः स्वतन्त्र हैं। मेरा मानना है कि चूँकि वे सर्वशक्त हैं, वे पूर्णतया समर्थ हैं कि उसे अदृश्य करें, या उपभोग करने के बाद भी उसके पूर्ण स्वरूप में ही उसे यहाँ रहने दें। मेरा मानना है कि यह ईश्वर ही हैं जो उसे इस प्रकार ग्रहण करते हैं जिसकी कल्पना मनुष्य द्वारा नहीं की जा सकती है, और पुनः उसे मेरे लिए यहाँ छोड़ जाते हैं। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मैं नैवेद्य करने के बाद जो स्वीकार करता हूँ, वह ईश्वर द्वारा उपभुक्त वस्तु का ही शेष भाग है।"

"अभी अभी जब एक प्रसिद्ध राजनेता तुम्हारे शहर आया, तुमने एवं दूसरों ने उसका स्वागत किया व उसे पुष्पमालाएँ अर्पित कीं। वह निश्चित ही सभी मालाओं को नहीं पहन सकता था, ना ही उसने उन्हें पहना। तब उसने अपने को दी गई मालाओं में से, एक माला तुम्हें दी और तुमने अत्यधिक हर्ष से उसे स्वीकार किया। जैसे जैसे वह अपने समर्थकों की भीड़ के मध्य से गया, उसने कुछ मालाएँ उछालकर उनकी ओर फेंकीं और भीड़ ने जय-जयकार की। यह सर्वथा सम्भव है कि किसी समर्थक को वही माला वापस मिल गई हो जो उसी ने भेंट की थी। यद्यपि आपका नेता आपकी दी हुई मालाएँ रखता नहीं, तथापि आप लोग उसे मालार्पण करने से अपने आप को नहीं रोकेंगे; आप उसे सम्मानित करके प्रसन्न होते हैं, और आप उससे नहीं पूछते कि वह उन मालाओं का क्या करेगा। ऐसे में, मेरे निष्ठापूर्वक प्रभु को नैवेद्य अर्पित कर प्रसन्न रहने से, तुम इतना असन्तुष्ट क्यों हो? यदि तुम्हारा नेता तुम्हें मालाएँ लौटा सकता है, तो मेरे प्रभु मेरे नैवेद्य का उपभोग कर मुझे अनुगृहीत क्यों नहीं कर सकते? एक कर्म-योगी तो न केवल खाद्य पदार्थ, अपितु अपने आचार-विचार व सभी कर्म ही, ईश्वर को समर्पित कर देता है।"

एक व्यक्ति के दो सेवक थे। एक था जो अपने स्वामी का गुणगान करने में तो बड़ा निपुण था, पर उनके आदेश मानने में नहीं। दूसरा अपने सभी सौंपे गए कार्यों को दक्षता से पूरा करने के साथ ही स्वामी का भी सम्मान करता था। स्वामी को अवश्य ही प्रथम की अपेक्षा दूसरा सेवक अधिक प्रिय था। जो मनुष्य, दूसरे सेवक की भांति, ईश्वर द्वारा विहित एवं शास्त्रों द्वारा

आदिष्ट सभी कर्मों को निष्ठापूर्वक करता है, इतना ही नहीं, वह ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण भाव से कर्म करता है, वह ईश्वर को प्रसन्न करता है और उनकी अपार कृपा का पात्र बनता है। ईश्वर की कृपा से, उसका चित्त अत्यन्त शुद्ध हो जाता है। फिर उचित समय पर, वह परम सत्य को प्राप्त कर, मुक्त हो जाता है।

एक माँ अपने नन्हें पुत्र से बहुत प्रेम करती थी और उसका बहुत ध्यान रखती थी। एक दिन, वह शिरोवेदना, ज्वर और मतली की समस्या से ग्रस्त होते हुए जगी। तथापि वह उठी और अपने पुत्र के प्रातः की आवश्यकाताओं की व्यवस्था करने व खाना बनाने में जुट गई। उस दिन उसने देखा कि चावल कुछ अधिक पक गए थे। तत्क्षण ही वह पुनः भात बनाने लगी। उसके पति ने यह देखा और उससे कहा, "तुम इतनी रुग्ण हो और तुम्हें अत्यन्त पीड़ा हो रही है। ऐसी अवस्था में क्यों चिन्तित हो रही हो? जो भात बना है, वह तो खाने योग्य है।" उसकी पत्नी ने उत्तर दिया, "मैं अपने बेटे को वैसा ही भोजन देना चाहती हूँ जैसे उसे खाने का अभ्यास है व जो उसे अभीष्ट है। इस अधिक पके भात को तो मैं स्वयं ही खा लूंगी।" पुत्र के प्रति अगाढ़ प्रेम में उस माँ ने उसके लिए सबसे श्रेष्ठ व्यवस्था करने का प्रयास किया। इसी प्रकार, एक कर्म-योगी, ईश्वर के प्रति अपनी भक्ति के फलस्वरूप, अपनी योग्यतानुसार श्रेष्ठकर्म ही करता है और अधर्म से बचता है।

दो छात्र एक परीक्षा में बैठे। अच्छी तैयारी करने के पश्चात् भी, उनकी परीक्षा अच्छी नहीं हुई, क्योंकि प्रश्न कठिन आए थे और कुछ प्रश्न निर्धारित पाठ्यक्रम से बाहर के थे। उनमें से एक जो कर्म-योग का अभ्यास नहीं करता था, अपनी विफलता से अत्यन्त शोकाकुल हो गया। जब वह घर जाकर अगली परीक्षा के लिए तैयारी करने लगा, तब उसका मन पूर्ण समय उसी दिन के प्रश्नपत्र की ओर जाता रहा। इस चिन्ता ने उसकी तैयारी को अत्यन्त हानि पहुँचाई। दूसरा बालक जो कर्म-योगी था, तनिक भी चिन्ताग्रस्त नहीं हुआ। यह इसलिए कि उसने परीक्षा स्थल पर ही परीक्षा और उसके परिणाम को ईश्वर के लिए समर्पित कर दिया था। घर लौटकर

उसने बिना किसी भी चिन्ता के, अगली परीक्षा की तैयारी पर अपना ध्यान केन्द्रित किया।

अगले दिन, पहला लड़का एक कठिन प्रश्न देखकर अत्यन्त दिग्भ्रान्त हो गया। कर्म-योगी ने उस प्रश्न को ध्यानपूर्वक पढ़ा और भयग्रस्त हुए बिना अपनी शक्ति के अनुसार उसका उत्तर लिखा। यह निश्चित ही है कि पहले लड़के ने दूसरे से निचली श्रेणी प्राप्त की। इस उदाहरण से पता चलता है कि कर्म-योगी की दक्षता उस व्यक्ति की दक्षता से अधिक होती है, जो अपने कर्मों के फल की लालसा से काम करता है।

भगवान ने भगवद्गीता में घोषणा की है — "तुम अपने विहित कर्तव्यों का पालन करो, क्योंकि कर्म अकर्म से श्रेष्ठतर है। इसके अतिरिक्त, अकर्म से तुम्हारे शरीर का निर्वाह भी सम्भव नहीं होगा। ईश्वरार्थ किए गए अपने कार्यों के अतिरिक्त, मनुष्य अपने सभी कार्यों से बँध जाता है। हे कुन्ती के पुत्र, बिना आसक्ति के ईश्वरार्थ कर्म करो... बिना आसक्ति के अपना कर्तव्य निभाकर व्यक्ति (अपने चित्त की शुद्धि के द्वारा) मोक्ष को प्राप्त करता है।"

63. सर्वोच्च के ज्ञान हेतु योग्यता

स्वर्ग के इच्छुक, वाजश्रवा ने विश्वजित् नामक यज्ञ किया जिसमें याजक को अपनी समग्र सम्पत्ति का दान कर देना होता है। उनका नचिकेता नाम का एक पुत्र था। विश्वास से भरे होने के कारण, लड़का यह देखकर निराश हो गया कि उसके पिता ने ब्राह्मणों को जो गाएँ उपहार में दीं थीं, वे जर्जर और बाँझ थीं। उसे लगा कि एक पुत्र के नाते, उसे अपने पिता के यज्ञ की इस कमी की भरपाई के लिए कुछ करना चाहिए। उसने स्वयं को दान में समर्पित करने का निर्णय किया। तो उसने अपने पिता से पूछा, "आप मुझे

किसे दान करेंगे?" वाजश्रवा ने उसकी उपेक्षा की। जब नचिकेता ने तीसरी बार पूछा, तो वाजश्रवा ने गुस्से में उससे कहा, "मैं तुम्हें यम को दान दे देता हूँ।"

नचिकेता ने सोचा, "मेरे पिता ने बिना किसी उद्देश्य के विचार के, ये शब्द कहे हैं। फ़िर भी, उन्हें झूठा नहीं होने देना चाहिए।" लड़का यम के निवास के लिए निकल पड़ा। चूँकि यम बाहर गए हुए थे, नचिकेता ने तीन दिनों तक धैर्यपूर्वक उनकी प्रतीक्षा की। जब यम वापस आए, तो उन्होंने तीन दिनों के लिए एक अतिथि के सत्कार न करने के अपने पाप के प्रायश्चित्त के रूप में, लड़के को तीन वरदान दिए।

अपने तीसरे वरदान के रूप में, नचिकेता ने जानना चाहा कि शरीर, इन्द्रियों और मन से पृथक एक आत्मा है या नहीं, जो शरीर की मृत्यु से बच जाती है। नचिकेता का परीक्षण करने और यह निर्धारित करने के लिए कि क्या वह सचमुच आत्मतत्त्व के बारे में समझाने योग्य है, यम ने उसे विरत करने और विभिन्न प्रकारों से लुभाने का प्रयत्न किया।

यम ने कहा, "सौ वर्ष तक जीवित रहने वाले पुत्रों और पौत्रों को माँग लो। कई गायों, घोड़ों, हाथियों एवं सोने और एक विस्तीर्ण भूखण्ड को माँग लो। जितने वर्ष चाहो, जिओ। यदि तुम कुछ अन्य समकक्ष वरदान की इच्छा रखते हो, तो उसे माँग लो। ऐश्वर्य और लम्बी आयु माँग लो। एक विशाल क्षेत्र के राजा बन जाओ। मैं तुम्हें सभी भोग्य वस्तुओं को भोगने के योग्य बना दूँगा।

"अपनी इच्छा के अनुसार, काम्य वस्तुओं को माँग लो जो दुर्लभ हैं। यहाँ रथ और सङ्गीत वाद्य के साथ दिव्य अप्सराएँ हैं; उनका भोग मनुष्य नहीं कर सकते। उनसे अपनी सेवा कराओ। परन्तु, यह मत पूछो कि क्या शरीर-पतन के बाद भी कुछ विद्यमान रहता है।"

यद्यपि यम ने लड़के को लुभाने का पूरा प्रयास किया, फ़िर भी, नचिकेता अब भी विशाल शान्त सरोवर की तरह अडिग बना रहा। उसने कहा, "हे यमराज, आपके द्वारा उक्त ये सभी भोग की वस्तुएँ क्षणभङ्गुर हैं। इतना ही

नहीं, वे मनुष्य की इन्द्रियों की शक्ति को घटाती हैं। सारा जीवन, बिना किसी अपवाद के, वास्तव में छोटा है। इसलिए ये सब आपके ही रहने दें।" उसने आग्रह किया कि वह केवल वही वरदान चाहता है जो उसने माँगा था। नचिकेता के स्वभाव और दृढ़ता से प्रसन्न होकर, यम ने उन्हें आत्मा के बारे में प्रबोधित किया; बालक प्रबुद्ध हो गया।

कठोपनिषद् की इस आख्यायिका से जाना जाता है कि अटूट वैराग्य उस व्यक्ति का विशिष्ट लक्षण है जो सर्वोच्च के ज्ञान के लिए योग्य है।

64. तृप्ति

सन्तान के इच्छुक एक व्यक्ति ने भगवान से प्रार्थना की कि वे उसे सन्तान का आशीर्वाद दें। शीघ्र ही, वह एक लड़के का पिता बन गया। बच्चे ने अपनी माँ का दूध पीने से मना कर दिया। इसलिए, भक्त ने फ़िर से भगवान से माँग की और कहा, "आपने मुझे एक बच्चा दिया है परन्तु वह दूध का सेवन नहीं करता है। मैं भयभीत हूँ कि वह नहीं बचेगा। तो कृपया कुछ करें।" "ऐसी बात है?" भगवान ने कहा, "चलो, कल से वह दूध पीना प्रारम्भ कर देगा। चिन्ता मत करो।" वह समस्या हल हो गई, परन्तु बच्चा धीरे-धीरे असहनीय रूप से दुष्ट हो गया।

एक बार फ़िर, भक्त भगवान की ओर मुड़ा। उसने उनसे बच्चे को सुधारने की प्रार्थना की। "ऐसा ही हो," प्रभु ने आशीर्वाद दिया। उसी क्षण से, बालक ने अपना दुराचार बन्द कर दिया। वह इतने शान्तस्वभाव का हो गया कि चुप रहने लगा। इसे सहन करने में असमर्थ, भक्त ने भगवान से अपनी सहायता के लिए आने का अनुरोध किया। इसके बाद, बच्चे ने सामान्य रूप से बातचीत की। ऐसी कई प्रार्थनाओं के बाद, भक्त ने अपने पुत्र का विवाह कराया। कुछ वर्ष बीत गए, परन्तु उसकी बहू ने गर्भधारण नहीं किया। इसलिए, भक्त ने भगवान से प्रार्थना की, "मुझे लगता है कि

अगर आपने मुझे बच्चा नहीं दिया होता, तो मैं अधिक सन्तुष्ट रहता। मेरे पुत्र के कोई सन्तान न होने के विचार से मेरा मन दु:ख से भर गया है।"

यह बात स्पष्ट है कि ऐसी प्रार्थनाओं का कोई अन्त नहीं है। सामान्यतः, लोग अपने पास जो कुछ है, उससे सन्तुष्ट नहीं होते। हमारे पूर्वजों ने घोषणा की है, "एक रुपये वाला व्यक्ति सौ के लिए तरसता है। जिसके पास सौ है, वह सहस्र चाहता है। जिसके पास एक सहस्र हैं, वह एक लाख पाने की इच्छा रखता है। एक लाख वाला, राजा बनना चाहता है। एक राजा धन के देवता कुबेर बनने के लिए तरसता है। कुबेर देवताओं के राजा इन्द्र बनना चाहते हैं। इन्द्र ब्रह्मा के पद के लिए लालायित हैं। विष्णु की स्थिति के लिए ब्रह्मा इच्छुक रहते हैं। विष्णु शिवपद का लोभ करते हैं। वास्तव में, इच्छाओं की सीमा को किसने प्राप्त किया है?"

एक विनोदी कविता में कहा गया है, "एक पहाड़ बहुत बड़ा है। सागर पहाड़ से भी बड़ा है। आकाश सागर से अधिक विस्तृत है। ईश्वर आकाश से भी बड़े हैं। ईश्वर से भी अधिक व्यापक इच्छा है!" जहाँ अतृप्ति मनुष्य को दुःखी करती है, वहीं सन्तोष स्थायी आनन्द प्रदान करता है। एक विरक्त पुरुष तृप्त रहता है; तृप्ति वैराग्य का पक्षधर है।

65. ईर्ष्या का उदय तथा ह्रास

दशकों पहले, जब भारत में कारें विरल थीं, एक धनिक व्यक्ति था जिसके पास एक बड़ी कार थी। हर प्रातः, वह उसमें बैठकर अपने कार्यालय में जाता था और सायंकाल को, समुद्र तट पर गाड़ी चलाता था। पैदल चलने वालों ने उस सम्पन्न व्यक्ति को कार में देखा और उससे ईर्ष्या की। उन्होंने सोचा, "वह उस कार को पाकर वास्तव में आनन्दित होगा।" एक दिन, वह कार एक लॉरी से टकरा गई और बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो गई। धनिक

व्यक्ति उसमें अटक गया। बड़ी कठिनाई से उसे बाहर निकाला गया, परन्तु उसके पैर गम्भीर रूप से घायल हो गए। उन्हें घुटनों पर काट डालना पड़ा। प्रखर शल्यक्रिया के परिणामस्वरूप, वह नहीं चल पाता था और उसे हर स्थान पर उठा ले जाना पड़ा। पदयात्रियों ने उसे ऐसी दयनीय स्थिति में देखा और मन ही मन सोचा, "कितना भयानक! भगवान को बहुत बहुत धन्यवाद, हमारे पास कार नहीं है। पैदल चलना ही अधिक सुरक्षित है।"

कहानी ईर्ष्या के उदय और उसके बाद के क्षय को प्रकट करती है। केवल इसलिए कि एक व्यक्ति के पास कोई वस्तु है, तो यह आवश्यक नहीं है कि वह सन्तुष्ट रहेगा। ऐसी सोच ईर्ष्या से छुटकारा पाने में सहायता करती है।

66. मूल्यवान वस्तु के स्वामित्व के कारण समस्या

एक बैरागी था जिसके साथ सदा एक शिष्य रहता था। बैरागी अपनी यात्रा के समय, जब वह किसी भी स्थान पर पहुँचता था तो आग जलाता था और कुछ समय उसके पास बैठकर मनन का अभ्यास करता था। वह जहाँ भी जाता, पूछता था, "क्या यहाँ भय का कोई कारण है?" शिष्य ने सोचा, "मेरे गुरुजी जहाँ भी जाते हैं, भय की बात क्यों करते रहते हैं?" एक दिन शिष्य ने देखा कि उसके गुरु के कमण्डलु को हिलाने पर, उसने "कड़-कड़" ध्वनि उत्पन्न की। उसने विचार किया, "इसमें केवल जल होना चाहिए, न कि कुछ ऐसा जो लुढ़कता हो।" उसने कमण्डलु के अन्दर हाथ डाला और वहाँ उसे एक कपड़े का पैकेट मिला। यह सोचकर, "यह मेरे गुरु के भय का कारण होगा," उसने पैकेट को दूर फेंक दिया। जब बैरागी अगले स्थान पर पहुँचा, तो उसने सदैव की भाँति पूछा, "क्या यहाँ कोई भय है?"

शिष्य – उसे पीछे छोड़ दिया गया है।

बैरागी – तुम्हारे कहने का क्या तात्पर्य है?

शिष्य – कोई भय नहीं है। वह नदी में चला गया है।

बैरागी – क्या! नदी में चला गया!

शिष्य – मैंने आपके कमण्डलु का निरीक्षण किया और उसके अन्दर के पैकेट को फेंक दिया। भय के उस स्रोत से आपके चिपके रहने का प्रयोजन क्या है? हमें वैसी सांसारिक वस्तुओं से क्या लेना-देना है? डरने की कोई आवश्यकता नहीं है और इसलिए मैंने उसे फेंक दिया।

पैकेट में एक मूल्यवान मोती था और इसलिए बैरागी चिन्तित था कि कहीं वह चोरी न हो जाए। इसलिए वह जहाँ भी जाता, तो पूछता था कि क्या वह क्षेत्र सुरक्षित है। अपने शिष्य के काम को जानने के बाद, उसने उसकी कार्यवाही की सराहना की और भय से मुक्त हो गया।

67. धन-सम्पत्ति से मिलती हैं सुविधाएँ, आनन्द नहीं

एक भिखारी की झोंपड़ी एक सम्पन्न व्यक्ति के विशाल भवन के पास स्थित थी। भिखारी हर प्रातः भवन में आकर भीख माँगता था। धनिक व्यक्ति ने उसे हर बार एक निश्चित मात्रा में अनाज देने की प्रथा बना ली। आभार व्यक्त करने के बाद, भिखारी अपने लम्बे चक्करों पर आगे बढ़ जाता था।

सामान्यतः, उसे अपने और अपने छोटे परिवार की आवश्यकता से अधिक भोजन मिल जाता था। चूँकि वह कल के बारे में चिन्ता रखने वाला नहीं था, वह उस अधिक राशि को बचाकर नहीं रखता था। उसके स्थान पर, वह उसके साथ एक या दो भूखे लोगों को खिलाता था। उसके पास कोई बचत नहीं थी, परन्तु वह बहुत सन्तुष्ट और मुदित था। कभी उसे रात को सोने में कोई कठिनाई नहीं हुई व वह सदैव ताज़गी और उल्लस से उठता था।

धनवान के पास वे सारी विलासिता की वस्तुएँ थीं जो धन ला सकती थीं। फ़िर भी, वित्तीय विचार निरन्तर उसके मन में आते रहे। उसे भय था कि कहीं उसके प्रतिद्वन्द्वी, या यहाँ तक कि अपने परिवार के लोग भी, उसे कुछ हानि न पहुँचाए। वह सोने में बहुत कठिनाई का अनुभव करता था और कदाचित् ही ताज़गी से उठता था।

एक दिन, उसके परिवार के एक सदस्य ने उससे पूछा, "उस भिखारी को देखिए जो वहाँ रहता है। उसके पास कुछ भी नहीं है और तब भी चैन से सोता है। आप इतने पैसे वाले हैं और आपके पास सब कुछ है, परन्तु उन्निद्रता से पीड़ित हैं। क्यों?" धनवान ने कहा, "ओह! मैं आसानी से उसकी नींद उड़वा सकता हूँ। देखते रहो।" अगले प्रातःकाल, उसने भिखारी को खाद्यान्न के बदले, धन की बड़ी राशि दे दी। भिखारी बहुत प्रमुदित हो गया।

हालाँकि, जैसे ही वह आगे बढ़ा, उसने सोचा, "यदि मैं आज केवल 100 रुपये और प्राप्त कर लेता हूँ, तो मेरे पास 1000 रुपये की भारी राशि होगी।" उस विचार ने उसे सदैव से कई घंटे अधिक भिक्षा माँगने के लिए प्रेरित किया। फ़िर भी, उसे मनचाही धनराशि नहीं मिली। इसलिए उसने अपने द्वारा प्राप्त पके हुए भोजन और खाद्यान्न के अधिकांश को बेच दिया। अन्त में, लक्षित राशि उसे मिल गई।

वह पूरी तरह से थक कर घर लौट आया। उसकी पत्नी ने कुड़कुड़ाते हुए कहा, "आज आप जो भोजन लाए हैं, वह हमारे लिए भी अपर्याप्त है। एक या दो भूखे लोगों को खिलाने की सम्भावना कहाँ है, जैसा कि हम करते आए हैं?" भिखारी चिढ़ गया और अपना असन्तोष व्यक्त किया। उस रात उसे जो कम भोजन मिला, वह उसकी भूख को शान्त करने में विफल रहा।

थके और भूखे होते हुए भी, उसे अपने पास पैसों की चिन्ता सताने लगी। उसने सोचा, "कभी मेरे पास इतने पैसे नहीं थे। कोई इसे चुरा सकता है। इसलिए, मुझे इसे छिपाने के लिए कोई स्थल ढूंढ़ना होगा।" उसकी झोंपड़ी में तो कोई सुरक्षित स्थल नहीं था। इसलिए, वह अपनी झोंपड़ी से बाहर

निकला, पार्श्व में एक गड्ढा खोदा और अपने पैसे को गाड़ दिया। उसे अभी भी चैन नहीं रहा। "क्या होगा अगर किसी ने मुझे अपना पैसा छुपाते हुए देखा हो और मेरे अपनी झोंपड़ी में सोते वक्त, रात में चोरी कर ली हो," वह ऊहापोह करता रहा। उसने निर्णय लिया कि वह छिपे स्थान पर एक कपड़ा बिछायेगा और खुले में सोएगा। उस रात, उसके मन में — पैसे के बारे में और इसके बारे में कि भविष्य में इसे कैसे सुरक्षित किया जाना चाहिए — ये विचार हलचल मचाते रहे। वह एक पलक भी नहीं सोया।

अगले प्रातःकाल, लाल एवं धुंधली आँखों के साथ वह भवन की ओर गया। धनवान व्यक्ति ने उससे पूछा कि वह भयानक क्यों लग रहा है। भिखारी ने कहा, "महोदय, आपके पास अपने पैसे की सुरक्षा के लिए तिजोरियाँ और सुरक्षाकर्मी हैं। दूसरी ओर, मेरा पैसा आसानी से चुराया जा सकता है। इसकी सुरक्षा को लेकर चिन्तित होने के कारण, मैं सो नहीं सका।"

सम्पन्न व्यक्ति के परिवार के सदस्यों ने यह बातचीत सुनी। उन्हें पता चला, "पैसे का स्वत्व शान्ति प्रदान नहीं करता है। प्रत्युत, इससे सम्बन्धित विचार मन को भड़का देते हैं। वे नींद भी बिगाड़ सकते हैं।" वे समझ गए कि भिखारी अपनी दरिद्रता के होते हुए भी, पहले निश्चिन्त था और इसलिए आराम से सोता था, जबकि धनी व्यक्ति अपनी सम्पत्ति के कारण बहुत चिन्तित होकर, बिना नींद के रात बिताता था।

धन से सुविधाएँ मिल सकती हैं, आनन्द नहीं। इसलिए, यह कहा जाता है, "धन प्राप्त करने में कष्ट होता है; वैसे ही उसकी सुरक्षा में भी; यदि वह खो जाए या खर्च हो जाए, तो पीड़ा होती है। धिक्कार है धन पर, जो दुःख का कारण बनता है!"

68. जीवन क्षणभङ्गुर है

प्रचुर तपस्या से सम्पन्न ब्रह्मर्षि वसिष्ठ के पास नन्दिनी नाम की एक गाय थी। कोई उससे जो भी चाहता था, वह उसे प्रदान करने में सक्षम थी। ऋषि विश्वामित्र, जो उस समय एक राजा थे, वसिष्ठ के आश्रम से गुज़रे। ऋषि ने उनका स्वागत किया और नन्दिनी की सहायता से, उन्हें और उनके परिवार को एक अत्यन्त भव्य भोजन प्रदान किया। जब राजा को गाय की चमत्कारी शक्ति का पता चला, तो उन्हें उसे पाने की इच्छा हो गई। इसलिए, उन्होंने वसिष्ठ से कहा कि वे नन्दिनी को दे दें। ऋषि ने मना कर दिया। विश्वामित्र ने गाय को अपने साथ ले जाने का प्रयास किया, परन्तु उनके सभी प्रयास विफल रहे। अपमानित होकर राजा निकल गए और उन्होंने तपस्या की। इसके फल के रूप में, उन्हें विशेष शक्तियों के साथ, विभिन्न अस्त्र और शस्त्र प्राप्त हुए। दर्प से भरे हुए, उन्होंने वसिष्ठ को द्वन्द्व-युद्ध के लिए चुनौती दी। ऋषि अक्षुब्ध रहे। राजा ने उन्हें मारने के लिए और उनकी गाय को ले जाने के लिए वसिष्ठ पर विभिन्न अस्त्रों का प्रयोग किया। वसिष्ठ ने बस अपना ब्रह्मदण्ड अपने सामने रखा। इस दण्ड ने सबसे शक्तिशाली अस्त्रों को भी निष्प्रभावित कर दिया; ऋषि बिना किसी क्षति के खड़े रहे। यह देखकर विश्वामित्र को वसिष्ठ की महानता का बोध हुआ और उन्होंने सांसारिक भोगों का परित्याग कर दिया और कालान्तर में वे स्वयं एक महान ऋषि बन गए।

त्रिशङ्कु ने विश्वामित्र से सशरीर स्वर्ग में जाने की अपनी उत्कट इच्छा व्यक्त की और ऋषि से उसकी सहायता करने के लिए विनती की। अपनी तपस्या के बल पर, विश्वामित्र ने सुनिश्चित किया कि त्रिशङ्कु स्वर्ग तक उठे। परन्तु, देवताओं ने उसे वहाँ प्रवेश करने से मना कर दिया और उसे वापस धकेल दिया। जैसे ही वह पृथ्वी की ओर गिरा, उसने अपनी रक्षा हेतु ऋषि को चिल्लाकर पुकारा। विश्वामित्र ने उसके पतन को निरुद्ध कर लिया। फ़िर, ऋषि ने त्रिशङ्कु के लिए एक नया स्वर्ग बनाया। वे इतने महान शक्तिशाली थे।

देवता दुष्ट कालेय असुरों पर आक्रमण करने में असमर्थ थे, क्योंकि उन राक्षसों ने स्वयं को समुद्र में छिपा लिया था। इसलिए, देवताओं ने ऋषि

अगस्त्य से उनकी सहायता के लिए अनुरोध किया कि वे सागर को रिक्त करें, एक ऐसा कार्य जो उनकी क्षमता से परे था। ऋषि ने यूँ ही समुद्र का सारा जल पी लिया। असुर सामने आ गए और देवों द्वारा मारे गए।

अगस्त्य, विश्वामित्र व वसिष्ठ जैसे अकल्पनीय रूप से शक्तिशाली ऋषि भी मृत्यु के ग्रास हो गए हैं। जिसने जन्म लिया है, उसकी मृत्यु अवश्यंभावी है।

जब पाण्डव जंगल में रह रहे थे, तो एक दिन उन्हें प्यास लगी। नकुल पानी के स्रोत का पता लगाने के लिए एक वृक्ष पर चढ़ गए। उन्होंने एक स्थान पर उड़ रहे कुछ सारस और कुछ पानी के पौधों को देखा। युधिष्ठिर ने उन्हें पानी लाने का निर्देश दिया। नकुल उस निर्दिष्ट क्षेत्र में पहुँचे और वहाँ उन्होंने एक सरोवर पाया। वे अपनी प्यास बुझाने ही वाले थे जब उनको एक ध्वनि सुनाई दी — "पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दिए बिना, इस पानी को मत पीना।" उन्होंने चेतावनी की उपेक्षा की। उन्होंने सरोवर का थोड़ा सा पानी पी लिया और तुरन्त मृत हो गए।

फ़िर, सहदेव सरोवर के पास आए। उन्होंने भी चेतावनी की उपेक्षा की और उसका मूल्य चुकाया। इसके बाद, अर्जुन और भीम की मृत्यु हो गई जब उन्होंने नकुल और सहदेव की तरह व्यवहार किया। अन्त में, युधिष्ठिर सरोवर पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने जो देखा, उससे भौंचक हो गए। उनके सभी बलवान और वीर भाई धरती पर मृत होकर बिखरे पड़े थे।

दुःख से अभिभूत युधिष्ठिर को पहले से अधिक प्यास लगी। वे सरोवर की ओर बढ़े। जब वे अपनी प्यास बुझाने ही वाले थे, तब उन्होंने एक चेतावनी सुनी — "रुक जाओ! तुम्हें यह पानी नहीं पीना चाहिए। यह मेरी सम्पत्ति है। यदि तुम इसे पीना चाहते हो, तो तुम्हें मेरे प्रश्नों के उत्तर देने होंगे। इन चारों लोगों ने मेरी आज्ञा का उल्लङ्घन किया और इसीलिए उन्हें मृत्यु-दण्ड दिया गया है।" युधिष्ठिर ने उत्तर दिया, "यदि ऐसी बात है, तो मैं आपकी अनुमति के बिना जल नहीं पिऊँगा। आप प्रश्न पूछिए और मैं अपनी क्षमता के अनुसार, उनके उत्तर देने का प्रयास करूँगा।" फ़िर एक प्रश्नोत्तरी प्रारम्भ हुई जिसमें कई विषयों को सम्मिलित किया गया था।

पूछे गए प्रश्नों में से एक था, "पूरे विश्व में सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है?" इस पर युधिष्ठिर ने उत्तर दिया, "हर दिन, कई लोग यमलोक में जा रहे हैं। परन्तु, यह देखते हुए भी, अन्य लोग ऐसे सोचते और व्यवहार करते हैं जैसे वे सदैव जीवित रहेंगे। क्या इससे अधिक आश्चर्य की कोई बात हो सकती है?"

एक वृद्ध निर्बल महिला दरिद्रता से त्रस्त थी और उसकी सहायता करने वाला कोई नहीं था। उसका स्वास्थ्य बिगड़ जाने पर भी, वह बहुत परिश्रम से अपना जीवन-यापन करने के लिए सङ्घर्ष करती थी। उसकी अवस्था इतनी दयनीय थी कि वह बार-बार यम से प्रार्थना करती थी कि वह उसके जीवन को समाप्त करके, उसे कष्ट से छुड़ावें।

एक दिन, जब वह लट्ठों की एक गट्ठर उठाने और उसे अपने सिर पर रखने के लिए सङ्घर्ष कर रही थी, तो उसे लगा कि उसने बहुत दुःख उठा लिया है। उसने याचना की, "हे यमराज, कृपया मुझे अभी ले चलो।" यम उसकी प्रार्थना से पिघल गए और उसके सामने अपने हाथ में पाश लिए, अपने वाहन महिष पर सवार होकर प्रकट हुए। स्तम्भित और भयभीत, वह महिला हकलाने लगी, "तुम कौन हो?" "मैं यम हूँ," देव ने उत्तर दिया, "मैं तुम्हारे जीवन को अपने साथ ले जाने की तुम्हारी प्रार्थना के उत्तर में आया हूँ।" "कृपया ऐसा मत करें," महिला रोई, "मैंने अपने सिर पर इस भारी बोझ को रखने में मेरी सहायता करने के लिए ही आपको बुलाया था।" अधिकांश लोगों का जीवन के प्रति ऐसा ही गहरा लगाव होता है।

एक वृद्ध धनिक व्यक्ति गम्भीर रूप से रुग्ण हो गया था। उसने स्वयं को मुम्बई के एक महँगे और प्रतिष्ठित अस्पताल में भर्ती कराया और एक प्रमुख चिकित्सक द्वारा अपनी चिकित्सा करवाई। व्यापक जाँच करने के बाद, वहाँ के वैद्यों ने उसे बताया कि उसकी स्थिति निरुपाय है। उसके आग्रह पर, देश के विभिन्न भागों के कई विशेषज्ञों को उसकी चिकित्सा के लिए बुलाया गया। हालाँकि, उन्होंने भी उसे यह बताया कि ऐसा कुछ भी नहीं है जो उसे बचाने के लिए किया जा सके। उसने लंदन के लिए उड़ान भरने का और वहाँ सबसे अच्छी चिकित्सा कराने का निर्णय लिया। फ़िर से, उसे बताया गया कि उसकी स्थिति निराशाजनक है। वह निर्णय को स्वीकार करना नहीं चाहता था और

इसलिए, अमेरिका चला गया। वहीं उसकी मृत्यु हो गई। यदि उसने मृत्यु की अनिवार्यता को स्वीकार कर लिया होता और उसके बारे में आश्वस्त हो जाता, तो वह अपने अन्तिम दिनों को ईश्वर के बारे में सोचकर बिता सकता था और हमारी पुण्य भूमि में, पवित्र काशी में, अपना अन्तिम श्वास ले सकता था।

ऐसे लोग हैं, जो मृत्यु की सम्भावना का सामना करते समय, अनुभव करते हैं, "यदि मैं केवल कुछ और दिनों तक जीवित रह पाता, तो मैं अपनी कामकाजों को सुलझाता, तथा अपनी इच्छापूर्वक शान्ति से चल बस पाता।" हालाँकि, यदि वे अपने द्वारा निर्दिष्ट अवधि के लिए जीवित रहते हैं, तो वे एक और विस्तृति चाहते हैं।

ऐसा कहा जाता है कि यम किसी व्यक्ति का तब तक प्रतीक्षा नहीं करते जब तक कि वह निर्धारित समय पर उसे ले जाने से पहले अपना कार्य पूरा नहीं कर लेता। सांसारिक लोग या तो मृत्यु की अपरिहार्यता पर गम्भीर विचार करने में विफल रहते हैं, या जब उसका सामना करना पड़ता है, तो जीवन से चिपके रहने का पूरा प्रयास करते हैं। दूसरी ओर, विवेकशील व्यक्ति मृत्यु एवं किसी भी क्षण उसके सम्भावित आगमन पर विचार करता है और वैराग्य विकसित करता है। वह शाश्वत तथा सर्वोच्च को प्राप्त करने की दिशा में अपने प्रयासों को लगा देता है।

69. ममत्व शान्ति का विध्वंसक है

एक व्यक्ति लम्बे समय तक उस तरह के घर के बारे में सोचता रहा जो उसके लिए आदर्श होगा और उसने कई जानकारों से परामर्श भी किया। अन्त में, उसने उसकी एक स्पष्ट रूपरेखा बनाई। उसने निर्माण का कार्य एक सक्षम और प्रतिष्ठित अभियन्ता को सौंपा। परन्तु, वह इस बात पर इतना चिन्तित था कि अपने मन की कल्पना की अपेक्षा कोई कमी या विचलन नहीं होना चाहिए, ताकि वह प्रायः अपना सारा समय साइट पर बिताता

रहा। उसने दूसरों को उपद्रव पैदा करने की सीमा तक सुझाव और टिप्पणियाँ दीं। अन्त में उसके सपनों का घर बन गया और वह प्रसन्नता से अपने परिवार के साथ उसमें चला गया।

जब भी किसी ने उसके घर की तनिक सी भी प्रशंसा व्यक्त की, तो वह गर्व से झूम उठता था। एक दिन, एक चित्र लटकाने के इच्छुक उसका बेटा, एक दीवार में कील ठोकने लगा। जैसे ही लड़के ने एक वार किया, उसका पिता दौड़ते हुए कक्ष में आ गया। उस व्यक्ति का मुखमण्डल गुस्से से लाल हो गया और उसने अपने बेटे को तुरन्त हथौड़ा मारने से रोकने के लिए आदेश दिया। "तुम ऐसा कुछ करने का साहस कैसे कर सकते हो जो दीवार की चिकनाई और सुन्दरता को क्षति पहुँचा सकता है?" उसने पूछा। "यदि तुम चित्र चाहते हो, तो उसे अपने मेज़ पर रखो।" लड़का उसकी प्रतिक्रिया की तीव्रता से अचम्भे में पड़ गया, क्योंकि उसका पिता सामान्यतः मृदुभाषी और क्षमाशील था।

कई वर्ष बीत गए। अपने बिगड़ते हुए स्वास्थ्य को मन में रखते हुए, उसने स्वयं को अच्छी चिकित्सा सुविधाएँ वाले एक पर्वतीय प्रदेश में स्थित आवास में स्थानान्तरित करने का निर्णय लिया। उसने एक बड़ी राशि में अपना घर बेच दिया और अधिकतर राशि का भुगतान बैंक ड्राफ्ट के रूप में प्राप्त किया। चूँकि उसका बैंक उस दिन बन्द हो चुका था, उसने अगले दिन बैंक में प्रस्तुत करने के अभिप्राय से ड्राफ्ट को अपनी अलमारी में सहेज कर रख दिया। उस रात, जब वह करवटें बदलता रहा और सो नहीं पाया, उसने एक ध्वनि सुनी। यह निर्धारित करने का तनिक भी प्रयास किए बिना कि उसका कारण क्या हो सकता है, उसने पुलिस को फ़ोन किया। शीघ्र ही कुछ पुलिसकर्मी पहुँचे। जाँच करने पर, उन्होंने पाया कि उसका कारण एक चोर नहीं, प्रत्युत एक चूहा था।

उनके जाने के बाद, उसकी पत्नी ने उससे पूछा, "आप इतनी तुरन्त क्यों घबरा गए?" "मैं ड्राफ्ट की सुरक्षा को लेकर इतना चिन्तित था कि सो नहीं पाया। जैसे ही मैंने एक ध्वनि सुनी, मुझे लगा कि मेरा भय सच हो गया है और एक चोर घुस आया है जो ड्राफ्ट चुरा लेगा। इसलिए मैंने सहायता के लिए फ़ोन

किया। अब मुझे पता चला कि मैंने अति प्रतिक्रिया दे दी," उसने झेंपते हुए कहा। उसने बिना सोए रात बिताई और अगले प्रातःकाल अपने बैंक के खुलने के पहले ही उधर पहुँच गया। ड्राफ्ट प्रस्तुत करने के बाद ही उसने चैन की साँस ली। उसके जाने के कुछ समय बाद, बैंक में एक अजीब घटना घटी।

कुछ चेक और ड्राफ्ट, जिसमें उसके द्वारा सौंपा गया ड्राफ्ट भी सम्मिलित था, गुम हो गए। प्रबन्धक और सम्बन्धित कर्मचारियों को तनाव ने जकड़ लिया और वे खो गई वस्तुओं को व्यग्रतापूर्वक ढूँढने लगे। जब एक चपरासी ने उस मर्म के समाधान की घोषणा की, तब सबने चैन की साँस ली। प्रबन्धक के पाँच वर्षीय बेटे ने, जो अपने पिता से मिलने के लिए बैंक आया था, एक मेज़ पर पड़े चेक और ड्राफ्ट लेकर शौचालय में प्रवेश किया था। एक बाल्टी में पानी भरकर, वह उनसे कागज़ की नावें बनाने ही वाला था जब चपरासी ने उसे देखा था और उसे रोक दिया था।

जिसने ड्राफ्ट को सौंपा था, उसे तो यह सब पता नहीं था। अगले दिन, उसने पर्वतीय प्रदेश में स्थित अपने अभिलषित घर के क्रय को अन्तिम रूप दिया, जहाँ उसने रहने का मन बनाया था। शीघ्र ही वह अपने नए निवास में पूर्ण रूप से स्थानान्तरित हो गया। उसका पुराना घर गिरा दिया गया और वहाँ एक शॉपिंग कॉम्प्लेक्स बनाया गया। जब उसने पहली बार शॉपिंग कॉम्प्लेक्स देखा, तो उसने अपने मित्र से कहा, "यह अच्छा लग रहा है।"

कहानी के व्यक्ति के मन में पहले दृढ़ भाव था, "यह मेरा घर है," और उस भवन से उसे बहुत लगाव था। इसलिए, एक कील को एक दीवार में ठोंकना भी उसे ऐसा लगता जैसे उसके मन में भाला झोंक दिया गया हो। घर बेचने और बदले में बैंक ड्राफ्ट प्राप्त करने के बाद, उसने दृढ़ता से माना, "यह मेरा ड्राफ्ट है," और उसे महत्त्वपूर्ण माना। परिणामस्वरूप, वह उसके बारे में चिन्तित होते हुए, बिना नींद के अपनी रात बिताई। उसने उसे अपने बैंक में प्रस्तुत करते ही, उसे अपने मूल्यवान पदार्थ के रूप में मानना छोड़ दिया। तो, उसने आराम किया। दूसरी ओर, बैंक के अधिकारियों ने, जो उसके अस्थायी संरक्षक बन गए, अपनी शान्ति खो दी जब उन्होंने पाया कि वह गुम हो गया है।

वही व्यक्ति अपने निवास को पहाड़ी प्रदेश में स्थानान्तरित कर दिए जाने के बाद, जब उसने पहली बार अपने पूर्व महल के स्थान पर एक शॉपिंग कॉम्प्लेक्स देखा, तब वह उद्विग्न नहीं हुआ; प्रत्युत वह उस नए निर्माण की सराहना करने में सक्षम था। इसका कारण यही था कि अब उसके पास अपने पूर्व महल के सम्बन्ध में ममता, यानी ऐसी भावना कि 'अमुक पदार्थ मेरा है,' नहीं थी, अतः उसके विध्वंस ने उस पर प्रभाव नहीं डाला। उसके प्रति उसकी भावना पहले जैसी प्रबल होती, तो वह शोक से मूर्छित हो जाता। अन्ततोगत्वा, वह पहले उसकी दीवार में कील ठोकने को भी सहन नहीं कर पाया था।

विदेह देश के सम्राट जनक को एक बार सूचना मिली कि उनकी राजधानी मिथिला में आग लगी हुई है। वे पूरी तरह से अविचलित बने रहे और बोले, "यद्यपि मिथिला जल रही है, तथापि मेरा कुछ भी नहीं जल रहा है।" वे अपने राज्य के सम्बन्ध में ममता से पूरी तरह से मुक्त थे और इसलिए, यद्यपि वे निष्ठापूर्वक शासक के भारी बोझ को झेलते रहे, तथापि सदैव शान्त बने रहे।

जब कोई व्यक्ति में किसी वस्तु के सम्बन्ध में ममता होती है, तो वह उस वस्तु के साथ जो होता है या जो होने की सम्भावना को मानता है, उससे प्रभावित होता है। उसके उस विचार को छोड़ने पर, वस्तु उसकी मानसिक अशान्ति के लिए एक उत्प्रेरक बनना बन्द कर देती है। व्यक्तियों, स्थानों और वस्तुओं के सन्दर्भ में, 'मेरा'-भाव का परित्याग, एक व्यक्ति को अपनी दक्षता से समझौता किए बिना, शान्त और आनन्दित बनाता है।

70. आनन्द का स्रोत

"मिठाई से मुझे बहुत आनन्द मिलता है। इसलिए, जब भी उन्हें प्रस्तुत किया जाता है, मैं उन्हें स्वीकार करने में संकोच नहीं करता। इसके

अतिरिक्त, मैं प्रतिदिन कुछ मिठाई खाने का अभ्यास बनाए रखता हूँ," एक व्यक्ति ने अपने मित्र से कहा। कुछ दिन बीत गए। वह रुग्ण हो गया और उसे शय्या पर लिटा दिया गया। उसके डॉक्टर ने उसे सूचित किया कि वह मधुमेह और संक्रमण से पीड़ित है। उसका मित्र, जो इन सब से अनजान था, एक दिन उसके पास आया और उसने कहा, "मैं तुम्हारे लिए मिठाई का एक डिब्बा लाया हूँ।" अधिकतर निराशा में, शय्या पर पड़े रोगी ने उत्तर दिया, "ओह! इसे मुझसे दूर ले जाओ। मैं इसे सर्वथा नहीं चाहता। मिठाई मेरे लिए विष के समान है।"

इस कहानी से पता चलता है कि जो वस्तु एक समय में सुखकारी मानी जाती है, वही दूसरे अवसर पर दुःख का स्रोत बन जाती है। यदि मिठाइयाँ मूलभूत रूप से सुख का स्रोत होतीं, तो व्यक्ति उनका कभी तिरस्कार नहीं करता; उसकी व्याधि ने अवश्य ही मूलभूत सुख के प्रति उसकी इच्छा को, और दुःख के प्रति उसकी घृणा को, कम नहीं किया था। वास्तव में, थोड़ा सा विश्लेषण आसानी से प्रकट करेगा कि ऐसा कोई इन्द्रिय-विषय नहीं है जो आन्तरिक रूप से आनन्द का स्रोत है। इस तरह के विश्लेषण वैराग्य को बढ़ाते हैं।

एक पिता ने अपने बच्चे को पुचकारा। जब वह उसे चूमा ही रहा था, उसकी कँटीली दाढ़ी और मूंछ बालक के मुख पर चुभने लगे और उससे उसे तेज़ वेदना हुई। बच्चा चीख उठा। उसे शान्त करने हेतु उत्सुक पिता ने बार-बार उसे चूमा। फलस्वरूप, बच्चा और भी अधिक विलाप करने लगा।

बृहदारण्यक-उपनिषद् सिखाती है, "केवल आत्मार्थ ही सब कुछ प्रिय है।" एक पति अपनी पत्नी से केवल उसके लिए प्यार नहीं करता, प्रत्युत इसलिए प्यार करता है क्योंकि वह उसे अपना जीवनसाथी मानता है और उसके सुखों को अपने सुख के साथ जोड़ता है। उपर्युक्त उदाहरण में, पिता बच्चे को सान्त्वना देना चाहता था क्योंकि वह उसे अपना बच्चा मानता था और अपनी सन्तुष्टि को उसके सान्त्वना और आनन्द के साथ जोड़ता था।

भगवत्पाद जी ने अपनी शतश्लोकी में सिखाया है, "कोई वस्तु तब तक प्रिय बनी रहती है जब तक उससे सुख प्राप्त होता है, और जिस समय वह दुःख का कारण होता है, उस समय उससे घृणा होती है। एक ही वस्तु को सदैव इष्ट या अनिष्ट नहीं किया जा सकता है। कभी-कभी, जो प्रिय नहीं था, वह प्रिय हो सकता है। इसके अतिरिक्त, जो प्रिय था, वह अप्रिय हो सकता है। जिस आत्मा की ओर प्रेम कभी कम नहीं होता, वह आत्मा सदैव सर्वाधिक प्रिय होती है।"

आत्मा सदैव सबसे प्रिय है क्योंकि यह सदैव आनन्द का स्रोत है। वास्तव में, उपनिषद् इस बात पर बल देती हैं कि आत्मा विशुद्ध, अर्थात् अदुःखमिश्रित, आनन्द-स्वरूप है। चूँकि व्यक्ति शुद्ध आनन्द होने के अपने मूलभूत स्वरूप को जानने में विफल रहता है, इसलिए वह इन्द्रिय-विषयों को भूल से सुख का स्रोत मान लेते हुए, उनकी ओर मुड़ जाता है। जो सुख किसी को इन्द्रिय-वस्तुओं से प्राप्त होता है, उसका मूल वास्तव में आत्मा का ही आनन्द है। इस प्रकार, आनन्द का स्रोत एक ही है और वह है आत्मा।

गुरु, प्रत्यक्ष परमेश्वर

71. भँवरों में फँसना

एक कीड़ा नदी में गिर गया। वह जल के बहाव के साथ घसीटा गया और शीघ्र ही एक भँवर में फँस गया। गोल-गोल घूमता रहा। जीवित रहने के बारे में हताश होकर, उसने बचने के लिए सङ्घर्ष किया, परन्तु वह विफल रहा। कुछ समय बाद, मुख्य रूप से प्रवाह की गति के कारण, उसने स्वयं को भँवर से बाहर पाया। हाय! इससे पहले कि वह अपनी सुरक्षा का आनन्द ले पाता, वह एक और भँवर की चपेट में आ गया। फ़िर वह वृत्तों में घूमाया गया। इस आवर्त से उसकी मुक्ति बहुत अल्प काल के लिए थी, क्योंकि वह फ़िर से दूसरे भँवर में फँस गया।

उसका जीवन निश्चित रूप से समाप्त हो गया होता यदि एक दयालु मनुष्य ने उसकी दुर्दशा नहीं देखी होती। वह व्यक्ति उस स्थल पर पहुँचा जहाँ कीड़ा एक भँवर में घूम रहा था और उसने कोमलता से उसे बचाया। वह उसे किनारे पर ले गया और अन्त में सूखी भूमि पर छोड़ दिया। कीड़े को पता चला कि समय बीतने के साथ अगर जल उभर जाता, तो वह सङ्कट में फँस जाता। इसलिए वह नदी से दूर चला गया और शीघ्र ही आसपास वाले एक पेड़ के नीचे सुरक्षित स्थान पर पहुँच गया।

संसार-चक्र में मनुष्य की दुर्दशा कीड़े के दुर्भाग्य जैसी होती है। लोग सुख प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। जो सुख उनके द्वारा प्राप्त किया जाता है, वह उन्हें सुख पाने और दुःख से बचने के लिए और भी प्रयास करने के लिए प्रेरित करता है। इस प्रकार, एक कर्म और भोग का बुरा घटनाचक्र प्रारम्भ हो जाता है, जिससे वस्तुतः कोई मुक्ति नहीं है। यह चक्र जीवन की नदी में एक आवर्त के समान है। मृत्यु के बाद एक व्यक्ति दूसरे जन्म की ओर बढ़ता है, जैसे कीड़ा एक भँवर से दूसरे में गया था। उदाहरण में कथित दयालु व्यक्ति की तरह, सद्गुरु कर्म और उसके फल-भोग के चक्र तथा जन्म और मृत्यु के चक्र में फँसे निस्सहाय व्यक्ति को सहायता प्रदान करते हैं। एक सद्गुरु की कृपा और मार्गदर्शन प्राप्त करने के बाद, व्यक्ति को किनारे

पर रखे कीड़े जैसे प्रयास करके, जीवन्मुक्त — जीवित रहते हुए ही संसार बन्धन से मुक्त — हो जाना चाहिए।

72. द्वार में आए अवसर को अनदेखा करना

भगवान शिव और उनकी पत्नी, देवी पार्वती, एक बार आकाश-मार्ग से जा रहे थे। उन्होंने चीथड़ों में लिपटे हुए एक भिखारी को देखा। पार्वती ने कहा, "हे प्रभो, यह हृदयविदारक है कि यह व्यक्ति इतना निर्धन है कि उसे भिक्षा माँगनी पड़ती है, और वह भी अपराह्न की भीषण धूप में घंटों पैदल चलकर। क्या आप उसके लिए कुछ नहीं कर सकते?" प्रभु ने उत्तर दिया, "मेरे लिए यह कोई कठिन बात नहीं है कि मैं उसके लिए कुछ धन का प्रबन्ध करूँ। परन्तु, उसके पास उसे प्राप्त करने के लिए उचित बुद्धि नहीं है।" पार्वती ने आग्रह किया कि भिखारी को एक अवसर दिया जाए। उनकी इच्छा को स्वीकार करते हुए, प्रभु ने सोने से लदी एक पेटी बनाई और उसे भिक्षुक के मार्ग में रख दिया।

जब भिखारी उस स्थान के पास पहुँच रहा था जहाँ वह पेटी रखी थी, तब उसने सोचा, "अब मैं बिना किसी कठिनाई के चलने-फ़िरने में सक्षम हूँ, क्योंकि मैं अबाधित दृष्टि से सम्पन्न हूँ। जब मैं बूढ़ा हो जाऊँगा तो मेरी आँखों का आलोक पूरी तरह से नष्ट हो सकता है। तब मैं कैसे चल पाऊँगा? अच्छा होगा कि मैं अभी अभ्यास करूँ और स्वयं को अन्धेपन को निपटने के लिए उद्यत करूँ।" इस प्रकार तय करते हुए, उसने अपनी आँखें मूँद लीं और एक अन्धे की तरह चलने लगा। परिणामस्वरूप, वह पेटी पर ध्यान दिए बिना आगे बढ़ गया। सस्मितवदन, प्रभु ने पार्वती से पूछा, "अब क्या तुम्हें अवगत हुआ कि मेरा क्या तात्पर्य था?"

भगवान की कृपा से हमें मानव जन्म मिला है, विवेक-विचार शक्ति मिली है और सत्य के बारे में सिखाने के लिए गुरु भी प्राप्त हुए हैं। इन सब के

होते हुए भी, यदि हम अभी असावधान बने रहते हैं, तो हम कहानी के भिखारी की भाँति, एक अद्भुत अवसर का लाभ उठाने में विफल होंगे।

73. गुरु की आवश्यकता

एक ग्राहक किसी स्वर्णकार के पास पहुँचा। उस ग्राहक के पास एक हीरा था और वह उसके मूल्य का पता लगाना चाहता था। उसका यह विचार था कि वह हीरा निर्दोष है और उससे उसे अच्छा मूल्य मिल जाएगा। स्वर्णकार ने उसका परीक्षण किया और कहा, "यह हीरा बहुत मूल्यवान नहीं है क्योंकि इसमें काले बिन्दु के रूप में एक दोष है।" ग्राहक ने हीरे को अच्छी तरह से परखा, परन्तु बिन्दु का पता नहीं लगा सका। तो उसने स्वर्णकार से कहा, "मुझे कोई बिन्दु नहीं दिख रहा है।" स्वर्णकार ने उसे सावधानी से जाँचने के लिए कहा। तब भी ग्राहक बिन्दु को देखने में असफल रहा। स्वर्णकार ने तब कई दिशा-निर्देश दिए कि कैसे उलट-पलटकर उस बिन्दु की पहचान की जा सकती है। कुछ समय बाद, ग्राहक बिन्दु को देखने में सफल हो गया।

हीरे की जाँच जैसे विषय में भी, मार्गदर्शन आवश्यक है। तो सत्य को, जो सूक्ष्मतम है, समझने में मार्गदर्शन के महत्त्व के बारे में क्या कहा जाना चाहिए? कठोपनिषद् की घोषणा है, "चूँकि आत्मा सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर है, वह तर्कों की परिधि से परे है।"

एक व्यक्ति उपनिषदों को पढ़ सकता है, जो परम सत्य की व्याख्या करते हैं, और शास्त्रों के अर्थ पर गहराई से विचार भी कर सकता है। परन्तु, उसके लिए सर्वोच्च ब्रह्म का अपरोक्ष-साक्षात्कार, और उसके द्वारा, मोक्ष प्राप्त करने हेतु, इतना पर्याप्त नहीं है। आत्मज्ञान के लिए गुरु की कृपा और

निर्देश महत्त्वपूर्ण हैं। छान्दोग्य-उपनिषद् में कहा गया है, "गुरु से ही प्राप्त ज्ञान निश्चित रूप से अत्यन्त लाभकारी होता है।"

74. गुरु के लिए कोई दृष्टान्त नहीं

यदि किसी वस्तु को लक्षित किया जाना है, तो ऐसा करने की एक प्रभावी रीति यह है कि एक वस्तु प्रस्तुत करना जो उसके सदृश हो, और घोषित करना, "इसके जैसी है वह वस्तु।" हालाँकि, तीनों लोकों में, पारस-मणि सहित, ऐसा कुछ भी नहीं है जो गुरु के लिए दृष्टान्त बन सकता है।

यदि लोहे का एक टुकड़ा पारस-मणि के सम्पर्क में आता है, तो वह सोने में बदल जाता है। सोने की तुलना में लोहे का मूल्य कितना कम है! एक पारस-रत्न में, कम मूल्यवान लोहे को अतिमूल्यवान सोने में परिवर्तित करने की शक्ति होती है। गुरु तो एक अज्ञानी और बेकार व्यक्ति को भी ज्ञान के मूल्यवान प्रतीक में परिवर्तित कर देते हैं। इस प्रकार, ऊपर-ऊपर से यह प्रतीत हो सकता है कि स्पर्श-रत्न के द्वारा गुरु का चित्रण अच्छी तरह से किया गया है।

हालाँकि, स्पर्श-मणि का आलम्बन लेकर गुरु का वर्णन करने का प्रयास सफल नहीं होगा। सही तो लोहे का एक टुकड़ा एक स्पर्श-मणि द्वारा सोने के टुकड़े में बदल जाता है; मगर यदि उस सोने के टुकड़े को लोहे के एक टुकड़े के सम्पर्क में लाया जाए, तो सोना और लोहा दोनों यथावत बने रहेंगे। कोई रूपान्तरण नहीं होगा। दूसरी ओर, एक श्रद्धा और भक्ति से सम्पन्न शिष्य, न केवल गुरु के द्वारा एक ज्ञानी में बदल दिया जाता है, अपितु उसे किसी दूसरे शिष्य को स्वयं की योग्यता के समतुल्य बदलने में भी सक्षम बना दिया जाता है। दूसरे शब्दों में, एक गुरु न केवल अपने शिष्य को एक ज्ञानी में बदल देते हैं, किन्तु उस शिष्य को किसी दूसरे को एक ज्ञानी में बदलने की शक्ति भी

प्रदान करते हैं। इस प्रकार, स्पर्श-मणि गुरु के लिए दृष्टान्त नहीं बन पाता। वास्तव में, गुरु के लिए कोई उपमा है ही नहीं।

75. सद्गुरु सभी पर निर्दोष रूप से कृपा करते हैं

एक प्रबुद्ध ऋषि अपने शरीर और परिवेश को भूलकर अपना अधिकांश समय, वन में योग के चरमोत्कर्ष निर्विकल्प-समाधि में व्यतीत करते थे। एक दिन, दो युवक उनकी दिव्य सन्निधि में आए, श्रद्धापूर्वक प्रतीक्षा करते रहे, और जब तक कि समाधि से उनका मन बाहर नहीं आया, तब तक हाथ जोड़कर निश्चल खड़े रहे। ऋषि की आधी मूँदी हुई आँखें खोलते ही उनकी दृष्टि उन युवकों पर पड़ी, तो उन दोनों ने देर तक साष्टाङ्ग प्रणाम किया। फ़िर, उन दोनों ने उनसे उन्हें अपने शिष्यों के रूप में स्वीकार करके उन पर अनुग्रह करने के लिए विनम्र प्रार्थना की। अद्वैत सत्य के अपने ज्ञान के आधार पर, ऋषि सभी कर्तव्यों और इच्छाओं को पार कर चुके थे। हालाँकि, दया के सागर होने के कारण, उन्होंने युवकों के अनुरोध को स्वीकार कर लिया।

युवकों को गुरुसेवा — जो एक शिष्य के लिए अमूल्य है — करने का अवसर देने हेतु, उन्होंने उन्हें दैनन्दिन कार्य सौंपे, जैसे कि उनके गेरुए वस्त्र को धोना, उस स्थान की शुद्धि करना जहाँ उन्होंने तपस्या की और जंगल के किनारे पर स्थित गाँवों में भिक्षाटन करके भोजन प्राप्त करना। उन्होंने दोनों को एक मन्त्र से दीक्षित किया और उन्हें ध्यान करने का विधान सिखाया।

दो शिष्यों में से एक शीघ्र ही ध्यान करने में दक्ष बन गया, जो शिला जैसा स्थिर एवं एकाग्र मन से, बिना शरीर के बारे में भी अभिज्ञता के, घंटों तक बैठा रहता था। दूसरा पूरे मन से तथा नियमित रूप से ध्यान लगाने का प्रयास करता रहा, परन्तु समुद्र के लहरों की तरह उठकर गुम होकर

विचलित करने वाले विचार उसके प्रयासों को सतत विफल करते थे। ऋषि द्वारा सिखाए गए विषयों को पहले शिष्य ने आसानी से समझा। दूसरे लड़के ने श्रद्धासहित कक्षाओं में भाग लिया और लम्बे समय तक पढ़ाए गए अंशों को पढ़ता रहा। परन्तु, चूँकि वह एक प्रखर बुद्धि वाला नहीं था, इसलिए उसे अपने साथी की तुलना में बहुत कम समझ में आया। दोनों शिष्यों ने कुशलता के साथ उन्हें सौंपे गए कार्यों को पूर्ण रूप से निभाया।

पाँच वर्ष बीत गए। एक दिन गुरुजी ने अपने शिष्यों से कहा, "तुम्हारी पढ़ाई अब पूरी हो चुकी है और अब तो अपने घर लौटने का समय है।" वे अपने गुरुजी से बहुत प्रेम करते थे और उनसे बिछुड़ने का विचार भी उनके लिए बहुत पीड़ाकर था। हालाँकि, उन्हें दृढ़ विश्वास था कि किसी भी समय, किसी भी कारण से, यहाँ तक कि अत्यल्प मात्रा तक भी, गुरुजी की किसी भी आज्ञा का उल्लङ्घन नहीं किया जाना चाहिए। इसलिए, अपने गुरुजी के निर्देश के अनुसार, वे प्रस्थान करने के लिए उद्यत हो गए। पहले शिष्य ने अपने गुरुजी के समक्ष साष्टाङ्ग प्रणाम किया। ऋषि ने उसे अभय-मुद्रा से आशीर्वाद दिया। जब दूसरा शिष्य आगे बढ़ा, तो ऋषि ने अपना दिव्य हाथ शिष्य के सिर पर रखा और निश्चितता के साथ कहा, "तुम पूर्ण रूप से प्रबुद्ध हो, इसी क्षण।" उनकी कृपा इतनी प्रबल थी कि शिष्य तुरन्त प्रबुद्ध महात्मा बन गया।

पहले शिष्य को असन्तोष हुआ क्योंकि अपने मित्र से विपरीत, उसे विशेष आशीर्वाद नहीं मिला। अपने गुरुजी से अपनी भावनाओं या विचारों को न छिपाने वाला होने के नाते, उसने हाथ जोड़कर पूछा, "हे प्रभो, मेरे मन में एक सन्देह उत्पन्न हो गया है। मैं इसे व्यक्त करने के लिए आपकी अनुमति चाहता हूँ। आपकी कृपा से मेरा ध्यान उससे बहुत श्रेष्ठ रहा है और मैं आपकी कक्षाओं के समय, उसकी तुलना में बहुत अधिक समझ चुका हूँ। ऐसी स्थिति में, हे स्वामिन्, आपने मुझ पर विशेष कृपा न करके उस पर क्यों की? यदि मेरा प्रश्न अनुचित है, तो कृपया मुझे क्षमा करें।"

गुरु - तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देने से पहले, मैं तुम्हें कुछ प्रश्न पूछता हूँ। मेरे बारे में तुम क्या सोचते हो?

पहला शिष्य - आप मेरे पूज्य गुरु हैं। आप एक महान ऋषि हैं, जिन्होंने सर्वोच्च का अपरोक्ष-साक्षात्कार किया है और वह सब कुछ प्राप्त कर चुके हैं जो प्राप्त किया जाना है।

गुरु - क्या मैं अपने शिष्यों के साथ व्यापार करने वाला व्यक्ति प्रतीत होता हूँ?

पहला शिष्य – सर्वथा नहीं।

गुरु - वत्स, तुमने अपने श्रेष्ठतर ध्यान और वेदान्त की अधिक जानकारी के बारे में बताया। तुमने कहा कि मैं व्यापारी नहीं हूँ। तो फ़िर तुम मुझसे यह अपेक्षा क्यों करते हो कि मैं अपने शिष्य की सेवा, मेरे शिक्षण को समझने में सफलता और मेरे निर्देशों के अनुसार अभ्यास में प्रगति के लिए, उस पर आनुपातिक मात्रा में अनुग्रह करूँ? तुमने यह भी कहा कि मैंने वह सब प्राप्त कर लिया है जो प्राप्त किया जाना है। यदि ऐसा है, तो मैं तुम्हारी सेवा द्वारा, अथवा जिसके माध्यम से मेरा नाम फैल जाएगा, वैसा ध्यान में कुशल एक व्यक्ति का निर्माण करके, कुछ भी पाने वाला नहीं हूँ।

पहला शिष्य - क्या ध्यान और विचार अब मेरे साथी को प्राप्त हुए तत्त्वज्ञान के साधन नहीं हैं?

गुरु – निस्सन्देह, वे हैं। अगर ठीक से अभ्यास किया जाए, तो ध्यान और विचार अहङ्कार को मिटा देते हैं। मेरे वत्स, तुम्हें लगता है, "मैं अच्छी तरह से ध्यान करता हूँ। मैं एक विद्वान हूँ।" तुम्हें इस तरह से अहङ्कारी नहीं होना चाहिए। दूसरी ओर, तुम्हारे साथी को लगता है, "मैं कुछ भी नहीं हूँ। मेरे गुरुजी मुझे चाहे किसी भी अवस्था में रख दें, वही वह सब कुछ है जो मुझे चाहिए। मेरे गुरुजी मेरे साथ जो करना चाहें, करें।"

पहला शिष्य - यदि आध्यात्मिक पथ पर प्रगति नहीं पाए हुए शिष्य, गुरु की कृपा से सीधे ही तत्त्व-साक्षात्कार प्राप्त करने की सम्भावना हो, तो क्या आध्यात्मिक प्रयास अनावश्यक नहीं हो जाता?

गुरु - सर्वथा नहीं। शिष्य को अपने गुरु के निर्देशों का अपनी क्षमता के अनुसार पूरी तरह से पालन करना चाहिए और फ़िर, अपने गुरु या भगवान के हाथों में सब कुछ छोड़ देना चाहिए; उसकी वह क्षमता महान हो सकती है या

अल्प। "मुझे अपने गुरु द्वारा बताई गई दिशा में व्यक्तिगत रूप से कदम उठाने की आवशकता नहीं है। वे स्वयं मुझे लक्ष्य तक पहुँचाएँ" — यदि ऐसा सोचकर कोई शिष्य आलसी या असावधान होगा, तो वह निश्चित रूप से सर्वोच्च नहीं प्राप्त करेगा। निस्सन्देह, तुम्हारे साथी ने अपना सर्वश्रेष्ठ प्रयास किया। यह सच है कि उसकी तुलना में कहीं अधिक क्षमता वाले तुम भी श्रद्धावान रहे।

मेरे वत्स, मैं तुम दोनों को समान रूप से प्यार करता हूँ। एक माँ अपने कुछ दिनों के नवजात शिशु पर अपने दस साल के बच्चे की तुलना में अधिक ध्यान देती है। ऐसा इसलिए नहीं है कि वह बड़े बच्चे से कम प्रेम करती है, प्रत्युत इसलिए कि छोटी सन्तान की देखभाल की अधिक आवश्यकता होती है। तुम बहुत बुद्धिमान, समझदार और अच्छी तरह से ध्यान करने वाले हो। तुम अपने अहङ्कार को मिटाने का प्रयास करो और तुम्हें सर्वोच्च का अपरोक्ष-साक्षात्कार होगा। उसके लिए, तुम पर मेरा पूरा आशीर्वाद है। तुम्हारा साथी नवजात शिशु की तरह असहाय है। वह न तो बुद्धिमान है, न विद्वान है और उसका मन बहती वायु की तरह भटकता है। अगर मैं उसे स्वयं नहीं उद्धार करता, तो वह नष्ट हो जाता। इसलिए, मैंने उसे विशेष आशीर्वाद दिया। जहाँ तक तुम्हारी बात है, तुम भी प्रबुद्ध ज्ञानसम्पन्न हो जाओगे। इस बारे में कोई सन्देह या आशङ्का नहीं है। कई ऐसे व्यक्ति होंगे जिनका तुम्हारे द्वारा उत्थान किया जाएगा।

गुरुजी ने तब दूसरे शिष्य को बुलाया, जो अपने साथी को निजी चर्चा करने की सुविधा हेतु कुछ दूरी पर खड़ा था।

गुरु - जब तुमने दण्डवत् प्रणाम किया था, तब यदि मैंने तुम्हारी उपेक्षा की होती, तो तुम क्या सोचते?

दूसरा शिष्य - प्रभु, आप मेरे सर्वस्व हैं। आप श्रेष्ठतर जानते हैं। इसलिए यदि आपने मेरी उपेक्षा की होती या शाप भी दिया होता, तो मैं चुप और पूरी तरह से सन्तुष्ट रहता।

पहले शिष्य की ओर मुड़ते हुए गुरुजी ने कहा, "देखो इसकी भक्ति कितनी गहरी है। उसने सच कहा जब उसने कहा कि अगर मैं उसे शाप भी दे देता,

तो भी वह सन्तुष्ट रहता। मैंने तुम्हें आशीर्वाद दिया और फ़िर भी, तुम्हें असन्तोष लगा। उसकी और तुम्हारी भक्ति के बीच कितना अन्तर है!" पहले शिष्य ने लज्जा से अपना सिर झुका लिया। कृपापूर्ण दृष्टि से उसे देखते हुए, गुरुजी ने सुस्पष्ट ढंग से घोषित किया, "तुम्हारे मार्ग में अड़चन रहे तुम्हारा अहङ्कार मिटाने के लिए अनुकूल स्थिति बनाने के एकमात्र उद्देश्य से, मैंने तुम्हारे साथी से प्रश्न पूछा। अब चूँकि विनम्रता ने तुम्हारे हृदय को व्याप्त कर लिया है, तुम सर्वोच्च के पात्र हो और वह तुम्हें प्राप्त होगा।" ऐसा कहकर, उन्होंने पहले शिष्य को विशेष रूप से अनुगृहीत किया और उस शिष्य ने तुरन्त सर्वोच्च को प्राप्त कर लिया।

शिष्यों के बीच अन्तर होने पर भी, आदर्श सद्गुरु जानते हैं और वही करते हैं जो उनमें से प्रत्येक के लिए सबसे अच्छा होता है। उनकी दया करने की रीति सदैव निर्दोष रहती है।

76. जहाँ निन्दा एक आशीर्वाद है

देवदत्त एक प्रतिभाशाली और निपुण लड़का था जो एक बड़े विद्वान ऋषि के आश्रम में स्ववेदशाखा और शास्त्रों का अध्ययन किया करता था। पाँच अन्य ब्रह्मचारी उसके सहपाठी थे। गुरुजी कड़े थे और यह सुनिश्चित करते थे कि उनके शिष्य, जो उनसे डरते भी थे, अपने ब्रह्मचर्य-आश्रम के नियमों के अनुरूप, एक अनुशासित जीवन बिताएँ।

एक दिन, अपने शास्त्र पाठ के आरम्भ में, गुरुजी ने एक शिष्य से एक प्रश्न पूछा। चूँकि प्रश्न सरल था और पिछले दिन पढ़ाए भाग से सम्बन्धित था, अति प्रतिभावान न होने वाले उस शिष्य ने पर्याप्त उत्तर दिया। गुरुजी ने केवल अपना सिर हिलाया। दूसरे ब्रह्मचारी की ओर मुड़ते हुए, उन्होंने एक साधारण प्रश्न पूछा, जो पिछले दिन के पाठ से ही सम्बन्धित था। ब्रह्मचारी कुछ समय के लिए झिझका और फ़िर उसने सर्वथा अनुचित उत्तर दिया।

तब गुरुजी ने सही उत्तर प्रस्तुत किया और उस लड़के को उसे दोहराने के लिए कहा। ऐसा करते हुए, गुरुजी ने उससे कहा, “और ध्यान दो। मेरे पढ़ाने में अगर तुम कुछ भी नहीं समझ पाते हो, तो तुम्हें मुझसे उसके बारे में पूछने में संकोच नहीं करना चाहिए।”

फ़िर, देवदत्त की ओर मुड़ते हुए, गुरुजी ने एक कठिन प्रश्न पूछा जो एक महीने के पहले पढ़ाए गए भाग से सम्बन्धित था। फ़िर भी, देवदत्त ने उस विषय पर सोचकर अपना उत्तर देना प्रारम्भ किया। वह कुछ समय के लिए सही ढंग से उत्तर देता रहा, फ़िर रुक गया। गुरुजी ने एक पल के लिए प्रतीक्षा की, और वे त्योरी चढ़ाते हुए चिल्ला उठे, “अरे मूर्ख! तुम्हारा उत्तर अतुष्टिकारक है। क्या तुम यहाँ अध्ययन करने आए हो या अपने समय को गँवाने के लिए? इस वर्ग के बाद, मुझे अपना मुख फ़िर से तब तक न दिखाना जब तक तुम मुझे सही उत्तर देने में सक्षम न हो जाओ।” देवदत्त ने मन ही मन सोचा, “मेरे साथी ने कल के पाठ से सम्बन्धित एक सरल प्रश्न का सही उत्तर नहीं दिया, परन्तु मेरे गुरुजी उसके प्रति नरम थे। हालाँकि, मैंने कठिन प्रश्न का आंशिक रूप से उत्तर दिया। फ़िर भी, उन्होंने मुझे कड़ी फटकार दी है। इस तरह की निन्दा से बचने के लिए, मैं और अधिक परिश्रम लगाकर अध्ययन करूँगा और इससे यह सुनिश्चित करूँगा ताकि मैं कभी भी अधूरी तैयारी से पकड़ा न जाऊँ।”

गुरुजी ने पाठ का अध्यापन बनाए रखा। इसके अन्त में, देवदत्त अन्य ब्रह्मचारियों की तरह बाहर नहीं निकला, प्रत्युत अपनी पुस्तकों को लेकर, उसी कमरे में बैठा रहा। कुछ घंटों के बाद, वह अपने गुरुजी के यहाँ गया। गुरुजी ने उससे पूछा, “मैंने तुमसे कहा था कि तुम मेरे पास तब तक मत आना जब तक कि तुम सही उत्तर के साथ उद्यत न हो। क्या अब तुम मुझे इसका उत्तर दे सकते हो?” देवदत्त ने कहा, “हाँ, गुरुजी,” और एक निर्दोष उत्तर दिया। गुरुजी ने अनुमोदन या अस्वीकृति व्यक्त नहीं की। वे केवल कुछ और प्रश्न पूछने लगे। देवदत्त ने उनके सही उत्तर दिए। गुरुजी ने सिर हिलाया और वे आगे बढ़ गए। कक्षाओं में गुरुजी द्वारा पूछे गए प्रश्नों का देवदत्त द्वारा कभी भी सही उत्तर देने में असफल हुए बिना समय बीतता गया।

एक अपराह्न, जब देवदत्त अपने गुरुजी की कुटिया में उनको पङ्खा दे रहा था, तभी एक और ब्रह्मचारी वहाँ आया और उसने बताया कि एक ऐसा व्यक्ति आश्रम में आया है जो एक प्रतिष्ठित विद्वान सा लगता है। गुरुजी ने उचित सम्मान के साथ आगन्तुक का स्वागत करने और उन्हें अपनी कुटी पर ले आने के लिए उस ब्रह्मचारी से कहा। ब्रह्मचारी ने आज्ञा का पालन किया। पण्डित ने गुरुजी के साथ कुशल-क्षेम का आदान-प्रदान किया और फ़िर कहा कि वे शास्त्र-चर्चा के लिए आए हैं। उन्होंने एक विषय का प्रतिपादन किया और फ़िर एक प्रश्न सामने रखा। गुरुजी ने अप्रत्याशित रूप से देवदत्त की ओर देखा और कहा, "उत्तर दो!" देवदत्त अचम्भे में पड़ गया, क्योंकि उसने सोचा कि प्रश्न गुरुजी से पूछा गया था। फ़िर भी, अपने गुरुजी की आज्ञा का पालन करते हुए, उसने तर्कसङ्गत उत्तर देना प्रारम्भ कर दिया। आगन्तुक ने एक और पहलू लिया और दूसरा प्रश्न उठाया। फ़िर से, देवदत्त ने उत्तर दिया और शीघ्र ही बड़ी गहराई की एक पूर्ण चर्चा उभरी। लगभग एक घंटे की चर्चा के बाद, उस पण्डित ने एक जटिल प्रश्न सामने रखा। देवदत्त ने शीघ्रता से उस विषय पर ध्यान दिया जो उसने पढ़ा था और अपने गुरुजी से सुना था। परन्तु, वह सन्तोषजनक प्रतिक्रिया के बारे में सोचने में असमर्थ रहा। अतः, वह चुप हो गया।

यह देखते हुए, उनके गुरुजी ने एक ठोस उत्तर दिया, जिसने आगन्तुक को पूरी तरह से सन्तुष्ट किया। फ़िर, देवदत्त की ओर मुड़कर, गुरुजी चिल्लाए, "तुम एक कलङ्क हो। क्या पुस्तकों में दिए गए विषयों के अतिरिक्त, तुम सोच नहीं सकते? क्या तुम्हें सब कुछ बताना पड़ेगा? यदि तुम केवल उन्हें पुन: प्रस्तुत करने जा रहे हो जो पुस्तकों में है व जो मेरे द्वारा बताया गया है, तो तुम्हारे और तोते में क्या अन्तर है? तुम्हारे स्थान पर एक तोते को यहाँ एक छात्र के रूप में रख सकता हूँ।" इस प्रकार जब गुरुजी देवदत्त को डाँट रहे थे, आगन्तुक मन्दहास रहे थे। देवदत्त ने सर्वथा अपमानित अनुभव किया।

उसने आश्चर्यचकित होकर सोचा, "मेरे गुरुजी इस प्रतिष्ठित पण्डित के सामने मुझे इस तरह अपमानित क्यों कर रहे हैं? अन्ततोगत्वा, मैं उस चर्चा का तनिक भी प्रत्याशी नहीं था और तब भी मैंने अपना वाद यथोचित ढंग से

निभाया। मैं अपने सहपाठियों की तुलना में बहुत श्रेष्ठतर रहा हूँ। तब भी, मेरे गुरुजी मेरी कड़ी निन्दा करते हैं और मेरे बारे में निकृष्ट अभिप्राय रखते हैं। सम्भवतः, मुझ पर उनकी प्रीति नहीं है।" आशा को कभी न खोने वाले उसने सङ्कल्प किया, "मुझे चाहे जितने भी प्रयास करने पड़े और चाहे जिस मात्रा में भी डाँट-फटकार खाने और अपमानित होने पड़े, मैं किसी न किसी प्रकार से शास्त्रों में उस सीमा तक प्रवीणता प्राप्त कर लूँगा कि वे मुझ पर गर्व करने पर बाध्य हो जाएँगे।" इसके बाद, देवदत्त ने न केवल जो पढ़ाया गया था उसका अध्ययन किया, किन्तु शास्त्रोक्त विषयों के निहितार्थों पर भी विचार किया। उसने सम्भावित अनकही आपत्तियों पर विचार किया और उनके प्रबल प्रत्युत्तर भी सोच लिए।

एक दिन, अपने गुरुजी के शास्त्र की कक्षा के समय, देवदत्त को अचानक चक्कर आने लगा और मतली आने लगी। उसने स्वयं को नियन्त्रित करने का प्रयास किया ताकि वह कक्षा में उपस्थित रह सके। हालाँकि, उसके गुरुजी समझ गए कि क्या चल रहा है। नरम स्वर में उन्होंने कहा, "मेरे बेटे, तुम अस्वस्थ हो। अपने आप को तनाव मत दो। झोंपड़ी में जाकर लेट जाओ और आराम करो।" देवदत्त अपने गुरुजी की वाणी में अत्यन्त कोमलता देखकर आश्चर्यचकित रहा। उसने उठने का प्रयास किया, परन्तु उठते ही, चक्कर आने के कारण वह गिरने वाला ही था कि इतने में उसके गुरुजी ने तेज़ी से उठकर उसे पकड़ लिया। फ़िर देवदत्त को अपनी बाहों में उठाकर, गुरुजी ने स्वयं ही उसे झोंपड़ी में ले जाकर पुआल की शय्या पर लेटा दिया। उन्होंने एक वैद्यकीय कषाय बनाया और उसे देवदत्त को पिला दिया। जब दूसरे ब्रह्मचारी वहाँ आए, तो उन्होंने उन्हें बताया कि वे उस दिन के लिए अपनी कक्षा निरसित कर रहे हैं।

एक ब्रह्मचारी को देवदत्त की देखभाल करने का निर्देश देकर और एक दूसरे शिष्य को अपने साथ लेकर, वे आश्रम से बाहर चले गए। वे कुछ घंटे बाद लौटे। उनके शरीर के कई अङ्गों पर चोट के चिह्न थे और उनसे बहुत रक्त बह रहा था। चिन्तित होकर देवदत्त ने उनसे पूछा कि क्या हुआ था। गुरुजी ने केवल इतना कहा, "मेरे बारे में बात नहीं करनी है," और एक विशेष

कषाय बनाने के लिए आगे बढ़े, जिसमें से कुछ उन्होंने देवदत्त को दी। इसके बाद, उन्होंने पूरी रात देवदत्त के पार्श्व में बैठकर उसे हर एक घंटे में कषाय देते हुए बिताई। अपने गुरुजी के वात्सल्य ने देवदत्त के मन को अत्यन्त द्रवित कर दिया। अगले प्रातःकाल, उसे उचित रूप से स्वस्थ लगा।

जब वह अपने स्नान के लिए जाने वाला ही था, उसका एक सहपाठी कुटिया में आया। उसने कहा, "कल रात, मैंने सुना है कि तुमने हमारे गुरुजी से उनके शरीर पर लगी चोटों के बारे में पूछा, परन्तु तुम्हें कोई उत्तर नहीं मिला। मुझे पता है कि क्या हुआ था।" उसने आगे कहा, "कल हमारे गुरुजी मुझे लेकर आश्रम से बाहर चले गए। वे कुछ दूरी तक जंगल में चले। उन्होंने कुछ जड़ी-बूटियाँ एकत्र कीं। उन्होंने उन्हें मुझे दिया और कहा, 'किसी पेड़ की सुरक्षा में मेरे लिए यहाँ प्रतीक्षा करो। परन्तु एक घंटे से अधिक विलम्ब मत करना। यदि मैं तब तक नहीं लौटता, तो आश्रम लौटकर, इन जड़ी-बूटियों के साथ एक औषध बनाना और उसे देवदत्त को दे देना।' उन्होंने मुझे जो जड़ी-बूटियाँ दीं, उनका उपयोग करके औषध बनाने के बारे में मुझे विस्तृत रूप से बताया।

"इसके बाद, वे मुझे वहीं छोड़ते हुए जंगल की गहराई में चले गए। मैं एक वृक्ष पर चढ़ गया और अपने स्थान से उन्हें तेज़ी से आगे बढ़ते देखा। मार्ग में उन्हें घनी, कंटीली झाड़ी का सामना करना पड़ा। उसे पार करने के लिए, उन्हें इसमें से लेटकर जाना पड़ा। उनके ऐसा करने से, उनका शरीर बुरे प्रकार से घायल हो गया। परन्तु, मुझे लगा कि उन्होंने उस पर लक्ष्य नहीं रखा। बस वे उठकर चलते रहे। मैं यह देखकर आश्चर्यचकित रह गया कि वे एक गुफा की ओर बढ़ रहे थे, जिसके मुहाने पर एक बाघिन अपने शावकों के साथ बैठी थी। वह अपने शावकों को पोषित कर रही थी। तुम्हें स्मृति होगी कि हमारे गुरुजी ने हमें बताया था कि बाघ सामान्यतः मनुष्यों को हानि नहीं पहुँचाते हैं और यदि हम जंगल में हमारे चलते समय किसी बाघ का सामना करते हैं, तो हमें बाघ के गुज़रने तक पूरी तरह से निश्चल रहना चाहिए। तुम्हें इसकी भी स्मृति होगी कि उन्होंने चेतावनी दी थी कि बाघिन के

अपने शावकों की देखभाल करते हुए, उससे बचने के लिए विशेष सावधानी बरतनी है, क्योंकि आपत्ति को भाँपते हुए वह हमें मार भी सकती है।

“जैसे ही गुरुजी गुफा की ओर बढ़े, मैं असहाय होकर देखता रहा। मुझे लगा कि मैं उन्हें सावधान करने के लिए चिल्ला दूँ, परन्तु जानता था कि वे इसे स्वीकार नहीं करेंगे। तो मैं जहाँ था, वहीं भयग्रस्त अश्मीभूत होकर बैठा रहा। बाघिन को उनके आने का आभास हुआ और वह गुर्राने लगी। उन्होंने चेतावनी पर ध्यान नहीं दिया और अपनी गति को कम नहीं किया। आश्चर्य की बात है कि बाघिन आराम करने लगी और अपने शावकों को दूध पिलाती रही। वे शीघ्र ही गुफा के प्रवेश द्वार पर पहुँचे और कुछ जड़ी-बूटियाँ इकट्ठा करने लगे। मुझे बोध हुआ कि वे वहाँ गए थे क्योंकि सम्बन्धित जड़ी–बूटियाँ केवल उसी स्थान पर पाई जाती थीं। जड़ी-बूटियों का सङ्ग्रह करने के बाद, वे वापस चले आए। फ़िर, उनके पास मार्ग में झाड़ी के माध्यम से लेटकर होते हुए आने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं था। उन्होंने स्वयं को और घायल कर लिया। जब वे मेरे बैठे वृक्ष तक पहुँचे, तो मैं नीचे उतरा।

“मुझे उनके घावों को घूरते हुए देखकर, उन्होंने इतना ही कहा, ‘ओह! ये कुछ भी नहीं हैं। चलो, हम आगे बढ़ते हैं।’ हम आश्रम लौट आए और मेरी प्रतीक्षा के स्थल पर तथा गुफा के द्वार पर इकट्ठी की गई उन जड़ी-बूटियों से, उन्होंने औषध बनाया जो तुम्हें दिया गया। उन्होंने तुम्हारे लिए अपने प्राण को भी जोखिम में डाल दिए।” देवदत्त बहुत द्रवित हो गया; उसकी आँखों में आँसू आ गए। उसने मन ही मन सोचा, “मैंने कितनी बड़ी भूल की है! मुझे लगा था कि मुझ पर उनकी प्रीति नहीं है। सचमुच, वे मुझसे बहुत प्यार करते हैं।”

एक दिन, जब देवदत्त अपने गुरुजी की कुटिया की सफाई में व्यस्त था, तो एक ब्रह्मचारी वहाँ आया और आश्रम में दो आगन्तुकों के आने की सूचना दी। गुरुजी ने ब्रह्मचारी से उन्हें अन्दर ले आने को कहा। देवदत्त कुटिया से बाहर जाने लगा। परन्तु, गुरुजी ने उसे अपने काम में लगे रहने का आदेश दिया। आगन्तुकों में से एक स्पष्ट रूप से पण्डित था, जबकि दूसरा उसके

शान्त और विनम्र परिचारक प्रतीत होता था। गुरुजी ने आगन्तुकों को बैठने के लिए कहा और उन्होंने कुशल-क्षेम का आदान-प्रदान किया। विद्वान ने कहा कि वह शास्त्रार्थ-चर्चा करने आया है। फ़िर उन्होंने उसका आरम्भ किया। गुरुजी ने देवदत्त को उत्तर देने का निर्देश दिया; उसने ऐसा ही किया।

शीघ्र ही, शास्त्रार्थ-चर्चा प्रौढ़ ऊँचाइयों पर पहुँच गई। एक पक्ष से दूसरे पक्ष तर्क-वितर्क की शृङ्खला चलती रही। आगन्तुक विद्वान को तनिक भी बढ़त प्राप्त हुए बिना, लगभग दो घंटे ऐसे ही बीत गए। कुछ समय बाद, विद्वान ने अपने प्रस्ताव के पक्ष में एक प्रतीयमानतः अकाट्य तर्क को आगे बढ़ाया। हालाँकि, देवदत्त ने उसे सुन्दरता से ध्वस्त कर दिया। विद्वान के पास चुप रहने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं था। देवदत्त ने सोचा कि विद्वान व्याकुल या क्रोधित होंगे। हालाँकि, वह आगन्तुक को बहुत प्रसन्न पाकर चकित था। तब गुरुजी देवदत्त की ओर मुड़े और बोले, “अब तुम जा सकते हो।” देवदत्त ने आज्ञा मानी। फ़िर, आगन्तुक और गुरुजी कुछ समय तक बातचीत में लगे रहे, जिसके बाद, आगन्तुक आश्रम से चले गए।

दो दिन बाद, उस देश के राजा ने आश्रम में आकर गुरुजी से भेंट की। बुलाए जाने पर, देवदत्त बैठक स्थल पर गया व अपने गुरुजी को प्रणाम करके उनसे कुछ दूरी पर आदरपूर्वक खड़ा हो गया। उसके गुरुजी ने उसे बैठने का आदेश दिया। उसने आज्ञा मानी। राजा देवदत्त की ओर मुड़े और अपने आसन से उठकर सम्मानपूर्वक बोले, “मैंने राजधानी के पास जंगल में एक बड़ा आश्रम बनाया है। कृपया इसे मेरी ओर से विनम्र भेंट के रूप में स्वीकार करें। यदि आप धार्मिक विषयों में मेरे मन्त्रणाकार बनने के लिए सहमत होंगे, तो मैं आपका बड़ा आभार मानूँगा। यदि आप आने वाले पण्डितों के पाण्डित्य को मापने के लिए भी सहमत हो जाएँगे — ताकि मैं उन्हें उपयुक्त रूप से सम्मानित और पुरस्कृत कर सकूँ — तो मैं आपका बहुत ऋणी हो जाऊँगा। कृपया मेरे अनुरोधों पर विचार करें और मुझे बताएँ कि क्या आप उन्हें स्वीकार करेंगे। मैं उत्सुकतापूर्वक आशा कर रहा हूँ कि आप मुझे एक स्वीकारात्मक उत्तर देंगे।”

राजा को इस प्रकार उनको सम्बोधित करते हुए सुनकर, देवदत्त उलझ गया। उसने पूछा, "महामहिम, आप मुझे ऐसा प्रस्ताव क्यों दे रहे हैं? आप मेरे बारे में सर्वथा नहीं जानते।" "मैं जानता हूँ," राजा ने कहा, "आपके गुरुजी ने मुझे आपके बारे में बहुत कुछ बताया है। उन्हें आप पर बहुत गर्व है और उन्होंने सुस्पष्ट ढंग से यह बात कहा है कि आप पूरी तरह से अनुशासित विद्वान हैं।" "मेरे गुरुजी ने ऐसा कहा!" देवदत्त ने कहा, उसके जबड़े विस्मय में डूब रहे थे। गुरुजी बोले, "मेरे वत्स, मुझे तुम पर सदैव गर्व रहा। चूँकि मैंने तुम्हें फटकार लगाई, इसलिए तुम्हें लगा कि मेरी दृष्टि में तुम निकृष्ट हो और मुझे तुम पर प्रीति नहीं है। क्या ऐसा नहीं है?" अपनी पूर्व मनःस्थिति के इस सटीक विवरण को सुनकर, देवदत्त अपने आप पर लज्जित हुआ।

गुरुजी ने आगे बढ़ते हुए कहा, "तुम्हें स्मृति होगी कि मैंने एक कक्षा के समय तुमसे एक कठिन प्रश्न किया था और जब तुमने आंशिक रूप से सही उत्तर दिया था, तो मैं तुम पर चिल्लाया था। मैं जानता था कि तुम एक अनमोल हीरे हो, जो ठीक से काटे जाने और चिकनाए जाने पर, दर्शकों की आँखों को चकित कर देगा। तुम अन्य सभी ब्रह्मचारियों से बहुत आगे थे, परन्तु मैं चाहता था कि तुम और ऊपर उठो और सभी पाठ तुम्हारी उङ्गलियों पर हों। तुम्हारे द्वारा और अधिक प्रयास कराए जाने के लिए, मैंने तुम्हें फटकार लगाई। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि मेरे कठोर शब्दों का उद्देश्य प्रचुर मात्रा में सफल हो गया।

"तुम उस चर्चा को भी स्मरण करोगे, जिसमें कुछ समय के लिए ठीक प्रकार से उत्तर देने के बाद, तुम आगे नहीं बढ़ पाए थे। जिन विद्वान के साथ तुमने चर्चा की, वे मेरे एक सहपाठी हैं। मैंने स्वयं उन्हें यहाँ बुलाया था और वह भी ऐसे समय में जब मेरी झोंपड़ी में मेरे साथ केवल तुम होगे। इसके अतिरिक्त, उनके द्वारा पूछे गए जिस प्रश्न ने तुम्हें कठिनाई में डाला था, वह मेरे द्वारा उनसे पहले किए गए अनुबन्ध के अनुसार ही था। जैसा कि तुम जानते हो, जब तुम एक उत्तर पूरा बताने में असमर्थ थे, तब मैंने तुम्हें बहुत डाँटा था। मेरे शब्दों ने तुम्हारे हृदय को तोड़ने की तुलना में, मेरे हृदय को अधिक तोड़ दिया। तब भी, मैं ऐसा करते रहा, क्योंकि मेरी इच्छा

तुम्हें इतना प्रेरित करने की थी कि तुम श्रेष्ठ विद्वान बनकर मेरे सामने स्वयं को सिद्ध करने का दृढ़ सङ्कल्प कर सको। अपने प्रयासों को पूरी तरह से पुरस्कृत पाकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई।

"मेरे बेटे, मैंने इतने दिन तुम्हारी प्रशंसा नहीं की, इसलिए नहीं कि मैं तुम्हारी सराहना नहीं कर रहा था, प्रत्युत तुम्हें असावधान होने की किसी भी सम्भावना से बचाने के लिए था। एक गुरु को अपने शिष्य के अहङ्कार की आग में, घी समान अपनी प्रशंसा की अपायशङ्का को ध्यान में रखना चाहिए। अब जब तुम्हारी पढ़ाई पूरी हो गई है, तो मैं बिना झिझक के, मन खोलकर तुमसे बात करूँगा। तुम मेरे अब तक के शिष्यों में से सबसे श्रेष्ठतर हो। ठीक उसी समय से जब तुम पहली बार मेरे पास आए थे, तुम मेरे हृदय के बहुत निकट रहे।" हाथों को जोड़कर, देवदत्त ने कहा, "हे भगवन्, मैंने आपको समझने में कितनी भूल की! मैं पूर्णतः मूर्ख रहा हूँ। कृपया मुझे क्षमा करें।" गुरुजी ने कहा, "मेरे बच्चे, क्षमा करने के लिए कुछ भी नहीं है। चैन से रहो।"

राजा जो चुपचाप गुरु और शिष्य के बीच का संवाद सुन रहा था, उसने देवदत्त से कहा, "मुझे आपको इस समय बताना चाहिए कि जिस विद्वान से आपने कुछ दिन पहले शास्त्रार्थ किया था, उन्होंने आपके गुरुजी के गुरु के आश्रम में आपके गुरुजी के साथ अध्ययन किया था। वे धार्मिक विचारों में मेरे मन्त्रणाकार रहे, परन्तु अब उन्होंने संन्यास लेकर हिमालय जाने का निर्णय लिया है। उस दिन उनके साथ जो मौन उपस्थित था, वह छद्म भेस में मैं ही था। आपके गुरुजी ने हमें आपके प्रभावशाली पाण्डित्य और वाद-कुशलता का प्रदर्शन देखने के लिए आमन्त्रित किया था। कहने की आवश्यकता नहीं कि हम मन्त्रमुग्ध थे। अब आप समझ सकते हैं कि मैंने आपके बारे में जाने बिना, आपसे अपना अनुरोध नहीं किया था।"

अपने गुरुजी के निर्देश प्राप्त करने के बाद, देवदत्त ने राजा के अनुरोध को स्वीकार कर लिया।

जब एक महात्मा किसी व्यक्ति की निन्दा करते हैं तो वे — अपनी जिह्वा पर अपर्याप्त नियन्त्रण, या द्वेष, अथवा अपमानित करना, या परपीड़न से

कामुकतामय सुख प्राप्त करना — इनके कारण ऐसा नहीं करते हैं। उनका उद्देश्य उस व्यक्ति को सुधारना या उसका उत्थान करना ही होता है। इसीलिए ऐसा कहा गया है, "गुरु द्वारा कठोर शब्दों में फटकारे गए व्यक्ति, महानता को प्राप्त करते हैं।" एक मुनि द्वारा की गई निन्दा वास्तव में दुःख के भेस में सुख होती है।

77. प्रचुर गुरुसेवा को सद्गुरु पुरस्कृत करते हैं

उपमन्यु महर्षि धौम्य का शिष्य था। अपने गुरुजी के निर्देश के अनुसार वह प्रतिदिन आश्रम की गायों को चराने ले जाता था। एक ब्रह्मचारी द्वारा पालन किए जाने वाले नियमों के अनुरूप वह भिक्षाटन से अन्न प्राप्त करता था और अपने गुरुजी को समर्पित करता था। उपमन्यु के परीक्षण के इच्छुक धौम्य ने अपने शिष्य द्वारा लाए गए सारे भोजन को अपने पास रख लिया और उपमन्यु को कुछ नहीं दिया। हालाँकि, गुरुजी ने पाया कि कुछ दिन बीतने के बाद भी उनका शिष्य बहुत बलवान और स्वस्थ रहा। इसलिए उन्होंने उपमन्यु से पूछा कि वह कैसे अपनी शक्ति बनाए रखने में सक्षम है। उपमन्यु ने कहा कि वह दूसरी बार भिक्षा ले आ रहा था। गुरुजी ने कहा कि उसका यह अभ्यास अनुचित है और ऐसे करने से मना किया।

आश्चर्य की बात यह थी कि शिष्य शक्तिशाली बना रहा। अपने गुरुजी द्वारा इसका कारण पूछे जाने पर, उपमन्यु ने कहा, "आजकल, जब मैं गायों को चराने के लिए ले जाता हूँ, तो मैं उनका कुछ दूध पी लेता हूँ।" गुरुजी ने उससे कहा, "अब से तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए। यदि तुम उस दूध का उपभोग करते हो, जो मेरी सम्पत्ति है, तो यह केवल तुम्हारे चोरी करने के समान होगा।" शिष्य ने दूध पीना छोड़ दिया। फ़िर भी, वह स्वस्थ बना ही रहा। ऐसा इसलिए था क्योंकि उसने बछड़ों द्वारा अपनी माताओं का दूध पीए जाने के बाद, उनके मुँह पर बने झाग का सेवन करना प्रारम्भ कर दिया था। शिष्य के इस अभ्यास के बारे में जानने पर, गुरुजी ने आज्ञा दी कि वह

झाग का सेवन न करे। शिष्य ने आज्ञा का पालन किया। परन्तु, भूख को मिटाने के लिए, वह अर्क के पौधे की पत्तियों को खाने लगा। परिणामस्वरूप, उसकी शारीरिक प्रणाली विषैली हो गई और उसने अपनी दृष्टि खो दी। अन्धा होने पर, वह लड़खड़ा गया और एक त्यक्त कुएँ में गिर गया।

साँझ होते ही, गायें उपमन्यु बिना घर लौट आईं। गुरुजी को उपमन्यु के न आने की चिन्ता सताने लगी। "मैं उसकी भक्ति की परीक्षा लेना चाहता था। परन्तु वह कुछ कष्ट में है। वह क्यों नहीं लौटा है?" उन्होंने सोचा। शिष्य को नाम से पुकारते हुए, वे उसे ढूँढने लगे। जब वे उस कुएँ के आसपास के क्षेत्र में पहुँचे जिसमें उपमन्यु गिर गया था, तो एक धीमी ध्वनि ने उनकी पुकार का उत्तर दिया। दुःखी स्थिति को देखते हुए, धौम्य ने उससे पूछा, "तुम इस कुएँ में कैसे गिर गए?" "भूख मिटाने के लिए, मैंने अर्क के पत्तों को चखा। इसके कारण, मैं अन्धा हो गया और इस कुएँ में गिर गया," उपमन्यु ने कहा।

शिष्य की ओर दयापूर्वक निहारते हुए धौम्य ने कहा, "वेद के इस विशेष भाग का पाठ करो जो अश्विनी कुमारों का स्तवन है।" अपने गुरुजी के आदेशानुसार, उपमन्यु ने ऋग्वेदोक्त मन्त्र का पाठ किया। उससे प्रसन्न होकर, देवताओं के चिकित्सक अश्विनी कुमार उसके समक्ष उपस्थित हुए। उन्होंने उसे आटे का एक पुआ दिया और उसे खाने के लिए कहा। हालाँकि, बहुत भूखा होने पर भी, उपमन्यु ने उनसे कहा कि वह अपने गुरुजी के समक्ष समर्पित किए बिना ऐसा नहीं कर सकता। अश्विनी कुमारों ने अपने गुरुजी को अर्पित किए बिना उसे खाने के लिए मनाने का पूरा प्रयास किया, परन्तु उपमन्यु अपने निर्णय से नहीं डिगा। अपने गुरुजी के प्रति निष्ठा से प्रसन्न होकर, अश्विनी कुमारों ने उसकी दृष्टि को वापस लौटाया।

उपमन्यु कुएँ से बाहर निकला, अपने गुरुजी के पास गया और धौम्य के समक्ष साष्टाङ्ग प्रणाम किया। फ़िर, उसने अपने गुरुजी को बताया कि उसके और अश्विनी कुमारों के बीच क्या हुआ। उपमन्यु की गुरुभक्ति से

पूरी तरह से तृप्त, धौम्य ने उससे कहा, “तुम मेरे प्रति अत्यधिक भक्तिमान हो। इसलिए मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि आगे की पढ़ाई और सेवा के बिना भी, तुम्हें सभी चतुर्दश-विद्याएँ तत्काल ही मिल जाएँगी।” उनके शब्द सत्य निकले। कालान्तर में, उपमन्यु एक महान और पूजनीय ऋषि बन गए।

पाञ्चाल देश का आरुणि ऋषि धौम्य का एक और बहुत ही निष्ठावान शिष्य था। उसने परिश्रम से अपने गुरुजी की सेवा की। एक दिन, धौम्य ने उसे खेतों में बाँध सम्भालने के लिए भेजा। आरुणि ने पानी रिस रहे छिद्र को बन्द करने का अपना सर्वश्रेष्ठ प्रयास किया। हालाँकि, वह सफल नहीं हो सका। अन्त में, उसने अपने शरीर की सहायता से धारा प्रवाह को अवरुद्ध कर दिया। समय बीत गया। आश्रम में धौम्य ने पूछा, “आरुणि कहाँ है?” उनके अन्य शिष्यों ने उनसे कहा, “हे प्रभो, आपने उसे बाँध सम्भालने के लिए भेजा था।”

धौम्य तुरन्त अपने शिष्यों के साथ आरुणि को ढूँढ़ने के लिए निकल पड़े। उन्होंने पुकारा, “ओ मेरे बच्चे, तुम कहाँ हो? मेरे पास आओ।” अपने गुरुजी के शब्दों को सुनकर, आरुणि उठ खड़ा हुआ, तुरन्त यथाशक्ति उसने उस छिद्र को बन्द किया और धौम्य के निकट दौड़ पड़ा। उनके समक्ष साष्टाङ्ग दण्डवत् करते हुए उसने बताया कि क्या हुआ था। फ़िर उसने पूछा, “गुरुजी, मेरे लिए आपका और क्या निर्देश है?” धौम्य ने कहा, “तुम्हारे द्वारा किए गए कार्य के नाते, तुम उद्दालक नाम से प्रसिद्ध हो जाओगे। तुमने मेरी आज्ञा पूरी कर दी है। सभी वेद और धर्म-शास्त्र तुम्हें अवगत हो जाएँ।” उद्दालक आरुणि तत्क्षण पूर्ण रूप से विद्वान बन गया।

जो अपने सद्गुरु के प्रति अत्यन्त समर्पित है, वह महात्मा की कृपा से, बिना औपचारिक शिक्षा के भी, विद्वान और बुद्धिमान बन सकता है।

78. ईश्वर और देवगण सच्चे गुरुभक्त का पक्ष लेते हैं

गौतम ऋषि के उत्तङ्क नाम का एक अत्यन्त उन्नत शिष्य था। ब्रह्मचर्य नियमों के पालन में निर्दोष तथा संयमित मन और इन्द्रियों के साथ, उसने उत्साह और तत्परता से अपने गुरु की सेवा की। अनेक वटु गौतम ऋषि के पास आए और उन्होंने उनसे वर्षों तक सीखा। अपनी पढ़ाई के अन्त में, ऋषि ने उन्हें अपने घर लौटने के लिए कहा। हालाँकि, ऋषि को उत्तङ्क से इतना लगाव था कि उन्होंने उत्तङ्क को अपने पास ही रखा। समय बीतने के बारे में शिष्य को पता चले बिना ही कई वर्ष बीत गए। वह अपने गुरुजी की सेवा में ही इस तरह तल्लीन था।

एक दिन, जब वह अपने गुरुजी के अनुष्ठान के लिए समिधाओं के भारी बोझ को अपने सिर पर लेकर जंगल से घर लौटा, तब उसे भूख, निर्बलता और थकावट का अनुभव हुआ। जब उसने गट्ठे को भूमि पर गिराया, तब उसके सिर पर बालों का एक रोम जो समिधाओं में उलझ गया था, उसके साथ गिर गया। वह यह देखकर अचम्भित रह गया कि वह बाल श्वेत रंग का था। उसके बाद ही उसे बोध हुआ कि वह बूढ़ा और जर्जर हो गया है। उसे ऐसी भी जागृति हुई कि जबकि कई वटु आश्रम में आए, अध्ययन किए और अपने गुरुकुलों को स्थापित करने के लिए अन्यत्र चले गए, वह एक छात्र ही बना रहा। उसका हृदय भर आया और उसकी आँखों में आँसू आ गए।

गौतम ऋषि ने यह देखा और उससे कहा, “तुम्हारि समर्पित सेवा से उत्पन्न तुम्हारे प्रति मेरे गहरे प्रेम के कारण, मैं लम्बे समय से यह निश्चय करने में असफल रहा हूँ कि मुझे तुम्हारी पढ़ाई पूरी होने की घोषणा करनी चाहिए थी और मेरे पास से चले जाने की अनुमति दे देनी चाहिए थी।” अपने गुरुजी की कृपा से, उत्तङ्क एक बूढ़े व्यक्ति से एक स्वस्थ और ऊर्जावान युवा में बदल गया। गौतम ने अपनी बेटी का उत्तङ्क के साथ विवाह हेतु प्रस्ताव दिया क्योंकि उन्हें लगा कि वह धर्म-मार्ग में अपने शिष्य के लिए आदर्श साथी सिद्ध होगी। उत्तङ्क ने अपने गुरुजी से विनती की कि वे उसे बताएँ कि वे गुरुदक्षिणा में क्या लेना चाहेंगे। गौतम ने कहा, “मनीषी कहते हैं कि गुरु की सन्तुष्टि

अन्तिम दक्षिणा है। बिना किसी सन्देह के, मैं तुमसे और तुम्हारे आचरण से अत्यधिक सन्तुष्ट रहा हूँ। ऐसा कुछ भी नहीं है जो मैं तुमसे चाहता हूँ।"

उत्तङ्क अपने गुरुजी की पत्नी अहल्या के निकट गया और उनसे कहा, "हे माँ, मैं अपने जीवन के मूल्य पर भी, जो आपके लिए सहमतियोग्य और हितकारी है, उसे पूरा करने की इच्छा रखता हूँ। इसलिए कृपया मुझे बताएँ कि मैं आपके लिए क्या ले आऊँ।" अहल्या ने कहा, "मैं तुम्हारी अखण्ड भक्ति के कारण तुमसे पूरी तरह सन्तुष्ट हूँ। इतना पर्याप्त है। तुमको मेरा पूरा आशीर्वाद है। तुम जहाँ जाना चाहते हो, अपनी इच्छानुसार जाओ।" हालाँकि, उत्तङ्क ने उनसे एक बार पुनः निवेदन किया, "मुझे आज्ञा दो, माँ, क्योंकि यही उचित है कि आपके लिए जो कुछ प्रिय हो, उसे मैं ले आऊँ।" अहल्या ने उसकी विनती के उत्तर में कहा, "यदि ऐसा है, तो मुझे वह दिव्य कर्णाभूषण ले आकर दो जो सौदास की रानी के पास है।" उत्तङ्क तुरन्त ऐसा करने के लिए सहमत हो गया और सौदास के अन्वेषण में निकल पड़ा।

गौतम उस समय आश्रम में नहीं थे। जब वे लौटे, तो उन्होंने जानना चाहा कि उत्तङ्क कहाँ गया है। अहल्या ने बताया कि क्या हुआ था। ऋषि ने उनसे कहा, "तुमने अविवेकता से ऐसा काम किया है। एक शाप के कारण, राजा सौदास अब नरभक्षी बनकर भटक रहा है। अगर उत्तङ्क उसके पास जाता है, तो वह उसे मार देगा। अहल्या ने कहा, "मैंने यह जाने बिना ही ऐसा कर दिया। परन्तु, कृपया अपनी दया से ऐसा करें कि उत्तङ्क पर कोई विपत्ति न आए।" गौतम ने कहा, "तथास्तु।" इस बीच, उत्तङ्क अपनी यात्रा पर आगे बढ़ा और अन्त में, एक निर्जन जंगल में सौदास से उसका सामना हो गया।

नरभक्षी में परिवर्तित हो जाने के बाद, राजा ने अपने ग्रास बनाए गए मनुष्यों के रुधिर से सनी लम्बी दाढ़ी रख ली थी। उसका रूप भयानक था और हर पशु में आतङ्क को प्रेरित करता था। हालाँकि, उत्तङ्क ने किसी भय का अनुभव नहीं किया। उसे देखने पर, सौदास ने कहा, "मुझे प्रसन्नता है कि तुम इस समय यहाँ पहुँचे हो जब मैं अपना भोजन ढूँढ़ रहा था।" उत्तङ्क ने कहा, "मैं अपने गुरुजी हेतु एक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आया हूँ। महात्मा कहते हैं कि जब कोई

व्यक्ति अपने गुरु हेतु कार्य में लगा हो, तो उसे मारना निषिद्ध है।" नरभक्षी ने घोषणा की, "यह मेरे खाने का समय है। मैं भूखा हूँ और तुम्हें जाने नहीं दूँगा।"

उत्तङ्क ने उसे मनाया और कहा, "हम एक सन्धि करते हैं। जब मैं अपना काम पूरा कर लूँगा, तब मैं आपके पास वापस आ जाऊँगा। मैंने कभी विनोद के लिए भी झूठ नहीं बोला है। तो, मेरा आपसे झूठ बोलने का प्रश्न ही कहाँ है? मैं आपको ढूँढ़ते इसलिए आया क्योंकि मुझे जो कुछ चाहिए, वह आपके अभिरक्षण में है।" "तुम मुझसे क्या चाहते हो?" सौदास ने पूछा। "मैं आपसे मुझे दिव्य कर्णाभूषण देने के लिए विनती करता हूँ," उत्तङ्क ने अनुरोध किया। सौदास ने उससे कुछ और माँगने के लिए मनाने का प्रयास किया, परन्तु असफल रहा। तो उसने उससे कहा, "मेरी रानी के पास जाओ और उसे बता दो कि मैंने उसे तुम्हें रत्नजटित कर्णाभूषण देने को कहा है। वह तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार करेगी।" उत्तङ्क ने पूछा, "हे राजन्, रानी मुझे कहाँ मिलेंगीं? तुम मुझे उनके पास क्यों नहीं ले चलते?" नरभक्षी बने राजा ने उत्तर दिया, "यह ऐसा समय है जब मैं मनुष्यों को मारकर खा जाता हूँ और इसलिए उनसे भेंट नहीं कर सकता। तुम उसे जंगल में एक झरने के पास पाओगे।"

निर्देशानुसार, उत्तङ्क ने सौदास की रानी मदयन्ती से भेंट की और उन्हें अपनी यात्रा का उद्देश्य बताया। उन्होंने कहा कि वे उसे कर्णाभूषण देने के लिए सहमत हैं, परन्तु उन्हें अपने पति के किसी सङ्केत की आवश्यकता है, जिससे यह सिद्ध हो सके कि उत्तङ्क उसके द्वारा भेजा गया है। उन्होंने समझाया, "मेरे ये कर्णाभूषण बहुमूल्य रत्नों से बने हैं और इनमें विशेष शक्तियाँ हैं। ये सोने का उत्पादन करने में सक्षम हैं और रात में बहुत चमकते हैं। उन्हें धारण करने वाला व्यक्ति भूख-प्यास तथा हर प्रकार के भय से मुक्त हो जाता है। ये आभूषण धारण करने वाले को विष और अन्य तरह की विपत्तियों से बचाते हैं। ये उस व्यक्ति के अनुरूप अपने परिमाण बदलते हैं जो उन्हें पहनता है। इस तरह के गुणों से सम्पन्न आभूषण को देवता, यक्ष और नाग सभी पाने के लिए उत्सुक हैं। यदि किसी भी समय, ये कर्णाभूषण प्रमादवश धरती पर रख दिए जायँगे, तो नाग इन्हें चुरा लेंगे। इन्हें यक्ष द्वारा इसे पहननेवाले व्यक्ति से दूर ले जाया

जाएगा, परन्तु अशुद्ध भोजन खाने से ये अपवित्र हो जाएँगे। यदि इनके ध्यान रखे बिना इन्हें धारण करने वाला व्यक्ति सो जाता है, तो, देवता इन्हें ले जाएँगे।" चूँकि कई लोग उनके कर्णाभूषणों को चोरी करने के लिए उत्सुक थे, वे यह जानना चाहती थीं कि सचमुच उत्तङ्क उनके पति द्वारा भेजा गया था।

उत्तङ्क राजा के पास लौटा और उसने एक सङ्केत माँगा। सौदास ने उत्तङ्क को यह सन्देश देने का निर्देश दिया, — "मेरी यह वर्तमान स्थिति असहनीय है। मैं कोई और शरण नहीं देख पा रहा हूँ। इसे मेरी इच्छा जानकर, रत्नजटित कुण्डलों को दे दो।" राजा के शब्दों का निहितार्थ यह था, "एक शाप के कारण, मैं नरभक्षी बन गया हूँ। मेरी वर्तमान स्थिति पूरी तरह से असहनीय है। यदि तुम एक योग्य ब्राह्मण को कुण्डलों का दान करती हो, तो बहुत अधिक पुण्य अर्जित होगा और इससे मुझे शान्ति मिल सकती है।"

सौदास ने तब उत्तङ्क को उसके कार्य की सिद्धि पर वापस आने के वचन का स्मरण दिलाया। उत्तङ्क ने उससे कहा, "हे राजन्, अब हम मित्र बन गए हैं। एक मित्र के रूप में, मुझे उस प्रक्रिया के बारे में परामर्श दें जिसका मुझे पालन करना चाहिए।" धर्म के जानकार राजा ने मित्र के रूप में अपना परामर्श दिया। उसने कहा, "तुम्हें कभी भी मेरे पास वापस नहीं आना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से मृत्यु निश्चित होगी।" इस प्रकार, अपनी बुद्धि के उपयोग से, उत्तङ्क ने राजा से उसे वापस न आने का निर्देश प्राप्त कर, अपनी प्रतिबद्धता से मुक्त होने में सफल रहा। अपने जीवन को सुरक्षित करके, वह रानी के पास गया और राजा का सन्देश सुनाया। चूँकि अब उन्हें यह सुनिश्चित हो गया था कि उत्तङ्क को उनके पति ने भेजा है, उन्होंने झट से उसे झुमके दे दिए। उन्होंने उसे यह भी बताया कि उसे उनकी सुरक्षा कैसे करनी चाहिए।

उनके निर्देशानुसार, उसने अपनी मृगचर्म की तहों में उन्हें सुरक्षित कर लिया और अपनी वापसी यात्रा प्रारम्भ की। मार्ग में उसे भूख लगी। इसलिए, वह एक बिल्व वृक्ष पर चढ़ गया और एक शाखा पर अपनी मृगचर्म लटकाकर फल तोड़ने लगा। कुछ फल मृगचर्म पर गिर पड़े।

परिणामस्वरूप, मृगचर्म खुल गया और कुण्डल धरती पर गिर गए। तुरन्त, एक नाग ने उन्हें अपने वश में ले लिया और तेज़ी से एक बाँबी में घुस गया। उत्तङ्क तेज़ी से वृक्ष से नीचे उतरा और बाँबी के समीप पहुँचकर अपनी लकड़ी की लाठी से उसे खोदने लगा। उसने उस क्षेत्र तक पहुँचने के लिए, जहाँ साँप गया था, एक छेद खोदने का निर्णय किया। वह 35 दिनों तक परिश्रम करता रहा, परन्तु उसे सफलता नहीं मिली। थके होते हुए भी, उसने अपना साहस बनाए रखा।

उस पर दया करते हुए, इन्द्र एक ब्राह्मण के वेश में उसके पास आए। उन्होंने उत्तङ्क से कहा, "आप जो प्राप्त करने का प्रयास कर रहे हैं, वह असम्भव है। जिस क्षेत्र में नाग रहते हैं, वह यहाँ से बहुत दूर है। मुझे नहीं लगता कि आपके लिए अपनी लाठी से गहरी सुरंग बनाना सम्भव है।" उत्तङ्क ने कहा, "मैं या तो कुण्डल वापस प्राप्त करूँगा या अपने प्राण त्याग दूँगा।" अपने गुरुजी की पत्नी के कारण, उत्तङ्क के सम्पूर्ण समर्पण पर आश्चर्यचकित होते हुए, इन्द्र ने उसकी लाठी में वज्र की शक्ति का आधान कर दिया। फ़िर, उत्तङ्क के प्रत्येक प्रहार ने धरती को अधिक खोदा और वह शीघ्र ही नागों के क्षेत्र में पहुँच गया।

वह क्षेत्र बहुत विशाल था, और इससे उत्तङ्क दुःख से अचम्भित हो गया कि क्या वह कुण्डलों का पता लगाने में सक्षम हो पाएगा। अकस्मात्, सफेद पूँछ वाला एक काले रंग का घोड़ा उसके सामने दिखाई दिया। घोड़े ने उससे कहा, "तुम मुझे जानते हो। तुम मेरे पिछले भाग में फूंक मार दो और मैं तुम्हारी सहायता करूँगा।" उत्तङ्क घोड़े को पहचानने में असमर्थ था और उसने पूछा कि वह वास्तव में कौन है। घोड़े ने उत्तर दिया, "मैं हूँ अग्निदेव जो तुम्हारे गुरुजी की सेवा करते समय, तुम्हारे द्वारा बड़ी भक्ति के साथ पोषित किया गया हूँ।" उत्तङ्क ने अग्नि के परामर्श का पालन किया और घोड़े के पिछले भाग में फूंक मार दी। तुरन्त, घोड़े के हर रोम छिद्र से धुआँ निकलने लगा।

कुछ ही समय में नागों का पूरा लोक घने धुएँ से भर गया। नाग अत्यन्त भयभीत हो गए और अपने राजा वासुकि के साथ उत्तङ्क के पास पहुँचे। विधिवत् उत्तङ्क का स्वागत करने के बाद, उन्होंने उसे वज्रखचित कुण्डल लौटा दिए। वह उन्हें ले गया और अहल्या के समक्ष प्रस्तुत कर दिया।

बरसों बीत गए। पाण्डवों और कौरवों के बीच महायुद्ध पूरा होने और हस्तिनापुर के सिंहासन पर युधिष्ठिर के पट्टाभिषेक के बाद, कृष्ण द्वारका के लिए निकले। मार्ग में, वह उत्तङ्क से मिले, जो इस बात से अनभिज्ञ था कि कुरुक्षेत्र में क्या हुआ था। उत्तङ्क ने उनसे पूछा, "क्या आप पाण्डु और धृतराष्ट्र के पुत्रों को शान्ति से एकजुट करने के बाद आ रहे हैं?" कृष्ण ने उन्हें बताया कि सौहार्दपूर्ण सन्धि की स्थापना करने के उनके प्रयासों के होते हुए भी, वे सफल नहीं हुए। कौरवों ने भीष्म और विदुर की मन्त्रणाओं को मानने से अस्वीकार कर दिया था। इसलिए, वे सभी मर गए। भगवान ने कहा कि यद्यपि पाँचों पाण्डव जीवित हैं, तथापि उनके बच्चे और परिजन मारे गए। उत्तङ्क क्रोध से भर उठा और गरजते हुए बोला, "कृष्ण, ऐसा करने में सक्षम होने पर भी आपने कुरुवंश के सदस्यों को नहीं बचाया। इसलिए, मैं आपको शाप देने वाला हूँ।"

कृष्ण ने उत्तङ्क से कहा, "ब्रह्मचर्य के नियमों का कड़ाई से पालन करते हुए, आपने अपने गुरुजी की सेवा करके उन्हें तृप्त किया है। परिणामस्वरूप, आपने इतना अधिक तपोबल अर्जित कर लिया है, जो मुझे भी दण्डित करने के लिए पर्याप्त है। हालाँकि, मैं यह नहीं चाहता कि आपके शाप के उच्चारण के नाते, आपने तप का क्षय हो जाए। इसलिए कृपया पहले मेरा स्पष्टीकरण सुनिए। फ़िर, आप ऐसा कर सकते हैं जो आप उचित समझते हैं।" कृष्ण ने समझाया कि वास्तव में जो कुछ भी विद्यमान है, वह सब वे ही हैं। उन्होंने कहा कि जब उन्होंने लोककल्याण के लिए एक मनुष्य के रूप में अवतार लिया, तब उन्हें एक मानव के रूप में कार्य करना पड़ा। एक मनुष्य के रूप में अपनी भूमिका में, उन्होंने कौरवों से बहुत आग्रहपूर्वक अनुरोध किया था कि वे पाण्डवों के साथ सन्धि करें। यहाँ तक कि उन्हें डरा भी दिया था। परन्तु, अपनी अधार्मिकता के कारण और चूँकि उनकी मृत्यु का समय आ गया था, उन्होंने युद्ध में भाग लेना चुना था। फ़िर भी, साहसी क्षत्रियों के रूप में लड़ते हुए, उन्हें स्वर्ग प्राप्त हुआ। पाण्डवों ने तो बहुत यश अर्जित किया।

कृष्ण की बातों को सुनकर उत्तङ्क ने कहा, "मेरा हृदय प्रशान्त हो गया है और मुझे अब आपको शाप देने की कोई इच्छा नहीं है।" उन्होंने कहा,

"अगर आपको लगता है कि मैं आपके किसी न्यूनतम अनुग्रह की प्राप्ति के योग्य हूँ, तो कृपया मुझे अपना विश्वरूप दिखाएँ।" महाभारत युद्ध के आरम्भ में, कृष्ण ने अर्जुन को अपना विश्वरूप दिखवाया था। उस अवसर पर, उन्होंने कहा था, "इस रूप के मेरे दर्शन पाना सबसे कठिन है, जिसे तुमने देखा है। यहाँ तक कि देवता सदैव इसे निहारने के लिए तरसते हैं।" विश्वरूप का दर्शन अत्यन्त अमूल्य और दुर्लभ होने पर भी, तथा यद्यपि कुछ ही समय पहले उत्तङ्क कृष्ण को शाप देने के लिए उद्यत थे, तथापि भगवान ने अपनी असीम कृपा से, उस महान गुरुभक्त की इच्छा को पूरा किया। उत्तङ्क ने भगवान वासुदेव में सब कुछ देख लिया और आश्चर्य से भरकर उनकी स्तुति की।

अडिग गुरुभक्ति और अथक गुरुसेवा ने, उत्तङ्क को अद्भुत पुरस्कार दिलाया; इन्द्र और अग्नि ने बिना माँगे उनकी सहायता की, जबकि कृपालु परमेश्वर ने उन्हें अपने परम विशिष्ट विश्वरूप दिखवाया। ईश्वर और देवता उस व्यक्ति का पक्ष लेते हैं जो अपने सदगुरु की सेवा निष्ठापूर्वक करता है और उनके प्रति नितान्त समर्पित है।

79. मौन द्वारा शिक्षण

बाष्कलि ब्रह्म को जानने के इच्छुक थे। इसलिए उन्होंने प्रबुद्ध ऋषि बाध्व से सम्पर्क किया और उनसे अनुरोध किया, "कृपया मुझे ब्रह्म के बारे में बताएँ।" बाध्व मौन रहे। बाष्कलि ने अपनी प्रार्थना दोहराई, परन्तु तब भी, ऋषि ने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी। उत्सुक होने के कारण, बाष्कलि ने तीसरी बार पूछा, "कृपया मुझे ब्रह्म के बारे में बताएँ।" ऋषि ने कहा, "मैं तुम्हें पहले ही बता चुका हूँ, परन्तु तुम समझ नहीं पाए। आत्मा उपशान्त है।" यह एक वैदिक आख्यायिका है जिसका वर्णन भगवत्पाद जी ने अपने ब्रह्मसूत्र-भाष्य में किया है।

सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जी के चार मानसपुत्र जो कुमारों के नाम से जाने जाते हैं, विवाह करने और सन्तान प्राप्ति से पूरी तरह से विमुख थे। वे अत्यन्त विरक्त थे और अपने आप को संसार-चक्र से मुक्त करना चाहते थे। करुणावश, भगवान शिव जी ने एक चतुर्भुज आकृति, दक्षिणामूर्ति, के रूप में स्वयं को प्रकट किया और वे हिमालय में एक बरगद के वृक्ष के नीचे बैठ गए, शान्त रहे और परम आनन्द समाधि में विलीन हो गए। ऋषिगण उनसे यह पूछने की इच्छा से कि कैसे संसार-चक्र से छुटकारा पाया जा सकता है और अपने सन्देह को शान्त करने के लिए, उनके पास गए। दक्षिणामूर्ति-स्वरूप परमेश्वर कुछ नहीं बोले। तब भी, उनके मौन और अनुग्रह इतने शक्तिशाली थे कि ऋषि तुरन्त प्रबुद्ध हो गए; उनके सन्देह मिट गए।

पूर्णिमा की रात और अमावस्या की रात में भी अन्धकार होता है; अँधेरे के बिना कोई रात नहीं होती। पूर्णिमा की रात के अँधेरे में, लोग सड़कों पर घूमने-फ़िरने में एवं अपनी साधारण गतिविधियों को भी करने में सक्षम होते हैं। हालाँकि, बस उन्हें पुस्तक पढ़ने के लिए थोड़ा परिश्रम उठाना पड़ता है। अमावस्या की रात के अँधेरे में, विशेष रूप से यदि आकाश में मेघ छाए रहते हैं, लोगों के लिए सड़क पर चलना या अपनी गतिविधियों में संलग्न होना सम्भव नहीं है; पुस्तक पढ़ने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। सनक जैसे ऋषियों का अज्ञान पूर्णिमा की रात के अँधेरे जैसा था। दूसरी ओर, लगभग सभी अन्य लोगों का अज्ञान अमावस्या की रात के अँधेरे के समान है। एक प्रबुद्ध मुनि का मौन अत्यन्त शुद्ध-चित्त वाले शिष्य — जो उन पवित्र लोगों के समान है जो दक्षिणामूर्ति के समीप गए थे — उनकी मन्द अज्ञानता को दूर करने के लिए पर्याप्त है। हालाँकि, अल्प क्षमता के शिष्य, जिनकी अज्ञानता घनी होती है, उनकी आवश्यकता होती है कि उन्हें गुरु द्वारा सत्य की शिक्षा दी जाए।

80. ब्रह्मा जी का परामर्श — "द, द, द"

ब्रह्मा जी ने एक बार देवताओं, मनुष्यों और असुरों को निर्देश दिया। उन्होंने सभी को एक ही उपदेश, "द, द, द," दिया। नियम के तौर पर, देवता इन्द्रिय-विषयों के भोग की चाहत रखते हैं। इसलिए, उन्होंने सोचा कि ब्रह्मा जी उन्हें आत्म-नियन्त्रित कराना चाहते थे। अतः, उन्होंने 'द' की व्याख्या '***दाम्यत***' (अपने आप पर नियन्त्रण रखें) के रूप में की। मानव तो स्वभाव से स्वार्थी हैं और भविष्य में उपयोग के लिए धन इकट्ठा करते रहते हैं। उन्होंने 'द' शब्द का अर्थ '**दत्त**' (दान करें) मान लिया। असुर अपने स्वभाव से ही क्रूर होते हैं। इसलिए, उन्होंने 'द' का अर्थ '***दयध्वम्***' (दया रखें) समझा।

भगवत्पाद जी ने बृहदारण्यक-उपनिषद् के इस प्रासङ्गिक भाग पर अपने भाष्य में स्पष्ट किया है कि आख्यायिका में देवताओं, मानवों और असुरों का अलग-अलग ही परिग्रहण करने की बाध्यता नहीं है। 'देव' का अर्थ है मुख्य रूप से सात्त्विक प्रकृति वाला मानव, जो भोगने और दंभ की प्रवृत्ति से प्रभावित होता है। भयङ्कर प्रवृत्ति एवं पाषाण-हृदय वाले मनुष्य 'असुर' हैं। इसलिए, सभी मनुष्यों को इन्द्रिय-निग्रह, दान और करुणा को उपजाना चाहिए। आज भी, निर्माता "द, द, द" की घोषणा गड़गड़ाहट की ध्वनि के माध्यम से करते हैं।

एक गुरु अपने शिष्यों की क्षमता को ध्यान में रखते हुए उनको निर्देश देते हैं। विभिन्न शिष्यों के लिए एक सामान्य शिक्षा का अलग-अलग निहितार्थ होना पूरी तरह से सम्भव है; ब्रह्मा जी का निर्देश इसका एक उदाहरण है।

81. विनम्रता की अनिवार्यता

एक लड़का एक गुरु के पास गया और उसने उनसे निवेदन किया, "कृपया मुझे सर्वोच्च के बारे में निर्देश दें।" गुरु बोले, "पहले यहाँ छह मास के लिए

ब्रह्मचारी के रूप में रहो।" गुरु की सेवा करना इत्यादि ब्रह्मचारी के लिए विहित नियमों का विधिवत् पालन करते हुए, शिष्य ने ऐसा ही किया।

निर्धारित अवधि के अन्त में, शिष्य ने दीक्षा के लिए अपने गुरु के पास जाने का निर्णय लिया। उसने सबसे पहले नदी में स्नान किया। वह निकलने ही वाला था कि एक व्यक्ति दिखाई दिया और उसने उस पर एक टोकरी भर गन्दगी फेंक दी। शिष्य क्रोध से लाल-पीला हो गया और उसने उस व्यक्ति की पिटाई कर दी। फ़िर स्नान करके, वह अपने गुरु के पास गया। गुरु ने पूछा, "बताओ तुमने आज क्या किया।" शिष्य ने कहा, "स्नान के बाद मेरे यहाँ आने से पहले सब कुछ ठीक था, तभी एक दुष्ट व्यक्ति ने गन्दगी डालकर मुझे उकसाया। उसने मेरे साथ ऐसा करने का साहस न जाने कैसे किया! इसलिए, मैंने उसे पीट दिया। फ़िर अपने आप को शुद्ध करने के बाद, मैं सत्य के बारे में आपसे पवित्र उपदेश प्राप्त करने के लिए यहाँ आया हूँ।" गुरु ने कहा, "शिक्षा देने का सही वक्त अभी नहीं आया है। तीन और महीनों तक ब्रह्मचर्य का पालन करते रहो।"

शिष्य ने आज्ञा मानी। फ़िर, उसे दीक्षा दी जाने वाले दिन उसने स्नान किया और नदी से निकला। जिस व्यक्ति ने पहले एक बार उस पर गन्दगी फेंकी थी, वहाँ आकर उसने अपने कृत्य को दोहराया। शिष्य चिढ़ गया, परन्तु पिछले अवसर की तुलना से कम। उसने उस व्यक्ति को डाँटा, फ़िर से नहाया और अपने गुरु के पास गया। गुरु ने उससे पूछा कि उस दिन क्या हुआ। शिष्य ने वही सुनाया जो घटा था। गुरु ने कहा, "समय अभी नहीं आया है। तीन और महीनों तक ब्रह्मचर्य का पालन करते रहो।"

शिष्य ने उस आज्ञा का पालन किया। तीन महीने के अन्त में, निर्धारित दिन पर, उसने निर्देश के लिए अपने गुरु के पास जाने से पहले स्नान किया। जब उसने अपना स्नान समाप्त कर लिया, तब पहले दो अवसरों पर जिस व्यक्ति ने उसे कष्ट पहुँचाया था, वह पुनः वहाँ आया और उसे मैला कर दिया। इस बार, शिष्य को उस पर कोई क्रोध नहीं आया। उसने उस व्यक्ति का अभिवादन किया और कहा, "मैं आपका ऋणी हूँ। अहङ्कार और क्रोध के दोषों को दूर करने में मेरी सहायता करने के लिए धन्यवाद।" फ़िर, उसने

पुनः स्नान किया और अपने गुरु के निवास पर चला गया। इस बार, गुरु ने उससे कहा, "अब तुम ज्ञान प्राप्त करने के लिए योग्य हो," और यथाविधि उसे तत्त्वोपदेश दिया।

गुरुजी ने ही वास्तव में शिष्य को सभी अवसरों पर अपवित्र करने की व्यवस्था की थी, ताकि शिष्य अपने अहं-मानित्व को त्याग कर विनम्र बन सके। घमण्डी और क्रोधी शिष्य अपने गुरु द्वारा प्रतिपादित सत्य का अनुभव करने में सफल नहीं हो पाता।

82. आत्म-नियन्त्रण और गुरूपदेश का फलीभूत होना

द्रोण के अत्यन्त प्रिय पुत्र अश्वत्थामा ने पाण्डवों और कौरवों के साथ अपने पिता के अधीन एक शिष्य के रूप में अध्ययन किया। द्रोण ने अपने सभी शिष्यों को एक-एक बरतन दिया। उन्हें प्रतिदिन नदी में जाना पड़ता था, अपने पात्रों को जल से भरकर वापस लौटना पड़ता था। अश्वत्थामा को दिए गए पात्र का मुँह अन्य पात्रों के मुँह की तुलना में बड़ा था। परिणाम-स्वरूप, अश्वत्थामा सबसे पहले लौटने में सक्षम था। अश्वत्थामा के आगमन और अन्य शिष्यों के आगमन के बीच के अन्तराल में, द्रोण अपने बेटे को अतिरिक्त जानकारी देते थे। अर्जुन ने यह जान लिया। इसके बाद, उन्होंने अपने पात्र को तेज़ी से भरने के लिए, वरुणास्त्र का आह्वान करना प्रारम्भ किया। इस प्रकार, जिस समय में अश्वत्थामा लौटता था, उसी समय में वे भी लौटने में सक्षम हो गए; और कौरवों एवं अपने भाइयों के विपरीत, वे विशेष निर्देश की प्राप्ति से वञ्चित नहीं हुए।

जब अर्जुन एक छात्र थे, तब उनका ब्रह्मचर्य दोषरहित था और उन्होंने अपनी इन्द्रियों पर पूर्ण स्वामित्व बनाए रखा। अश्वत्थामा का ब्रह्मचर्य और इन्द्रियों पर विजय अर्जुन के तुल्य नहीं थे। इस अन्तर ने, दिव्य अस्त्रों पर

उनकी प्रवीणता पर एक बड़ा प्रभाव डाला, भले ही दोनों ने द्रोण से एक ही शिक्षा प्राप्त की हो।

महाभारत के युद्ध में, अश्वत्थामा कौरवों के पक्ष से लड़ा था। दुर्योधन को भीम द्वारा बुरी तरह से मारे जाने पर, पाण्डव विजयी हुए। अश्वत्थामा ने दुर्योधन को प्रसन्न करने का निर्णय लिया और युद्ध में अपने पिता की मृत्यु का प्रतिशोध लेने के लिए, रात में पाण्डव सेना को पूरी तरह से नष्ट कर दिया, जब सभी योद्धा सो रहे थे। वह अधिक मात्रा में अपने दुष्ट योजना में सफल रहा और असङ्ख्य सैनिकों सहित, द्रौपदी के सभी पुत्रों के साथ-साथ उसके भाइयों, धृष्टद्युम्न और शिखण्डी को मार डाला। पाण्डव और सात्यकि सुरक्षित और स्वस्थ रहे, क्योंकि उन्होंने अपनी सेना से दूर कृष्ण की सङ्गति में रात बिताई।

बाद में, पाण्डवों ने कृपाचार्य और कृतवर्मा की सहायता लेकर, अश्वत्थामा द्वारा किए गए विध्वंस का विवरण, धृष्टद्युम्न के सारथि से जाना जो भागने में सफल रहा था। हत्याकाण्ड की सूचना से सबसे अधिक प्रभावित थी द्रौपदी। दुःख और क्रोध से अभिभूत, उसने माँग की कि अश्वत्थामा को मार दिया जाए और उसके सिर पर जो विशेष मणि है, उसे उसके पास लाया जाए। भीम तत्क्षण अश्वत्थामा के रथ के मार्ग-चिह्नों का अनुसरण करके, उसका पता लगाने के लिए निकल पड़ा। कृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा कि भीम बहुत जोखिम में पड़ सकता है, क्योंकि अश्वत्थामा ने द्रोण से ब्रह्मशिरा अस्त्र प्राप्त कर लिया था, जो पूरी सृष्टि को नष्ट करने में सक्षम है; यद्यपि द्रोण ने अश्वत्थामा को चेतावनी दी थी कि वह बड़ी आपत्ति से उबरने के लिए भी, मनुष्यों के विरुद्ध उस अस्त्र का प्रयोग नहीं करे, फ़िर भी अश्वत्थामा द्वारा उसे प्रयोग किए जाने की सम्भावना थी।

कृष्ण तब अपने रथ पर आरूढ़ हुए और पाण्डवों ने उनका अनुसरण किया। वे शीघ्र ही भीम के पास पहुँच गए। यद्यपि उन्होंने भीम को रोकने का प्रयास किया, परन्तु वे क्रोध से जलते हुए आगे बढ़ गए। अन्त में, उन्होंने गङ्गा के तट पर व्यास और अन्य ऋषियों के निकट बैठे अश्वत्थामा का सामना किया।

पाण्डवों को देखते ही, अश्वत्थामा — जो धूल से ढँका हुआ था और कुश घास के एक ही परिधान धारण किया हुआ था — उत्तेजित हो गया। उसने कुश की एक घास में ब्रह्मशिरास्त्र का सन्धान किया और उसे पाण्डवों के विनाश के लिए प्रयोग कर दिया। कृष्ण की आज्ञा से प्रेरित, अर्जुन ने भी अश्वत्थामा के अस्त्र को प्रभावहीन करने के लिए, एक ब्रह्मशिरा अस्त्र चला दिया। दोनों अस्त्रों से, आग के विशाल गोले निकले और पृथ्वी काँप उठी।

आसन्न व्यापक विनाश और लम्बे समय तक पड़ने वाले अकाल को टालने के लिए, व्यास और नारद ने स्वयं को उन अस्त्रों के बीच रखा। उन्होंने अर्जुन और अश्वत्थामा से अपने द्वारा प्रयोग किए गए दिव्यास्त्रों को वापस लेने के लिए कहा। अर्जुन से विपरीत, अश्वत्थामा ने पाया कि वह अपने अस्त्र को वापस लेने में असमर्थ था।

व्यास ने अश्वत्थामा की कड़ी निन्दा की और उसे आदेश दिया कि कम से कम उस अस्त्र को अपने अभीप्सित लक्ष्य पाण्डवों से हटा दे। ऋषि ने उससे यह भी कहा, "अपने सिर पर स्थित मणि पाण्डवों को दे दो। वे तुम्हारे प्राण छोड़ देंगे।" अश्वत्थामा ने अपने अस्त्र को अभिमन्यु की विधवा उत्तरा के गर्भ में स्थित भ्रूण की ओर पुनर्निर्देशित किया। फ़िर, उसने अपने रत्न को सौंप दिया जिसमें आपत्ति, रोग और भूख को दूर करने की शक्ति थी।

कृष्ण ने घोषणा की कि यद्यपि उत्तरा एक मृत सन्तान को जन्म देगी, तथापि वे उसे पुनः जीवित कर देंगे और इस प्रकार, अश्वत्थामा के जघन्य कृत्य को निष्फल कर देंगे। उन्होंने अश्वत्थामा को फटकार लगाई और उससे कहा कि वह किसी साथी के बिना और किसी से बात करने में असमर्थ होकर, धरती पर लम्बे समय तक भटकता रहेगा। इसके अतिरिक्त, वह निरन्तर रोगों से पीड़ित रहेगा और पीव तथा रक्त की दुर्गन्ध उससे अनवरत निकलती रहेगी। द्रोण के पुत्र को दण्डित करके, परन्तु उसका प्राण बचाकर, कृष्ण पाण्डवों के साथ लौट आए और द्रौपदी को सन्तुष्ट किए। बाद में, कृष्ण ने अपने द्वारा की गई प्रतिज्ञा के अनुसार, अर्जुन के मृतजात पोते को पुनर्जीवित किया। रोचक बात यह है कि उन्होंने ऐसा यह सौगन्ध खाकर किया, "मैंने कभी उपहास में भी झूठ नहीं

बोला। कभी भी मैं युद्ध से नहीं भागा। ऐसे सच्चे आचरण के प्रभाव से, यह शिशु जीवित हो जाए।"

अर्जुन अपने दिव्यास्त्र को वापस लेने में सक्षम थे परन्तु अश्वत्थामा विफल रहा। ऐसा क्यों? महाभारत में इसका उत्तर दिया गया है कि जब अर्जुन छात्र थे, तब उनके ब्रह्मचर्य और इन्द्रिय-निग्रह त्रुटिहीन थे, परन्तु अश्वत्थामा के सम्बन्ध में ऐसा नहीं था।

यह कहानी दर्शाती है कि भले ही एक गुरु अपने शिष्यों को समान रूप से ज्ञान प्रदान कर सकता है, परन्तु श्रेष्ठतर आत्म-नियन्त्रण रखने वाले शिष्य को कहीं अधिक लाभ मिलता है।

83. अपर्याप्त आस्था का मूल्य

महाभारत युद्ध के बाद वापस द्वारका जाते समय, कृष्ण ऋषि उत्तङ्क से मिले। जब वे ब्रह्मचारी थे, तब ऋषि की नितान्त गुरु-भक्ति और अविचलित गुरुसेवा को कृष्ण ने पुरस्कृत किया और अपने विश्वरूप को देखने की ऋषि की इच्छा को पूरा किया। फ़िर, कृष्ण ने उनसे कहा, "कुछ वरदान माँगो।" उत्तङ्क ने कहा, "अब मेरे लिए यह पर्याप्त है कि मुझे आपके विश्वरूप का दर्शन हो गया है।" कृष्ण ने उनसे कहा कि वे कुछ भी माँगने में संकोच न करें। माया का प्रभाव असाधारण है! उत्तङ्क अवश्य मुक्ति या परिपूर्ण भक्ति माँग सकते थे। इसके बदले, उन्होंने कहा कि मरुस्थलीय क्षेत्रों में, जिसमें वे घूमते थे, पानी की कमी है, और इसलिए वे जब चाहें, पानी प्राप्त करना चाहते थे। प्रभु ने उन्हें आश्वासन दिया, "जब भी तुम पानी प्राप्त करना चाहोगे, तो मेरा स्मरण करना और तुम्हें पानी मिल जाएगा।" बाद में कृष्ण ने द्वारका की अपनी यात्रा बनाए रखी।

एक दिन, मरुभूमि से जाते हुए, उत्तङ्क को अत्यधिक प्यास लगी और उन्हें पानी का कोई स्रोत नहीं दिख रहा था। तो उन्होंने कृष्ण का स्मरण किया।

तुरन्त उन्हें एक भयङ्कर दिखने वाला, गन्दगी से लथपथ और कुत्तों के झुण्ड के साथ एक नग्न व्याध दिखाई दिया। व्याध के लिङ्ग से पानी की प्रचुर धारा निकल रही थी। उसने उत्तङ्क से मन्दहास सहित कहा, "कृपया मेरे इस जल को स्वीकार करें। मैं देख सकता हूँ कि आप प्यास से पीड़ित हैं और मुझे आप पर गया आ रही है।"

उत्तङ्क ने उस प्रस्ताव को ठुकरा दिया; वे गन्दे व्यक्ति के मूत्र से अपनी प्यास बुझाने की कल्पना भी नहीं कर सकते थे। यहाँ तक कि वे कृष्ण को एक निष्फल वरदान देने के लिए मानसिक रूप से बुरा-भला कहने लगे। व्याध उत्तङ्क को बार-बार पीने के लिए बल देकर कहता रहा, परन्तु ऋषि उसको अस्वीकार करने पर अड़े रहे। भूख और प्यास से व्याकुल, उत्तङ्क ने क्रोध में उस पर झपट्टा मारा। अपमानित व्याध अपने कुत्तों सहित, अचानक अदृश्य हो गया। उत्तङ्क चकित थे। कुछ ही समय में कृष्ण उनके पास आए। उत्तङ्क ने असन्तोष व्यक्त करते हुए कहा, "आपके लिए एक व्याध के मूत्र के रूप में मुझे पानी प्रस्तुत करना अनुचित था।"

प्रभु ने कहा, "आपके निमित्त, मैंने इन्द्र से आपको अमृत देने का अनुरोध किया था। उन्होंने यह कहते हुए आपत्ति जताई कि एक मरणशील व्यक्ति को अमृत नहीं दिया जाना चाहिए और उसे अमर नहीं बना दिया जाना चाहिए। मेरे बार-बार आग्रह करने पर, उन्होंने मेरी इच्छा के अनुसार काम करने की सहमति दी। हालाँकि, उन्होंने कहा कि वह व्याध की आड़ में आपको अमृत प्रस्तुत करेंगे। यदि आप उसे तिरस्कार के साथ अस्वीकार कर देते हैं, तो वे आपको, तभी या बाद में, अमृत दिए बिना वहाँ से चले जाएँगे। आपने ऐसा ही किया है।" प्रभु ने कहा कि भविष्य में, जब भी उत्तङ्क अपनी प्यास को बुझाने के लिए पानी की इच्छा करेंगे, तब नमी से भरे मेघ दिखाई देंगे और पानी बरसाएँगे, जिसे वे मन भर पी सकेंगे। उन मेघों को 'उत्तङ्क-मेघ' कहा जाएगा। इतना कहकर प्रभु चले गए।

उत्तङ्क ने कृष्ण के शब्दों में अपनी अपर्याप्त आस्था के कारण, अमृत पीने का दुर्लभ अवसर खो दिया। कृष्ण ने ऋषि के लिए अपने विश्वरूप को प्रकट

किया था और इसलिए, उत्तङ्क के पास उनकी दिव्यता और उनके शब्दों के अचूक होने पर सन्देह करने का कोई कारण नहीं था। प्यास से तड़पते उत्तङ्क ने न तो आस-पास किसी को भी देखा था और न ही वहाँ पानी का कोई स्रोत था। फ़िर भी, जैसे ही उन्होंने भगवान के बारे में सोचा था, एक व्याध वहाँ पर दृष्टिगोचर हुआ और उसने उन्हें पानी प्रस्तुत किया। कोई चाण्डाल व्याध, उत्तङ्क जैसे विख्यात तपस्वी से अपना मूत्र पीने के लिए दबाव डालने का साहस नहीं कर सकता था। इस तरह के विचारों से भी, उत्तङ्क को अवगत होना चाहिए था कि भगवान उन पर अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार कृपा कर रहे थे। फ़िर भी, ईश्वर के वचनों में उनके अपर्याप्त विश्वास और उनके मिथ्याबोधों के कारण कि उन्होंने जो द्रव देखा वह मूत्र था, उन्हें एक अपूरणीय क्षति हुई।

किसी व्यक्ति को — तत्रापि विशेष रूप से आध्यात्मिक आकाङ्क्षी को — ईश्वर और अपने गुरु के प्रति श्रद्धा होनी चाहिए। यदि उसे ईश्वर की बुद्धिमानी या उनके शब्दों की शक्ति के बारे में सन्देह होता है, तो उसकी बहुत बड़ी हानि होगी।

84. शिष्यों की कुछ त्रुटियाँ

एक गाय रुग्ण हो गई थी और उसके स्वामी को उसकी चिन्ता थी। वह गाय को पशु-चिकित्सक के पास ले गया, जिसने इस निर्देश के साथ एक ओषधि दी कि इसे घी के साथ मिलाकर दिया जाए। गाय के स्वामी ने तर्क किया, “गाय दूध देती है। उससे हमें दही, मक्खन और अन्त में घी मिलते हैं। तो गाय में घी का सार पहले से उपलब्ध है। ऐसी स्थिति में, मुझे ओषधि के साथ घी क्यों मिलाना चाहिए?” इस प्रकार विश्लेषण करने के बाद, उसने बिना घी डाले ओषधि दे दिया। दूधवाले के अविवेकिता ने व्याधि को कम करने की बदले और बढ़ा दिया।

एक शिष्य द्वारा अपने गुरु के निर्देशों का अक्षरशः, उनसे थोड़ा भी भटके बिना, पालन किया जाना चाहिए। यदि वह अपने स्वयं के नवाचारों का प्रयोग करे, तो वह उस दूधवाले के समान ही होगा।

एक शिक्षक के दो मूर्ख शिष्य थे। एक दिन, उन्होंने उन्हें बुलाया और कहा, "मैं अपने पैरों में कुछ समस्या का अनुभव कर रहा हूँ। उन्हें अच्छे से मालिश कर दो।" वे शिष्य एक-एक पैर पकड़कर उनकी मालिश करने लगे। शीघ्र ही, विश्राम के लिए, शिक्षक ने अपने बाएँ पैर पर अपने दाहिने पैर को टिका दिया।

जो छात्र बाएँ पैर की मालिश कर रहा था, उसने सोचा, "यह क्या है? मेरे शिक्षक के पवित्र पैर पर कुछ गिर गया है। मैं, एक समर्पित शिष्य, ऐसा कैसे होने दूँ?" उसने दाहिने पैर को, बिना यह समझे कि वह अपने गुरु का ही है, रूखेपन से धकेल दिया। यह देखकर दूसरा शिष्य चिल्लाया, "तुम्हें क्या लगता है कि तुम क्या कर रहे हो? तुमने मेरे गुरु के पैर को धकेलने का साहस कैसे किया?" फ़िर, उसने गुस्से में बाएँ पैर को धक्का दे दिया। दूसरे शिष्य ने उसका प्रतिशोध लिया।

उन शिष्यों ने अपने शिक्षक की सुख-सुविधाओं की उपेक्षा करके झगड़ा किया। जब यह कुछ समय के लिए चलता रहा, तो गुरु उठकर बैठ गए और बोले, "तुम दोनों क्या कर रहे हो? मैंने तुम्हें अपनी वेदना को दूर करने के लिए अपने पैरों की मालिश करने के लिए कहा था, परन्तु तुम दोनों ने इसकी स्थिति को और बिगाड़ दिया। निकल जाओ।"

गुरुसेवा आवश्यक है, परन्तु अनुमति प्राप्त करके उसे उचित देखभाल के साथ किया जाना चाहिए। अनुचित सेवा गुरु के लिए केवल बाधा होगी।

चार छात्रों ने एक गुरु से मन्त्र-शास्त्र सीखा। अपनी पढ़ाई पूरी होने के बाद, वे अपने घरों की यात्रा पर निकल पड़े। जब वे एक जंगल से होकर जा रहे थे, तब एक मृत बाघ के पास से होकर गुज़रे। उनमें से तीन लोगों ने कहा, "हम सञ्जीवनी-मन्त्र में सिद्धहस्त हैं, जो मृतकों को पुनर्जीवित कर

सकता है। क्या हमें इसकी प्रभावशीलता का परीक्षण नहीं करना चाहिए? आओ, हम अपने मन्त्र से इस बाघ को पुनर्जीवित करें।" चौथे छात्र ने उनके प्रस्ताव की मूर्खता को समझा। उसने उन्हें ऐसे करने से रोकने का पूरा प्रयास किया, परन्तु असफल रहा। इसलिए, वह पास के वृक्ष पर चढ़ गया और एक शाखा पर बैठ गया। उसके साथियों ने बाघ को नया जीवन देने के लिए सञ्जीवनी-मन्त्र का प्रयोग किया। वह माँसाहारी पशु उठ गया। भूख के मारे पीड़ित, उसने अपने उज्जीवकों को मार डाला।

मन्त्र शास्त्र में विद्वत्ता के होते हुए भी, सामान्य ज्ञान की कमी के कारण, तीनों छात्र मृत्यु के ग्रास बन गए। एक व्यक्ति का मस्तिष्क एक कुंद चाकू की तरह होता है, जो तब तक काटने के लिए अनुपयुक्त होता है जब तक कि वह शिक्षक से प्राप्त ज्ञान से तीक्षणधार वाला न हो जाए। सामान्य ज्ञान के बिना, पाण्डित्य किसी बन्दर के हाथों में धारदार चाकू के समान होता है। इस प्रकार, शिक्षा और सामान्य ज्ञान दोनों आवश्यक हैं; जो इनके बिना रहता है, वह भौतिक रूप से दृष्टिमान होते हुए भी, बौद्धिक रूप से अन्धा होता है।

85. जिन शिक्षकों से बचना चाहिए

श्वास रोग से पीड़ित एक रोगी ने एक वैद्य से सम्पर्क किया और अपनी व्यथा सुनाई। "चिन्ता न करें," वैद्य ने उनसे समझाते हुए कहा, "मेरे पास आपके लिए सही ओषधि है। मैं भी लम्बे समय से इसी व्याधि से पीड़ित रहा हूँ और यह ओषधि ले रहा हूँ। इसका मुझ पर अधिक प्रभाव नहीं दिख रहा है। अब जब आप आ गए हैं, तो मुझे इसकी क्षमता को परखने का अवसर मिला है। मुझे लगता है कि यह आपकी व्याधि को ठीक कर देगा।"

ऐसे वैद्य पर किसी रोगी का विश्वास कैसे हो सकता है? इसी प्रकार, एक शिक्षक जो स्वयं नहीं जानता कि वह क्या सिखाता है, वह न तो अपने

विद्यार्थियों में आत्मविश्वास जगा पाएगा और न ही अच्छी तरह से समझा पाएगा।

एक लड़के के रूढ़ि-वादी पिता उसे काशी ले गए और उसे वेदान्त पाठशाला में इस आशा के साथ प्रवेश दिलाया कि वह एक पण्डित तथा प्रसिद्ध विद्वान बन जाएगा। उसने कक्षाओं में भाग लिया क्योंकि उसके लिए ऐसा करना आवश्यक था, परन्तु वह न तो कड़ा परिश्रम कर रहा था और न ही बुद्धिमान था। इसके कारण, वेदान्त ग्रन्थों की समझ जो उसने प्राप्त की थी, वह बहुत अल्प मात्र थी। कुछ वर्षों के बाद, वह पाठशाला से बाहर हो गया और दक्षिण भारत में अपने घर लौट आया। उसने यह दावा किया कि उसने अपना अध्ययन सफलतापूर्वक पूरा कर लिया है। चूँकि वह एक धनी और सम्मानित व्यक्ति का बेटा था एवं पण्डित माना जाता था, इसलिए उसके नगर के कई वैदिकों को अपनी बेटियों को उसे विवाह में देने में कोई हिचकिचाहट नहीं थी। उसने शीघ्र ही विवाह कर लिया और स्वयं को वेदान्त के शिक्षक के रूप में स्थापित कर लिया। वह किसी भी व्यक्ति को स्वीकार करने के लिए अत्यन्त उत्सुक था जो शिष्य के रूप में आता था, चाहे वह व्यक्ति ब्रह्मचारी हो या गृहस्थ।

आलसी और अज्ञानी होने के कारण, उसने किसी भी कक्षा के लिए तैयारी करने का कष्ट नहीं उठाया। उसके पढ़ाने का ढंग था स्वयं पढ़ना या किसी छात्र से कुछ पङ्क्तियों को पढ़ने के लिए कहना, बिना विश्लेषण के केवल उसी विषय को दूसरे शब्दों में दोहराना, और अगली कुछ पङ्क्तियों की ओर बढ़ जाना। समय-समय पर, वह कुछ चुटकुले सुनाता था और सांसारिक उदाहरण देता था जो कि प्रासङ्गिक होने से अधिक अप्रासङ्गिक होते थे। उन प्रश्नों को, जिनके उत्तर उसे पता नहीं थे, उन्हें वह तीन प्रकार से सम्भालता था।

कभी-कभी, वह कहता था, “यह विषय महत्त्व का नहीं है। उस पर समय नष्ट करने की हमें कोई आवश्यकता नहीं है। पढ़ते रहिए।” जब पूछा गया विषय स्पष्ट रूप से महत्त्वपूर्ण था, तब वह घड़ी की ओर देखता था। कुछ

ही मिनटों में कक्षा समाप्त होने वाली होती, तो वह कहता, “आज इसके लिए समय नहीं बचा। हम कुछ समय के बाद देखेंगे।” यदि बहुत समय शेष रहा हो, तो वह उदासीनता से कहता था, “इसी विषय की चर्चा की गई है और हमारे पाठ के ही एक भाग में स्पष्ट किया गया है, जिसे हम आगे देखने वाले हैं। इसलिए, अब इस पर विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है।”

वह भाग्यशाली था कि उसके छह छात्रों को उस पर बहुत विश्वास था और वे मानते थे कि वेदान्त पण्डित बनाने के लिए, उनके पास उसके अतिरिक्त कोई नहीं है। इतना ही नहीं, वे अपने द्वारा प्राप्त ज्ञान के आभास से, पूरी तरह से सन्तुष्ट अनुभव करते थे। शिक्षक मुदित था और वैसे ही वे छात्र भी प्रसन्न थे, परन्तु उन्हें पता नहीं था कि वे महान हानि के भागी थे।

एक नगर में, एक दिन, एक दाढ़ी वाला युवक गेरुवे रंग की रेशमी धोती और कुर्ता धारण किए हुए आया। जब कुछ लोग उससे मिले, तो उसने कहा कि वह सात वर्ष ध्यान में लीन रहने के बाद, हिमालय से आया है। उसने अपनी बात रखते हुए कहा कि उसके गुरु एक सर्वज्ञ देवपुरुष थे, जो वर्षों पहले अचानक उसके सामने प्रकट हो गए थे। उसके गुरु ने लोगों को शान्ति, इच्छाओं की पूर्ति और अन्त में पुनर्जन्म से मुक्ति दिलाने के लिए, उसे अब तक अज्ञात, सरल व त्वरित प्रक्रिया के बारे में सिखाया था।

उसके गुरु ने उसके शरीर के चुनिन्दे स्थानों को स्पर्श करके, उसे सत्य के ज्ञाता के रूप में बदला दिया था और उसे विशेष शक्तियों से सम्पन्न बना दिया था। “यहाँ सात वर्ष तक ध्यान करो। फ़िर, विभिन्न स्थानों की यात्रा करो और उस शक्तिशाली विधि को दूसरों को सिखाओ, जिसे मैंने तुम्हें बताया है,” गुरु ने अदृश्य होने से पहले ऐसा कहा था। लोग उसके विवरण से प्रभावित थे। एक व्यक्ति ने उससे अपने गुरु से मिलने से पहले के उसके जीवन के बारे में पूछा। उसने उत्तर दिया, “यह एक बन्द अध्याय है। नया आध्यात्मिक जन्म लेने के बाद, मुझे इसके बारे में कुछ नहीं कहना चाहिए और न ही कहूँगा।”

उसे बहुत मानने वाले एक सम्पन्न व्यक्ति के भवन में, उसके उपयोग के लिए कुछ कमरे दिए गए। उस सन्ध्याकाल, उसने कुछ श्रोताओं को भाषण दिया। एक अच्छे वक्ता होने के नाते, उसने आराम से अपने श्रोताओं का ध्यान अपनी ओर खींच लिया। अपने प्रवचन के समय, उसने कहा, "शान्ति और मुक्ति पाने के लिए, विश्व को या इच्छाओं को भी त्यागने की कोई आवश्यकता नहीं है। मैं उन लोगों को सिखाने के लिए उद्यत हूँ, जो पूरे विश्वास के साथ मुझसे सम्पर्क करते हैं। मैंने अपने गुरु से जो नई विधि प्राप्त की है, वह सबसे प्रभावी और सरल है, परन्तु अधिक समय लेने वाली नहीं है।"

उसके शिष्यों के लिए आवश्यक था कि मूल रूप से बाहर जाने वाली साँस के साथ तालमेल में, एक गधे के रेंकने जैसी ध्वनि उत्पन्न करें। पाँच मिनट तक ऐसा करने के बाद, उन्हें मानसिक रूप से उससे प्राप्त एक अक्षर के मन्त्र का जप करते हुए, साँस लेना और जितना शीघ्र हो सके साँस छोड़ना होता था। उसने उन्हें आश्वासन दिया कि कुछ समय मन्त्र का जप करने पर, उन्हें सहज लगेगा। तब उन्हें मन्त्र को रोकना था, सामान्य रूप से साँस लेना था और उस अनोखे अनुभव के गुम होने तक, उसका आनन्द लेना था। इस प्रक्रिया को एक अँधेरे कमरे में कार्यान्वित किया जाना था।

किसी शिष्य को मन्त्र में दीक्षित करने से पहले, उसने कहा, "मेरे सामने पूर्ण स्वीकारोक्ति करो। अपनी शक्ति के द्वारा, मैं तुम्हें कमियों और दोषों के परिणामों से मुक्त कर दूँगा। एक बार जब मैं ऐसा कर लेता हूँ, तो यह कोई मायने नहीं रखेगा कि तुम अपनी रीति बदलते हो या नहीं।" शिष्य की बात सुनने के बाद, उसने अपने शिष्य की छाती पर अपना दाहिना हाथ रखा और तीन बार कहा — "मैं तुम्हें पापों से मुक्त करता हूँ।" फ़िर, उसने एक अँधेरे कमरे में दीक्षा की एक जटिल प्रक्रिया प्रारम्भ की, जिसके समय शिष्य को आँखें बन्द करके स्थिर बैठना पड़ता था।

दीक्षा के बाद, उसने प्रत्येक शिष्य को अपना एक फ़्रेम किया हुआ चित्र भेंट किया। फ़िर वायु में अपना हाथ लहराते हुए उसने कुछ कुङ्कुम उत्पन्न किया,

जो उसने अपने शिष्य को दिया। वह इस बात पर अत्यन्त गौर करता था कि उसका कोई भी शिष्य, मन्त्र या ध्यान प्रक्रिया के बारे में दूसरे को नहीं बताए। उसने कड़ी चेतावनी दी कि गोपनीयता का कोई भी उल्लङ्घन, शिष्य के लिए प्रक्रिया को निष्फल कर देगा। इसके अतिरिक्त, इन नियमों का उल्लङ्घन करने वाला शिष्य छह महीने के भीतर गम्भीर रूप से रोगग्रस्त हो जाएगा।

दीक्षा के समय, प्रत्येक शिष्य ने शरीर में झुनझुनी संवेदनाओं का अनुभव किया; उनमें से कुछ शिष्यों के पास कई तरह के अनुभव थे, जो उन्हें आश्चर्य और आनन्द से भर दिया। ध्यान प्रक्रिया के समय, शिष्यों को थोड़े समय के लिए मन्त्र का जाप करने के बाद, एक अजीब अनुभूति हुई; कुछ शिष्यों को दर्शन प्राप्त हुए और वे हर्षित हुए। प्रत्येक शिष्य ने अपने गुरु से प्राप्त चित्र पर एक दिन के लिए अपने आप कुछ श्वेत चूर्ण बनते देखा।

गुरु लम्बी यात्राओं पर बार-बार जाता था और उसने शीघ्र ही ढेर सारे अनुयायियों और प्रखर प्रसिद्धि को प्राप्त कर लिया। कई लोगों ने उसे कृतज्ञता की भावना से प्रभूत दान या महंगी वस्तुएँ दीं। उसके शिष्यों को इस बात का बोध नहीं था कि उसके सम्पर्क में आकर, वे हानि उठा रहे हैं, लाभ नहीं पा रहे हैं।

हाथ की सफाई से, वह अपने दाहिने हाथ की हथेली पर कुङ्कुम ले आता था। उसके चित्र पर राख का क्रमिक गठन, केवल फ्रेम के काँच पर उपयुक्त रसायनों को लगाने का परिणाम था। तेज़ी से साँस लेने से होनेवाले अतिवातायनता के कारण, ध्यान के समय शिष्य एक अजीब अनुभव पाते थे। दीक्षा के समय, वह अत्यल्प बिजली के सदमे (mild electric shock) देने के लिए एक उपकरण का उपयोग किया करता था और किसी शिष्य के शरीर के बालों में धीरे-धीरे हेरफेर करके, झुनझुनी संवेदनाएँ पैदा करता था, जो फैलने लगती थीं। जो शिष्य अपनी आंखें बन्द करके आस्था से भरा हुआ बैठा था, और वह भी एक अँधेरे, शान्त कमरे में, उसे न तो अविश्वास होता था और न ही उसके छल की पहचान।

विश्वास, आकाङ्क्षाओं, स्वयं के सुझावों और सम्मोहक सुझावों की शक्ति को गुरु जानता था और उनका भरपूर लाभ उठाता था। इस प्रकार, दीक्षा के समय, कुछ शिष्यों को प्राप्त विशेष अनुभव, उस गुरु द्वारा उन्हें सफलतापूर्वक सम्मोहित करने के परिणाम थे; वे सम्मोहन के प्रति अत्यधिक संवेदनशील थे और गुरु उन्हें एक सपाट स्वर में बार-बार दिए गए उचित सुझावों द्वारा मोहावस्था में डालता था। ध्यान के समय, कुछ लोगों को जो अनोखे अनुभव हुए, वे ऐसे कुछ कारकों के परिणाम थे — जैसे कि आगे चलकर होने वाले घटनाओं के बारे में जो उसने कहा था, उस पर उनका विश्वास और उनकी उच्च अपेक्षाएँ।

गुरु को उसके शिष्यों द्वारा की गई स्वीकारोक्ति का लाभ उठाने में और दीक्षा के समय, भोली-भाली महिलाओं का यौन शोषण करने के बारे में कोई पछतावा नहीं था। वह जानता था कि वे उसकी इस चेतावनी पर ध्यान देंगे कि दीक्षा के विवरण और उनके साथ शारीरिक सम्पर्क द्वारा उन्हें 'विशेष शक्ति' प्रदान करने का विवरण कभी न प्रकट करें।

लोगों को इस व्यक्ति जैसे ढोंगी गुरुओं के शिष्य बनकर और उस अज्ञानी वेदान्त पण्डित जैसे शिक्षकों के अधीन छात्र होकर, बहुत वञ्चित होने की सम्भावना है। यह दुर्भाग्य की बात है कि वेदान्त को, बिना गहन ज्ञान के, उजागर करने वाले और अज्ञानी या पूर्णतः ढोंगी गुरु आजकल साधारण हो गए हैं। कहा जाता है, "बहुत से ऐसे उपदेशक हैं जो अपने शिष्यों के धन को हथिया लेते हैं, परन्तु बहुत दुर्लभ वह होता है जो अपने शिष्यों के दुःख को दूर करता है।" शास्त्र कहते हैं, "उस गुरु को भी त्याग देना चाहिए जो कलङ्कित हो, उचित और अनुचित का संज्ञान नहीं लेता हो और दोषपूर्ण मार्ग पर चलता हो।"

भगवत्पाद जी ने एक सच्चे सद्गुरु का वर्णन इस प्रकार किया है — "जिसने तत्त्व-साक्षात्कार प्राप्त किया हो और अपने शिष्य के हित के लिए सतत तत्पर हो।" ऐसे गुरु का ही आश्रय लेना चाहिए। एक छली द्वारा भटक दिए जाने की अपायशङ्का से बचने के लिए, केवल ऐसे गुरु के पास जाने का परामर्श

दिया जाता है कि जो महान आचार्यों की एक परम्परा से सम्बन्धित हो, जो शास्त्रों से परिचित हो, जो शास्त्रों के अनुसार पढ़ाता हो, जो स्व-आविष्कृत पन्थ का प्रचार नहीं करता हो, जो अपने मन और इन्द्रियों का स्वामी हो, जो विरक्त हो, जिसका आचरण निष्कलङ्क हो, जो स्पष्ट रूप से शिष्य के कल्याण में रुचि रखता हो और जो शिष्य से बदले में किसी की भी अपेक्षा नहीं रखता हो।

86. छद्म-अद्वैतियों का पाखण्ड

एक संन्यासी भोजन और आध्यात्मिक साधनाओं से जुड़े किसी भी नियम का पालन नहीं कर रहा था। एक गृहस्थ ने उससे सम्पर्क किया और पूछा, "ऐसा लगता है कि आप किसी भी नियम का पालन नहीं कर रहे हैं। आप अपनी इच्छानुसार खाते हैं, अपना समय भटकते हुए बिताते हैं और ऐसे कार्य करते हैं जो एक संन्यासी के लिए अशोभनीय हैं। क्या आपका ऐसा होना उचित है?" संन्यासी ने उत्तर दिया, "सब कुछ ब्रह्म है। शरीर और मन कर्म करते हैं, जबकि मैं शुद्ध, चेतन आत्मा हूँ जो निष्कलङ्क है। वास्तव में, मेरे लिए ये बहुत कम मायने रखते हैं कि शरीर और मन क्या करते हैं। सचमुच, सब कुछ ब्रह्म है।"

गृहस्थ ने पूछा, "क्या आप भिक्षा के लिए मेरे घर आएँगे?" "हाँ," संन्यासी ने उत्तर दिया, "मुझे कोई आपत्ति नहीं है। मेरे लिए, जो आत्मा में मग्न है, कुछ भी मायने नहीं रखता। मैं आऊँगा।" उस अपराह्न को संन्यासी गृहस्थ के घर गया और भोजन करने बैठ गया। हालाँकि, उसके आतिथेय ने उसे पानी की एक बूँद तक भी नहीं दी। जैसे-जैसे क्षण बीतते गए, वह छटपटाने लगा। उसके आतिथेय ने जानबूझकर उसकी छटपटाहट को अनदेखा किया। अन्त में, और विलम्ब को सहन करने में असमर्थ, वह संन्यासी चिल्लाया, "मुझे प्रतीक्षारत रखने से तुम्हारा क्या तात्पर्य है? मुझे बहुत भूख लगी है। मुझे शीघ्र परोसो।"

गृहस्वामी उसके पास आया और कहा, "मैं यह बात समझने में विफल हूँ कि आप में भूख और प्यास कैसे पैदा हो सकती हैं, जो पूरी तरह से आत्मा के आनन्द में डूबे हुए हैं। आप सर्वव्यापी हैं, क्योंकि आत्मा का स्वरूप ऐसा ही है। मैं आपको पानी देने तक असमर्थ हूँ, क्योंकि सर्वव्यापी होने के नाते, आप पहले से ही उसे भीतर और बाहर से व्याप्त कर चुके हैं।" संन्यासी यह कहते हुए खड़ा हुआ, "ऐसे मत बोलो। मैं अपनी भूख को सह नहीं पा रहा हूँ।" इसके बाद, वह भोजन के अन्वेषण में निकल गया।

उस संन्यासी में न आत्म-संयम था और न ही वैराग्य। इसलिए वह अज्ञानी संन्यासियों के लिए बने नियमों का पालन नहीं करता था। उसने केवल अपने दुराचार के समर्थन के लिए, अद्वैत दर्शन का दुरुपयोग किया। उसके अनियन्त्रित चाल-चलन से, उसे बहुत पाप लगे; उसकी अद्वैत घोषणाओं ने उसे पापों से कोई सुरक्षा नहीं दी।

ग्रहण के समय, एक पण्डितजी स्नान के लिए समुद्र में गए। उनके पास ताँबे का एक पात्र था। उन्होंने सोचा, "यदि मैं स्नान करते समय इस पात्र को किनारे पर छोड़ दूँ, तो कोई इसे चुरा सकता है। दूसरी ओर, अगर मैं इसे अपने साथ ले जाऊँ, तो यह मेरे हाथ से फिसलकर जल में खो जा सकता है। मुझे क्या करना चाहिए?" उन्होंने समुद्र तट पर एक गड्ढा खोदा, पात्र उसमें रखा रेत से उस पात्र को ढँक दिया। उस स्थल का पता लगाने में सक्षम होने के लिए, उन्होंने वहाँ एक रेत का लिङ्ग बना दिया। उन्होंने चैन की साँस ली और नहाने चले गए।

कुछ लोगों ने किनारे पर लिङ्ग को और पण्डितजी को समुद्र में नहाते देखा। उन्होंने मान लिया कि सभी को समुद्र में स्नान करने से पहले, एक रेत का लिङ्ग बनाना चाहिए। कुछ समय बाद, पण्डितजी उस स्थान पर आए जहाँ उन्होंने अपना पात्र छिपाया था। उन्होंने वहाँ क्या देखा? बालू से बने एक या दो नहीं, प्रत्युत कई लिङ्ग। "हे भगवन्," पण्डितजी चिल्लाए, "क्या हो गया है? इतने बहुत सारे लिङ्ग कैसे उग आए? मैं उस लिङ्ग का पता कैसे लगाऊँ जो मैंने बनाया था?" उन्होंने कुछ लिङ्गों के नीचे अपना पात्र ढूँढा,

परन्तु उसे पाने में विफल रहे। अन्त में, पण्डितजी को रिक्त हाथ घर लौटना पड़ा।

उपर्युक्त कहानी इस तथ्य की झलक देती है कि बहुतों में बिना सोचे-समझे दूसरों का अनुकरण करने की प्रवृत्ति होती है। आँख बन्द करके दूसरों का अनुकरण करना अनुचित है। इसके अतिरिक्त, लोगों की प्रवृत्ति ऐसी होती है कि जिनका वे सम्मान करते हैं, उनका अनुसरण करते हैं; इसलिए शिक्षकों और धार्मिक व्यक्तियों के लिए अनिवार्य है कि वे अच्छे मानकों को स्थापित करें।

एक व्यक्ति छात्रों के एक समूह को अद्वैत दर्शन की व्याख्या कर रहा था और अपने व्याख्यान के समय, उसने यह बताया कि संसार असत्य है। तभी अचानक, एक जंगली हाथी उसी ओर दौड़ता हुआ आया। चेले तितर बितर भाग खड़े हुए; शिक्षक कोई अपवाद नहीं था। दुर्भाग्य से, शिक्षक फिसलकर एक गड्ढे में गिर गया। हाथी के चले जाने के बाद, छात्रों ने सहायता के लिए चिल्लाते हुए अपने शिक्षक को गड्ढे में ढूँढ पाया। वे उसके पास गए और पूछे, "गुरुजी, आप हमें बता रहे थे कि संसार असत्य है। फ़िर जब हाथी ने आक्रमण किया, तो भय से जकड़े हुए आप क्यों भागे? इसके अतिरिक्त, अब आप सहायता के लिए क्यों चिल्ला रहे हैं?" असहाय शिक्षक ने एक पल के लिए सोचकर कहा, "कृपया बाहर आने में मेरी सहायता करें; फ़िर मैं समझाऊँगा।" तदनुसार, उसे बाहर निकाला गया।

शिक्षक उसी स्थान पर बैठ गया जहाँ वह पहले पढ़ाता था और बिना पलक झपकाए, घोषित किया, "मैंने जो कहा, मैं पूर्णतः उसका समर्थन करता हूँ। संसार असत्य है। जिस हाथी ने आक्रमण किया था, वह असत्य था। तुम लोग ने देखा कि मैं एक गड्ढे में गिर गया था और सहायता के लिए चिल्ला रहा था। वह सब असत्य था। अन्त में, तुम लोगों का मेरी सहायता करना भी अवास्तविक था।" स्पष्टीकरण से पता चलता है कि तथाकथित शिक्षक चतुर तो अवश्य था, परन्तु यह इस तथ्य को नहीं बदलता है कि वह पाखण्डी था।

व्यक्ति को अपनी अन्तरात्मा के प्रति सच्चा होना चाहिए। अद्वैत की ऊँची-ऊँची बातें करके कोई दूसरों से छल कर सकता है, परन्तु अगर वह अपने आचरण नहीं सुधारेगा, तो उसे उससे कोई लाभ नहीं मिलता। यह कहा जाता है, "जो सांसारिक सुखों से लगाव रखा हुआ है, परन्तु फ़िर भी कहता है कि सब कुछ ब्रह्म है, वह वास्तव में कर्म से गिरा हुआ है और ब्रह्म से भी। ऐसे व्यक्ति को नीच की तरह छोड़ दिया जाना चाहिए।" चूँकि ऐसा व्यक्ति सत्य को जानने और मुक्ति प्राप्त करने में विफल रहता है, इसलिए कहा जाता है कि वह ब्रह्म से गिर गया है। चूँकि वह स्वयं को साक्षात्कार प्राप्त किए व्यक्ति का दिखावा करता है, इसलिए वह विहित कर्तव्यों का निष्ठापूर्वक अनुष्ठान नहीं करता है। इसलिए, यह घोषित किया गया है कि वह कर्म से पतित है।

परब्रह्म का साक्षात्कार

अधर्म को त्यागकर और ईश्वर के प्रति समर्पण की भावना से अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने से, एक भक्त अपने मन की महान शुद्धता प्राप्त कर लेता है। वैराग्य से सम्पन्न, वह संसार से विमुख हो जाता है और, एक गुरु की शरण में जाकर, जन्म-मृत्यु के संसार-चक्र से मुक्ति पाने हेतु प्रयास करता है। यह खण्ड आध्यात्मिक आकाङ्क्षी की यात्रा के अन्तिम चरण से सम्बन्धित है, जो उसके जीवन्मुक्त बनने के साथ समाप्त होता है।

87. विघटन किए बिना अन्वेषण

एक व्यक्ति के पास एक हारमोनियम था। जब उन्होंने उसे बजाया, तब उससे मधुर धुन निकली। मनमोहक धुनों को सुनकर दूसरे व्यक्ति ने सोचा, "इस तरह का मधुर सङ्गीत कैसे निकलता है? सम्भवतः ये धुन इस यन्त्र के अन्दर स्थित हैं।" बहुत उत्सुक होकर, उसने हारमोनियम को खोलकर उसे टुकड़ों-टुकड़ों में विघटित कर दिया और प्रत्येक कोने में ध्वनियों का अन्वेषण किया। वह आन्तरिक भागों के साथ कितना भी तोड़-मरोड़ करता रहा, परन्तु उनमें से मूल सङ्गीत नहीं प्राप्त कर सका। "आह, क्या आश्चर्य है! यह उपकरण अचानक कहीं से सङ्गीत उत्पन्न करता है," उसने निष्कर्ष निकाला।

जबकि कुछ ऐसे अवसर होते हैं जहाँ किसी को खोलकर विघटित करके विश्लेषण करना चाहिए, ऐसी कई अन्य स्थितियाँ हैं, जहाँ इस प्रविधि से कोई सहायता नहीं मिलेगी। आत्म-विचार दूसरी श्रेणी में आता है। आत्मा से अनुप्राणित रहने वाले शरीर को वास्तव में बिना उद्धंसन किए, आत्मा का विचार करना चाहिए।

88. सतही ज्ञान

किसी परोपकारी ने सभी चार वेदों को अच्छी तरह से जानने वाले को पचास सहस्र रुपये की राशि प्रदान करने की घोषणा की। कुछ दिनों के बाद, एक युवक ने उससे सम्पर्क किया और पुरस्कार माँगा। "क्या आप चारों वेदों से परिचित हैं?" परोपकारी ने पूछा। पुरस्कार के इच्छुक उस युवक ने उत्तर दिया, "मुझे इस तथ्य की जानकारी है कि वेद चार हैं।" उस उत्तर से दानी दंग रह गया और पूछा, "इतना ही?" युवक ने कहा, "महोदय, मुझे पता है कि वेद सङ्ख्या में चार हैं। क्या यह पर्याप्त नहीं है?" वैसे तो परोपकारी को क्या करना था? उसने युवक को बस भगा दिया।

जिस तरह उस युवक का सतही ज्ञान उसे पुरस्कार दिलाने के लिए अपर्याप्त था, उसी तरह सत्य के ऊपरी या परोक्ष ज्ञान से मुक्ति नहीं मिल सकती। अद्वैत-परम-तत्त्व का अपरोक्ष-साक्षात्कार वह है जो अज्ञान का नाश करता है और जिससे जन्म-मृत्यु के संसार-भ्रमण से मुक्ति मिलती है।

89. सन्निकट वस्तु की उपेक्षा करना

एक बार दस मूर्खों ने एक नदी पार की। दूसरे किनारे पर पहुँचने के बाद, वे यह पता लगाना चाहते थे कि क्या वे सभी इस पार आ गए हैं। उनमें से एक ने गिनना प्रारम्भ किया। उसने स्वयं को छोड़कर सभी को गिना और यह निष्कर्ष निकाला कि उनमें से एक डूब गया है। इससे वह बहुत दुःखी हुआ। एक अन्य मूर्ख ने भी वही त्रुटि की और पुष्टि की कि एक व्यक्ति गुम हो गया है। परिणामस्वरूप सभी रोने लगे।

एक हितैषी उस ओर से जा रहा था और उसने यह जानना चाहा कि उनकी समस्या क्या है। मूर्खों में से एक ने कहा, "हम दस लोग नदी पार करने निकले थे, परन्तु अब हम केवल नौ हैं।" हितैषी चकित हो गया। उसने उनके नेता से कहा, "कृपया गिनें और मुझे बताएँ कि आप में से कितने यहाँ हैं।" जैसा कि दूसरों ने उससे पहले किया था, वह भी वही सङ्ख्या, "नौ," पर आ पहुँचा। आप्त व्यक्ति ने घोषणा की, "नहीं। दसवाँ मनुष्य मरा नहीं है।" मूर्खों ने कुछ सन्तोष का अनुभव किया। तुरन्त, उस व्यक्ति की ओर सङ्केत करते हुए, जिसने गिनती की थी, उस हितैषी ने कहा, "दसवें व्यक्ति तुम हो।" शुभचिन्तक के शब्दों का महत्त्व मूर्खों की समझ में आ गया। उनके दुःख का स्थान उल्लास ने ले लिया।

प्रत्येक मूर्ख स्वयं को गिनना भूल गया; हम अद्वैत परब्रह्म होने के अपने वास्तविक स्वरूप को भूल गए हैं। कहानी के शुभचिन्तक जैसी भूमिका निभाते हुए, सद्गुरु अपने शिष्य से कहते हैं, "तुम सीमित एवं दुःखी नहीं हो,

जैसे तुम अपने आप के बारे में कल्पना करते हो। तुम सर्वोच्च हो जो सत्-चित्-आनन्द स्वरूप है।” एक अत्यन्त शुद्धचित्त- वाला शिष्य तुरन्त प्रबुद्ध हो जाता है। नीची क्षमता वाले शिष्य को सन्देह और मिथ्या-ग्रहण जैसे दोषों से छुटकारा पाने हेतु, लम्बे समय तक अपने गुरु की सेवा व श्रद्धा से आध्यात्मिक साधना करनी पड़ती हैं। फ़िर, वह सत्य का प्रत्यक्ष बोध प्राप्त करता है।

90. उपनिषद् ज्ञान के निर्दोष साधन हैं

भच्र्छु नामक एक व्यक्ति किसी राजा का प्रिय था। अन्य राजसभासद, जो उससे अत्यधिक ईर्ष्या रखते थे, उससे मन ही मन खीझते थे। इसलिए उन्होंने एक योजना बनाई और उसके अपहरण करवाने की व्यवस्था की। उसके हाथ बँधे और आँखें ढकी हुई, भच्र्छु को राज्य से बहुत दूर ले जाया गया और एक घने जंगल के भीतर छोड़ दिया गया। वह सहायता के लिए चिल्लाने लगा।

उसके सौभाग्य से, एक वनवासी ने उसके रोने की ध्वनि सुनी। उसके पास आकर उसने उसकी आँखों से पट्टी हटाई और उसके हाथ खोल दिए। फ़िर, उसने इङ्गित किया कि किस दिशा में भच्र्छु को अपने राज्य तक पहुँचने के लिए आगे बढ़ना चाहिए। भच्र्छु कुछ समय के लिए निर्देशित दिशा में आगे बढ़ा और एक अन्य वनवासी से मिला। उसने उससे और निर्देश लिए। इस प्रकार, अपनी यात्रा के समय, विभिन्न लोगों से दिशा-निर्देश माँगते हुए, वह अपने राज्य की सीमा तक पहुँच गया। हालाँकि, जिन राजसभासदों ने उसका अपहरण करने की व्यवस्था की थी, उनके द्वारा बरती गई सावधानियों के कारण, उन्हें उसके आगमन की भनक मिल गई। उन्होंने उसे धमकाया और राज्य में उसके प्रवेश को रोक दिया। बहुत पहले ही उन्होंने राजा को सूचित किया था कि भच्र्छु की मृत्यु हो गई है और धीरे-धीरे उन्हें इस सीमा तक आश्वस्त कर लिया था कि राजा को इसके सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं रहा।

एक दिन राजा राजधानी से जंगल की ओर निकल पड़ा। अकस्मात्, वह भर्च्छु से मिल गया। राजा को भर्च्छु से मिलकर बहुत प्रसन्नता होनी चाहिए थी। हालाँकि, उसने जो अनुभव किया वह प्रसन्नता नहीं, प्रत्युत डर था। इसका कारण यह था कि वह पूरी तरह से आश्वस्त था कि उसके सामने जो खड़ा था, वह भर्च्छु का भूत था, क्योंकि वह व्यक्ति भर्च्छु मर चुका था। वह तुरन्त मुड़ा और तेज़ी से भाग निकला, जिससे भर्च्छु बहुत दुःखी और उदास हो गया।

राजा की दृष्टि दोषरहित थी और उसने उसे भर्च्छु की स्पष्ट छवि प्रस्तुत की। हालाँकि, मिथ्या-ग्रहण के दोष के कारण, वह सही निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा। उपर्युक्त कहानी में बताए हुए राजा की आँखों की तरह, उपनिषद् भी निर्दोष हैं। वे सही ज्ञान उत्पन्न करते हैं। हालाँकि, ऐसे होते हुए भी, उपनिषदों का अध्ययन करने वाले कई लोग तुरन्त प्रबुद्ध नहीं हो जाते हैं। इसका कारण उनके मन में निहित दोष हैं। वे इन्द्रिय-विषयों के प्रति अत्यधिक लगाव, जो पढ़ाया गया है उसके बारे में सन्देह, साथ ही मिथ्याबोधों जैसे दोषों से घिरे हैं। यद्यपि उपनिषद् ज्ञान का निर्दोष साधन हैं, तथापि इस प्रकार के दोषों के कारण, कोई व्यक्ति सही ज्ञान प्राप्त करने में विफल रहता है।

91. अवास्तविक वास्तविक को इङ्गित कर सकता है

एक व्यक्ति सो गया। शीघ्र ही एक सपने में उसने स्वयं को एक उग्र बाघ द्वारा पीछा किए जाते हुए देखा। चूँकि बाघ उससे कहीं अधिक तीव्र गति से दौड़ आ रहा था, इसलिए उनके बीच की दूरी तेज़ी से घटती गई। वह भय से भर गया। वह इतना भयभीत था कि वह अचानक जाग गया; उसका माथा पसीने से भीग गया था। सपने में उसके द्वारा देखा गया बाघ

निस्सन्देह अवास्तविक था। हालाँकि, वह एक वास्तविक प्रभाव, यानी प्रबोधन, लाने में साधक था।

कुछ लोग आपत्ति उठाते हैं — "अद्वैतियों के अनुसार, संसार अवास्तविक है और केवल ब्रह्म वास्तविक है। यदि हाँ, तो ब्रह्माण्ड में अन्तर्भूत वेद जो हैं, उनकी शिक्षाएँ असत्य होनी चाहिए। इसलिए, वे सच्चे ज्ञान उत्पन्न नहीं कर सकतीं। फलस्वरूप, वेदों पर आधारित अद्वैत दर्शन निरर्थक होना चाहिए।" यह आपत्ति अमान्य है।

संसार की अवास्तविकता की बात अद्वैतवादी केवल पारमार्थिक-सत्य के दृष्टिकोण से करते हैं। व्यावहारिक दृष्टिकोण से, जगत् और वेद अवश्य विद्यमान हैं। अद्वैतवादियों का एक और उत्तर यह है कि जैसे उपर्युक्त दृष्टान्त में देखा गया है, एक अवास्तविक वस्तु वास्तविक की ओर ले जा सकती है। इसलिए, अवास्तविक होते हुए भी, वेद तत्त्व-साक्षात्कार, तथा तद्द्वारा परब्रह्म में प्रतिष्ठा, प्रदान कर सकते हैं।

92. पहचान का अभिज्ञान

एक राजकुमार का बचपन में अपहरण कर लिया गया था। उसे एक जंगल में ले जाया गया और वहाँ मरने के लिए छोड़ दिया गया। सौभाग्य से, कुछ वनवासियों ने उसकी देखभाल की। उनके द्वारा पालन-पोषण किए जाने के कारण, वह एक वनवासी के रूप में जीने, काम करने और चाल-चलन करने लगा। बरसों बीत गए। उधर राजधानी में, राजा का निधन हो गया। इसलिए, राजकुमार का अन्वेषण तेज़ कर दिया गया। कुछ लोग जो उसे एक बच्चे के रूप में जानते थे, उन्होंने अचानक उसे जंगल में देखा और यहाँ तक कि उसे पहचानने में भी सफल रहे। उन्होंने उसे उसके राजवंशी जन्म की सूचना दी। तब उन्होंने उससे कहा चूँकि उसका पिता मर गया है, इसलिए उसे सिंहासन ग्रहण करना उचित होगा। पहले तो उसने उन पर विश्वास नहीं किया। धीरे-धीरे, उसे विश्वास हो गया कि उन्होंने उससे सच

कहा है। वह राजधानी लौट आया और शीघ्र ही एक राजा के अनुरूप आचरण करने लगा।

वास्तव में हम सर्वोच्च हैं, जो सभी बन्धनों से रहित हैं। अज्ञान के कारण, हम मानते हैं कि हम जन्म और मृत्यु के अधीन हैं और हमें दुःख का अनुभव करना पड़ता है। गुरु के वचनों के माध्यम से हमें अपने वास्तविक स्वरूप का बोध हो जाने पर, हम अपनी काल्पनिक हथकड़ियों को तोड़ देते हैं और आनन्दमय परब्रह्म बने रहते हैं। कोई वास्तविक परिवर्तन नहीं होता। झूठी मान्यताओं को त्याग दिया जाता है, जैसा कि राजकुमार के सम्बन्ध में हुआ।

93. बन्धन और मुक्ति का कारण — मन

एक तीन साल के लड़के ने एक सेब माँगा। चूँकि घर पर सेब नहीं था, इसलिए उसकी माँ ने उसके बदले उसे दूसरे फल दिए। उसने उन्हें लेने से मना कर दिया और हठपूर्वक कहा कि उसे एक सेब ही दिया जाए। उसकी माँ ने उससे कहा कि वह सायंकाल तक उसके लिए एक सेब खरीद देगी। हालाँकि, वह रो पड़ा और तब तक रोता रहा जब तक कि उसमें आसक्त माँ उसे एक फल व्यापारी के यहाँ नहीं ले गई और उसने उस लड़के को अपनी रुचि का एक सेब लेने की अनुमति नहीं दे दी। जब उसकी इच्छा पूरी हुई, तो वह प्रसन्नता से मुस्कुराने लगा।

उसकी सात वर्षीय बहन, जिसने यह सब देखा था, उसका थोड़ा उपहास करना चाहती थी। उसने मुख पर गम्भीर भाव का नाटक करते हुए, उससे कहा, "तुमने अनजाने में एक बीज खा लिया है। मैंने तुम्हें ऐसा करते हुए देखा। तुम्हें पता है क्या होगा? एक सेब का वृक्ष तुम्हारे पेट में उगने लगेगा। इससे तुम्हें बहुत वेदना होगी व यह तुम्हारी नाक और मुँह से बाहर निकलकर तुम्हें हँसी का पात्र बना देगा।" उसने उसकी बनाई हुई बात को पूर्णतः सही मान लिया और भय के मारे पीला पड़ गया। उसे भयभीत देखकर, उसकी माँ

ने कारण का पता लगाया और उसे समझाने का पूरा प्रयास किया। उसने एक से अधिक बार इस बात पर बल दिया कि उसकी बहन उसकी टांग खींच रही है। परन्तु उस पर उनकी बात का तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा। वह सतत आतङ्कित रहा और उसने घंटों पानी की एक बूँद भी नहीं पिया। उसकी माँ को उसकी चिन्ता सताने लगी। इसलिए, जैसे ही उसका पति काम से लौटा, उसने उसे सब कुछ बताया जो भी घटित हुआ था।

पिता ने अपने बेटे को अपनी बाहों में लिया और एक कोमल तथा आश्वस्त स्वर में कहा, "सामान्यतः, सेब के बीज को निगलने पर, पेट के अन्दर कोई भी वृक्ष नहीं उगता। यदि ऐसा होता भी है, तब भी छोटा होता है। वास्तव में, वह इतना छोटा है कि वह किसी भी वेदना का कारण नहीं बनता और दूसरों द्वारा नहीं देखा जा सकता। इसलिए, भले ही तुम्हारे भीतर एक पेड़ विकसित हो, इससे तुम न तो पीड़ित होगे और न ही उपहास का पात्र बनोगे। तुम्हें सेब पसन्द है। एक बार कभी जब तुम्हारे भीतर एक वृक्ष पनपेगा, तो तुम्हें सेब की निरन्तर आपूर्ति मिलेगी। तुम अपनी उङ्गलियों को अपने मुँह के अन्दर डालकर एक छोटा फल निकाल सकते हो और उसे चबाकर निगल सकते हो। क्या जब भी तुम चाहो, स्वादिष्ट सेब प्राप्त करने में सक्षम होना अद्भुत नहीं होगा?"

लड़के ने सिर हिलाया और उसके मुखमण्डल पर मन्दहास के चिह्न बन गए। "क्या तुम चाहते हो कि पेड़ बड़ा हो या नहीं?" पिता ने पूछा। "निश्चित रूप से मैं चाहता हूँ," लड़के ने उत्तर दिया। "बीज अङ्कुरित नहीं भी हो सकता है। परन्तु अगर ऐसा होता है, तो इसे एक वृक्ष के रूप में विकसित करने में सहायता करने के लिए, तुम्हें खाना खाना होगा और पानी पीना होगा। यदि तुम अपने आप को भूखा रखोगे, तो पेड़ मर जाएगा," पिता ने बताया। लड़का तुरन्त अपनी माँ के पास गया और अपना भोजन व एक गिलास पानी माँगा। उसका भय पूर्णतः आमोद व उत्साह में बदल गया था।

एक सेब के लिए उसकी अधूरी इच्छा के कारण, लड़का प्रारम्भ में उदास था। इसके बाद, वह अपने अतिप्रिय शरीर के प्रति मूर्खतापूर्ण प्रकार से

कल्पित आगामी आपत्ति के कारण, घबराहट की चपेट में आ गया था। इस तरह, सेब प्राप्त करने से पहले और बाद में, उसके दुःख का कारण उसका मन था।

राजा ऋषभ ने अपने ज्येष्ठ पुत्र भरत का अभिषेक किया और अपनी सारी सम्पत्ति का त्याग कर दिया। भरत और उनकी पत्नी पञ्चजनी के पाँच बेटे थे। विद्वान और धर्मपालन में निष्ठावान, उसने न्यायपूर्ण शासन किया और अपनी प्रजा की अत्यन्त स्नेहपूर्वक देखरेख की। प्रजा अपने कर्तव्यों का पालन करती थी और राजा को उच्च सम्मान में रखती थी। राजा भरत ने दर्श-पूर्णमास जैसे अनेक यज्ञ किए और गहरी भक्ति के साथ भगवान विष्णु की पूजा की। लम्बे समय तक अपने राज्य पर शासन करने के बाद, उसने अपना राज्य और सम्पत्ति अपने बेटों को सौंप दी, और गण्डकी नदी के तट पर पवित्र क्षेत्र शालिग्राम के पास चला गया। वहाँ, वह वानप्रस्थ के रूप में रहता था। वह दिन में तीन बार स्नान करता था, बिना चूके अपना सन्ध्या-वन्दन करता था और पूजा में तथा भगवान के ध्यान में बहुत समय बिताता था।

एक दिन, जब उसने नदी में स्नान के बाद अपना सन्ध्यावन्दन पूरा किया, तब एक गर्भवती हिरनी को नदी के पास जाते हुए देखा, जो अपना प्यास बुझाने आई थी। जब वह अत्यन्त उत्सुकता से पानी पी रही थी, उसने एक शेर की दहाड़ सुनी। भय से त्रस्त, वह धारा के पार उछली। जैसे ही उसने ऐसा किया, उसके गर्भ में से भ्रूण उभरा और जल में गिर गया। थकावट और समय से पहले ही बच्चे को जन्म देने के कारण, माँ की मृत्यु हो गई। तरस खाकर, भरत ने अनाथ और असहाय शिशु को बचाया। उसने उसके पालन-पोषण का उत्तरदायित्त्व सम्भाला।

भरत ने उसका बहुत ध्यान रखा। उसके प्रति उसका लगाव बढ़ता गया। फलस्वरूप, जब भी वह जंगल में घूमने जाता था और वापस लौटने में समय लगता, तो वह चिन्ता से ग्रस्त हो जाता; उसे भय था कि उस हिरन पर किसी माँसाहारी ने आक्रमण कर दिया होगा। यहाँ तक कि जब वह आश्रम में था, तो उसने यह पुष्टि करने के लिए कि वह सुरक्षित और स्वस्थ है, अपने धार्मिक

अनुष्ठानों को बाधित किया। समय बीत गया। अन्ततः, भरत मर रहा था। उसके मन में यह विचार व्याप्त हो गया कि हिरण का क्या होगा। उसने पशु को बचाने से पहले जिन प्रभु को लगभग प्राप्त कर लिया था, उनके बदले हिरण पर ध्यान केन्द्रित करते हुए, उसने अपनी अन्तिम साँस ली।

अपने गहन लगाव के फलस्वरूप, उसका हिरण के रूप में पुनर्जन्म हुआ। सौभाग्यवश, उसका पिछले जन्म की स्मृति ने उसका साथ नहीं छोड़ा। वह वापस शालिग्राम के पास गया, वहाँ रहने लगा और धैर्यपूर्वक एक हिरण के रूप में अपने जीवन के अन्त की प्रतीक्षा करता रहा। मृत्यु के बाद, उसने एक धर्मनिष्ठ ब्राह्मण की दूसरी पत्नी के इकलौते बेटे के रूप में पुनर्जन्म लिया। उसे अपने पिछले जन्मों का स्मरण था और इसलिए, संसार से लगाव का उसे बहुत भय था। आसक्ति को पूर्णतः त्यागकर, उसने अपना ध्यान ईश्वर पर केन्द्रित किया और तत्त्व-साक्षात्कार प्राप्त किया। उसने एक मन्दबुद्धि की तरह आचार-व्यवहार किया। उसके पिता ने उसका उपनयन किया और उसे पढ़ाया। हालाँकि भरत का मन यहाँ तक कि धार्मिक गतिविधि के प्रति भी विमुख था। इसलिए, उसे शिक्षित करने के उसके पिता के प्रयास असफल रहे। समय बीतने के साथ, भरत के माता-पिता की मृत्यु हो गई।

उसे मूढ़मति मानते हुए उसके सौतेले भाइयों ने उसे पढ़ाने के सभी विचार त्याग दिए। वे इस बात से अनभिज्ञ थे कि भरत सदैव परब्रह्म में स्थित एक जीवन्मुक्त था। भरत ने अपने कौपीन पर एक चीथड़े से अधिक कुछ नहीं पहना और धरती पर सोता था। उसके भाइयों ने उसे अपने खेतों में काम पर लगाया। उसने कोई आपत्ति नहीं जताई, परन्तु निःस्वार्थ भाव से काम किया। उसके भाइयों ने उसे खाने के लिए जो कुछ भी दिया, चाहे वह अच्छी तरह से पका हो या नहीं, वह खा लिया करता था।

एक दिन, पुत्र की इच्छा रखने वाले एक डाकू नेता ने देवी काली को नर-बलि चढ़ाने की व्यवस्था की। उसके सेवकों ने उस बलि के लिए लम्बे समय तक खोजबीन की और तब उन्होंने भरत को देखा, जो बलिष्ठ और प्रत्येक अङ्ग में निर्दोष था। उन्होंने उसे रस्सी से बाँध दिया, जिसका उसके

द्वारा कोई विरोध नहीं किया गया, और उसे बलि के स्थान पर ले गए। वहाँ उन्होंने उसे नहा-धोकर सजाया। जब वह मारा जाने वाला ही था, तो देवी ने सन्त के जीवन को बचाने के लिए हस्तक्षेप किया और उन्होंने उन लोगों को मार डाला, जो उसका रक्त बहाना चाहते थे।

एक दिन, ऋषि कपिल से मिलने के लिए सिन्धु-सौवीर क्षेत्र का शासक एक पालकी पर निकला। नई नियुक्तियों की खोज में रहे पालकी-वाहकों के नेता ने भरत को देखा। उसने राजा की पालकी ढोने के लिए ऋषि भरत को चुना।

भरत ने विरोध में एक शब्द नहीं कहा। परन्तु वह अपनी आँखें धरती पर टिकाकर चलता था और उसकी गति दूसरों की गति से मेल नहीं खाती थी। तो पालकी ने हिचकोले खाए। राजा ने अपने पालकी वाहकों को समान गति से चलने का निर्देश दिया। पालकी हिचकोले खाती रही। यह जानकर कि उसके निर्देशों का वाञ्छित प्रभाव नहीं हो रहा था, शासक ने भरत को इसका उत्तरदायी पाया और उसे फटकार लगाई। व्यंग्यात्मक ढंग से, उसने भरत से कहा, "अरे! तुमने पालकी को बहुत दूर तक अकेले अपने ही बल पर ढोया है; तुम हृष्ट पुष्ट नहीं हो और उम्र ने तुम्हें बलहीन बना दिया है।"

राजा पर दया करते हुए, भरत ने उन्हें सत्य की शिक्षा दी। उसने कहा, "मोटापा का सम्बन्ध है मेरे शरीर से, मुझसे नहीं। आपका शरीर पृथ्वी का एक रूपान्तर है। वह जिस पालकी द्वारा वहन किया जाता है, वह पुनः पृथ्वी का रूपान्तर है। वाहक का शरीर भी पृथ्वी का ही बना है। पालकी कन्धे पर टिकी होती है जो धड़ के आधार पर स्थित है; धड़ भार को पैरों में स्थानान्तरित करता है; पैर धरती पर स्थित हैं। फ़िर मेरे द्वारा किसी बोझ को वहन किए जाने का प्रश्न ही कहाँ है? तय की जाने वाली दूरी या पहुँचे जाने वाला गन्तव्य जैसी धारणाएँ वास्तविकता पर आधारित नहीं हैं। केवल चैतन्य ही सत्य है। शेष सब आभास मात्र है।" राजा को भरत की महानता का बोध हुआ और ऋषि के प्रबोधक, मार्मिक प्रवचन से बहुत लाभान्वित हुआ। भरत ने आसक्ति को तनिक भी अवकाश दिए बिना, अपना जीवन जिया और मृत्यु के बाद, विदेह-मुक्ति प्राप्त कर ली।

भरत का मन उसके पुनर्जन्मों का कारण था और उसके सत्य का ज्ञान प्राप्त करने का और इसलिए, मुक्ति का भी। मैत्रायणी-उपनिषद् घोषित करती है, "मन दो प्रकार का होता है, शुद्ध और अशुद्ध। इच्छा के साथ होने पर वह अशुद्ध है; इच्छा रहित होने पर वह शुद्ध है ... मनुष्यों के बन्धन और मुक्ति का कारण वास्तव में मन ही है। जब वह वस्तुओं से जुड़ जाता है, तो बन्धन का कारण बनता है। विषयों के विचारों से रहित होने पर, वह मुक्ति की ओर ले जाता है ... जैसे ईंधन के समाप्त होने पर, अग्नि अपने मूल में विलीन हो जाती है, वैसे ही विचारों की समाप्ति पर, मन अपने स्रोत में, आत्मा में, लय हो जाता है ... मन को हृदय में, आत्मा पर, तब तक संयमित रखना चाहिए, जब तक कि वह नष्ट न हो जाए ... जिस मन का मल समाधि द्वारा धोया गया है और जो आत्मा पर दृढ़ स्थापित है, उसे प्राप्त आनन्द शब्दों में वर्णित नहीं किया जा सकता है।"

94. सर्वस्व का परित्याग

द्वापर युग में, शिखिध्वज नाम का एक राजा था, जिसने मालव देश पर शासन किया था। वह विद्वान था और उदारता, दया और वीरता जैसे सद्गुणों से सम्पन्न था। उसकी रानी सौराष्ट्र के राजा की बेटी चूडाला थी। वह अति पवित्र और अपने पति के लिए एक आदर्श साथी थी। पति-पत्नी एक-दूसरे से बहुत प्रेम करते थे और समय बीतने के साथ उनका आपसी स्नेह बढ़ता गया। वे बड़े आनन्द से एक साथ रहते थे।

बरसों बीत गए। उनका यौवन बीत गया और वे बूढ़े हो गए। उन्हें निश्चित रूप से बोध हुआ कि सभी सांसारिक वस्तुएँ और सुख क्षणिक हैं और ऐसी कोई सांसारिक वस्तु नहीं है, जिसे प्राप्त करने पर मन को दुःख से स्थायी मुक्ति मिलता हो। गहराई से चिन्तन करते हुए, उन्होंने ऐसा निष्कर्ष निकाला कि केवल आत्मज्ञान ही संसार चक्र रूपी विषाक्त रोग से पूरी तरह से मुक्ति प्रदान कर सकता है। इसलिए, अपना पूरा मन लगाकर, उन्होंने ऐसा ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास किया।

चूडाला ने ज्ञानियों से शास्त्रों का तात्पर्य सुना और फ़िर जो उसने सुना था, उस पर विचार किया। उसने सोचा, "मैं कौन हूँ? शरीर जड़ वस्तु है। मैं, जो चेतन हूँ, शरीर नहीं हो सकती। शरीर से जुड़ी इन्द्रियाँ, शरीर जैसे ही जड़ हैं; जैसे एक डंडे से वार किए जाने पर एक पत्थर हिलाया जा सकता है, वैसे ही वे मन से प्रेरित होती हैं। तो, मैं इन्द्रिय नहीं हूँ। और न ही मैं मन हूँ, जो मूल रूप से चैतन्य-रहित है; अन्ततोगत्वा, वह बुद्धि द्वारा प्रेरित किया जाता है, किसी जड़ वस्तु की तरह। बुद्धि, अहङ्कार द्वारा प्रेरित होने के कारण, निश्चित रूप से जड़ है और मैं बुद्धि नहीं हो सकता।"

इस तरह, गहराई से सोचते हुए, चूडाला इस निष्कर्ष पर पहुँची कि वह अद्वैत चित्, सर्वोच्च ब्रह्म है। अपने स्वरूप परम सत्य पर ध्यान केन्द्रित करते हुए, उसने आत्मज्ञान प्राप्त किया। वह विरक्त एवं सुख-दुःख और गर्मी-ठण्ड जैसे विरोधी द्वन्द्वों से अविचलित हो गई।

शिखिध्वज ने पाया कि चूडाला तेजस्वी दिख रही है। उसने उससे पूछा, "ऐसा कैसे है कि तुम ऐसी दिखती हो जैसे कि तुमने अपना यौवन फ़िर से प्राप्त कर लिया हो?" उसने उत्तर दिया, "मैंने संसार को त्याग दिया है जो न तो वास्तविक है और न ही पूरी तरह से असत्। मैं सांसारिक भोगों के बिना सन्तुष्ट हूँ और न तो हर्ष अनुभव करती हूँ और न चिढ़। मैं पूर्ण और अनन्त आत्मा में आनन्द लेती हूँ। इसलिए, मैं दीप्तिमान दिखती हूँ।"

हालाँकि, राजा को उसकी बातों का महत्त्व समझ में नहीं आया। इसलिए, उसने उससे उपहासपूर्वक कहा, "तुम बच्चे की तरह बकबक करती हो। तुम राजसी सुखों के बीच में हो। तुम्हारे कुछ त्यागने का प्रश्न ही कहाँ है? तुम भ्रमित हो। हे सुन्दरी, तुम शब्दों से खिलवाड़ कर रही हो। आनन्द लो।" वह हँस पड़ा और अपने अपराह्न के स्नान के लिए निकल गया।

चूडाला को शिखिध्वज पर तरस आ गया परन्तु उसे यह पता चला कि उसका पति आत्मज्ञान के बारे में उसके परामर्श पर ध्यान नहीं देगा। यद्यपि वह इच्छाओं से परे थी और अनवरत सन्तुष्ट थी, एक दिन, उसने यूँ ही अलौकिक शक्तियों को पाने का निर्णय किया। अपेक्षित नियमों का पालन

करते हुए, उसने प्राणायाम और ध्यान का अभ्यास किया। उसने अपनी कुण्डलिनी जगाई। अन्त में, उसने बहुत छोटा या बृहत् बनने जैसी सभी प्रसिद्ध आठ योग-सिद्धियों को प्राप्त किया। आध्यात्मिक साधकों को सिद्धियों में अनुरक्त नहीं होना चाहिए और उन्हें अपने योग मार्ग में विक्षेपों और बाधाओं के रूप में देखना चाहिए। हालाँकि, चूँकि चूडाला पहले से ही प्रबुद्ध थी, उसके पाने या खोने के लिए कुछ भी नहीं था और उनकी प्राप्ति, उसे परब्रह्म में अपनी संस्थिति से तनिक भी विचलित नहीं की।

यद्यपि उसने अपने पति को उसकी अज्ञानता की नींद से जगाने का बहुत प्रयास किया, परन्तु उसने उसे केवल अपनी अत्यन्त प्यारी, परन्तु अबोध, पत्नी मानते हुए, उसके शब्दों पर ध्यान नहीं दिया। राजा ने बहुत दान किया, तीर्थयात्राएँ कीं और गम्भीर आहार प्रतिबन्ध एवं उपवास सहित प्रशस्त तपस्या भी की। फ़िर भी, वह सत्य से अनभिज्ञ बने रहा और कष्टों से तड़पता रहा। उसे दृढ़ता से लगने लगा कि उसका सुखभोग, अधिकार और कर्तव्य उसके सत्य के अन्वेषण में अवरोध हैं। इसलिए, उसने उन्हें त्यागने का निर्णय लिया।

उसने चूडाला से अकेले में कहा, "मैंने इस राज्य पर लम्बे समय तक शासन किया और विभिन्न भोगों का अनुभव भी किया। अब, वैराग्य से प्रेरित, मैं वानप्रस्थ होना चाहता हूँ। सुख, दुःख, सम्पत्ति और प्रतिकूलता उस व्यक्ति को पीड़ित नहीं करते जो त्याग कर चुका होता है और जंगल में रहता है। वहाँ रहकर, मैं सभी चिन्ताओं से मुक्त और प्रसन्न रहूँगा। तुम्हें मेरे सच्चे कार्य के मार्ग पर आगे बढ़ने के प्रयास को विफल नहीं करना चाहिए, प्रत्युत राज्य को सम्भालना चाहिए।" चूडाला ने उसे अवगत कराया कि उस समय राज्य का त्याग करना अनुचित है। परन्तु, वह अपने सङ्कल्प पर अडिग रहा। रात को जब चूडाला सो रही थी, वह उसकी उपस्थिति से दूर चला गया। उसने अपने परिचारकों को बताया कि वह अकेले पहरे पर जा रहा है।

वह दूर के जंगल में चला गया और उसने पत्तों की एक झोंपड़ी बनाई। वहाँ वह जप और पूजा करते हुए रहता था। चूडाला ने अपनी योग शक्तियों से

उसे ढूँढ़ लिया, परन्तु यह तय करके कि उसकी सहायता करने का वह उचित समय नहीं है, उसने उसे अकेला छोड़ दिया और राज्य की देख-भाल करती रही। समय बीत गया। अपने पति का उत्थान करने की इच्छा से और यह जानकर कि वह उसके परामर्श को गम्भीरता से नहीं लेगा, उसने उचित समय पर, स्वयं को तपस्या से दीप्तिमान एक ब्राह्मण लड़के में बदल दिया और शिखिध्वज से सम्पर्क किया। शिखिध्वज ने उठकर विधिवत् उसका सम्मान किया। चूडाला ने उसे बताया कि उसका नाम है कुम्भ और वह देवर्षि नारद का पुत्र है। शिखिध्वज उससे बहुत प्रभावित हुआ।

कुम्भ ने उससे कहा कि आत्मज्ञान पाने के लिए, उसे सब कुछ त्याग देना चाहिए। शिखिध्वज ने उत्तर दिया कि उसने अपने राज्य, अपने महल, धन और यहाँ तक कि अपनी प्रिय पत्नी को भी त्याग दिया है। शिखिध्वज ने तब पूछा, “क्या यह पूर्ण त्याग नहीं है?” कुम्भ के रूप में चूडाला ने उत्तर दिया, “यद्यपि आपने अपने राज्य और सभी वस्तुओं का त्याग किया है, तथापि यह पूर्ण त्याग नहीं है। आपको अभी भी लगाव है।” इन शब्दों को सुनने पर,, राजा ने कहा, “वर्तमान में, मैं इस जंगल से प्रेम करता हूँ। इसलिए, मैं अब इससे भी लगाव छोड़ दूँगा।” उसने जो करने का प्रस्ताव दिया, उसमें वह सफल रहा। फ़िर उसने कहा, “मैंने पूरी तरह त्याग कर दिया है।” चूडाला ने आपत्ति जताई और कहा, “यहाँ तक कि वृक्षों, नदियों और पहाड़ों के लिए अपने प्रेम का त्याग करने पर भी, आपने सब कुछ त्याग नहीं किया है।” फ़िर राजा ने अपने पात्र और झोंपड़ी, जिसमें वह रहता था, त्याग दिया। ऐसे होने पर भी, चूडाला असन्तुष्ट थी। अतः, शिखिध्वज ने अपने मृग-चर्म, रुद्राक्ष-माला, कटोरे आदि त्याग दिए और नग्न खड़ा हो गया।

एक बार फ़िर, चूडाला ने आपत्ति जताई कि उसने सर्वस्व का त्याग नहीं किया है। राजा ने सोचा कि चूँकि उसके पास केवल अपना शरीर बचा है, इसलिए पूर्ण त्याग प्राप्त करने के लिए, उसको उसे भी त्यागना चाहिए। वह स्वयं को आत्महत्या करने के लिए उद्यत हुआ, परन्तु उसकी पत्नी ने उसे रोक दिया। उसने उससे कहा, “यदि आप इस शरीर को छोड़ भी देते,

तो भी आपने पूर्ण त्याग नहीं किए होते। दूसरी ओर, यदि आप उसे छोड़ देते हैं जो इस शरीर का उत्प्रेरक है और जो सभी जन्मों और कर्मों का बीज है, तभी आप सब कुछ का त्याग किए होंगे।" राजा ने स्पष्टीकरण माँगा। चूडाला ने समझाया कि यह मन का त्याग है जो सबसे महत्त्वपूर्ण है। मन ही सब कुछ के रूप में प्रकट होता है। मन में वासनाएँ या प्रवृत्तियाँ समाविष्ट हैं और मन के वृक्ष का बीज अहङ्कार है। "अपने आत्म-स्वरूप का विचार ही मन के बीज को नष्ट कर देता है," चूडाला ने बल देकर कहा।

उससे निर्देशित राजा उसके परामर्श को अपनाने में सफल रहा और ज्ञानी बन गया। चूडाला वहाँ से चली गई और कुछ समय बाद उसके पास वापस आ गई। उसने सख्ती से उसकी परीक्षा ली, परन्तु वह अद्वैत सत्य में दृढ़ बना रहा। कुम्भ के रूप में अपने उद्देश्य को पूरा करने के बाद, उसने अपनी पहचान उसके सामने प्रकट की और उसे राज्य में लौटने के लिए मनवाने में सफल हुई। शिखिध्वज तब शासन करने लगा, परन्तु बिना किसी लगाव के, तथा बिना किसी प्रतिकूलता और समृद्धि से तनिक भी प्रभावित हुए। वह और उसकी पत्नी पूरी तरह से परमसत्य में रूढ़ बने रहे।

95. जगत् का भ्रमात्मकत्व

विद्यानिधि एक ब्रह्मचारी था जो एक वृद्ध महात्मा के अधीन वेदान्त का अध्ययन कर रहा था। एक पहाड़ी पर सुनसान और प्राकृतिक सौन्दर्य से भरपूर स्थल पर किसी जल-धारा के निकट स्थित एक छोटी सी झोंपड़ी में, केवल उसके गुरु और वह रहनेवाले थे। सदैव की भाँति, एक रात विद्यानिधि अपने गुरु के कमरे के प्रवेश द्वार के बाहर लेट गया। उसके गुरु कुछ समय पहले रात के विश्राम के लिए चले गए थे। कुछ ही मिनटों में विद्यानिधि सो गया। कुछ ही समय बाद, वह अपने गुरु की धीमी-धीमी कराहने की ध्वनि से जाग उठा। उसने द्वार खोला और यह जानने के लिए

प्रवेश किया कि उसके गुरु को किसी वस्तु की आवश्यकता है या नहीं। उसने अपने गुरु को अपना पेट पकड़े हुए स्पष्ट रूप से बहुत वेदना में पाया।

विद्यानिधि - हे भगवन्, क्या मैं वैद्य को गाँव से बुला लाऊँ?

गुरु - नहीं। रात में पाँच किलोमीटर की यात्रा करने का कष्ट उसे क्यों देना? कुछ भी हो, वेदना केवल शरीर-मन के सङ्घात के लिए है। मैं केवल निर्विकार और अप्रभावित साक्षी हूँ।

विद्यानिधि - मुझे पता है कि आप सुख और दुःख से अबाधित हैं, परन्तु मैं आपका दुःख सहन नहीं कर पा रहा हूँ। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि मुझे कम से कम आपके लिए कुछ ओषधियाँ ले आने की अनुमति दीजिए।

गुरुजी ने देखा कि विद्यानिधि अत्यधिक चिन्तित था और उसके आँसू बह निकलने वाले थे। इसलिए, उन्होंने एक आयुर्वेदिक औषध का निर्देश किया और विद्यानिधि को वैद्य से मिलकर उसे लाने की अनुमति दी। तुरन्त ही विद्यानिधि निकल पड़ा। चाँद स्पष्ट दिखाई दे रहा था और वह वैद्य के गाँव तक केवल धारा के किनारे चलते हुए ही पहुँच सकता था। इसलिए, विद्यानिधि अपने साथ प्रकाश का कोई स्रोत नहीं ले गया। वह तेज़ चाल से आगे बढ़ा।

आधे घंटे की यात्रा के बाद, उसको अपने दाहिने पैर में तेज़ पीड़ा होने लगी। उसने पाया कि कांटों का एक गुच्छ उसके तलवे में घुस गया था। वह बैठ गया और ध्यान से उन्हें बाहर खींच निकाला। वेदना कम होने लगी। हालाँकि, सतत क्लेश के कारण, वह कुछ मिनटों के लिए बैठा रहा। फ़िर, वह यह सोचकर उठ गया, “मेरे गुरुदेव अस्वस्थ हैं। उनके लिए औषध ले जाने में विलम्ब करना मेरे लिए अनुचित है। किसी भी स्थिति में, चन्द्रमा तीन घंटे में अस्त हो जाएगा और मुझे इससे पहले वापस आ जाना चाहिए ताकि अँधेरे में यात्रा करने से बचा जा सके। काश मैं एक पक्षी की तरह उड़ सकता। मैं तब कुछ ही मिनटों में गाँव तक पहुँच कर वापस लौट सकता था।”

वह गाँव में वैद्य के घर पर आधे घंटे में पहुँचा। उसके द्वारा द्वार खटखटाए जाने पर, वैद्य के किशोर बेटे ने द्वार खोला। विद्यानिधि ने उसे बताया कि वह अपने गुरु के लिए एक विशेष औषध लेने आया है। लड़का व उसके पिता गुरु के भक्त थे। तो, लड़के ने तुरन्त अपने पिता को जगाया। विद्यानिधि ने अपने गुरु की स्थिति का वर्णन किया और उस औषध का नाम बताया जिसे लाने के लिए वह आया था। वैद्य ने कहा, "मेरे पास इस औषध में से कुछ भी नहीं बचा है। परन्तु मैं इसे अभी बना लूँगा। लगभग आधे घंटे तक प्रतीक्षा करें।" फ़िर वैद्य ने अपना काम प्रारम्भ कर दिया। विद्यानिधि बैठ गया। चूँकि उसे नींद आ गई थी, तो उसने अपनी आँखें मूँद लीं।

उसने स्वयं को वापसी के मार्ग पर पाया। चलते-चलते, उसने स्वयं को धरती से उठता हुआ अनुभव किया। क्षणों में, वह आकाश में उड़ रहा था। जैसे ही वह अनायास ही कुटिया के पास मैदान में उतरने लगा, तो उसे पता चला कि ऊपर से देखने पर आश्रम कितना अलग दिखता है। वह अपने गुरु के पास गया। उस समय, उसने अपने कन्धे पर एक थपकी अनुभव किया। अचानक, उसने स्वयं को वैद्य के घर पर बैठा पाया। वैद्य के बेटे ने उससे कहा, "आप सो गए थे। पिता ने मुझसे कहा, 'जब तक औषध नहीं बन जाता, तब तक तुम उन्हें न जगाना।' लीजिए, यह औषध अब बना दिया गया है।"

विद्यानिधि ने औषध प्राप्त किया, वैद्य व उनके बेटे को धन्यवाद दिया और चला गया। चाँद की स्थिति से, उसने अनुमान लगाया कि उसने एक घंटा गाँव में बिताया होगा। उसने अपनी गति बढ़ा दी। आगे बढ़ते हुए, उसने सोचा, "वैद्य के घर में मेरा सपना स्पष्ट रूप से मेरी नई जाग्रदवस्था के अनुभव पर आधारित था। मैंने औषध के साथ अपने गुरु के पास वापस उड़ते हुए जाने में सक्षम होने के बारे में उत्कण्ठा से सोचा था और मैं अपने सपने में उड़ ही गया।" वह चन्द्रास्त से थोड़ा पहले आश्रम में पहुँचा। जब वह अपने गुरु के पास गया, तो उसने पाया कि उसके गुरु को अभी भी बहुत वेदना हो रही थी। उसने औषध दी। कुछ ही मिनटों में, उसके गुरु ने उससे कहा, "वेदना लगभग दूर हो गई है। तुमने मेरे लिए बहुत कष्ट सहा

है। अब जाकर लेट जाओ।” विद्यानिधि अपनी चटाई पर वापस आ गया व शीघ्र ही सो गया।

वह भोर से पहले ही जाग गया, जैसा कि उसका अभ्यास था। उसने अपने गुरु के कमरे में झाँका और उनको शान्ति से सोते हुए पाया। कुछ समय बाद, गुरुजी बाहर आए। विद्यानिधि ने आदरपूर्वक उनसे पूछा, “हे गुरुदेव, क्या मैं जान सकता हूँ कि आज आपका स्वास्थ्य कैसा है?” “अच्छा है,” गुरुजी ने मन्दहास सहित उत्तर दिया और आगे बढ़ गए।

उस अपराह्न, वैद्य गुरुजी के प्रति सम्मान प्रकट करने आए। उन्हें देखते ही, विद्यानिधि ने कहा, “औषध ने हमारे गुरुजी पर शीघ्र ही काम किया।” “तुम किस औषध के बारे में बात कर रहे हो?” वैद्य ने चकित होकर पूछा। आश्चर्य में पड़ते हुए कि वैद्य कैसे भूल सकते हैं, विद्यानिधि ने समझाया, “मैं उस औषध की बात कर रहा हूँ जो आपने बनाया था और कल रात मुझे दिया था जब मैं आपके घर आया था।” “कल रात तो मुझसे मिलना तुम्हारे लिए असम्भव है। मैं पिछले एक हफ्ते से अपने गाँव में नहीं था। मैं कुछ घंटों पहले ही लौटा,” वैद्य ने कहा। “क्या तुम अस्वस्थ हो?” उन्होंने पूछा। विद्यानिधि पूरी तरह से उलझन में था और चुप रह गया।

शीघ्रातिशीघ्र अवसर पर, उसने अपने गुरु से पूछा, “हे गुरुदेव, जैसा कि आप जानते हैं, आपकी अनुमति से, मैं कल रात आपके पेट के वेदना से मुक्ति देने के लिए वैद्यजी से एक औषध लेने गया था। हालाँकि, वैद्य अब कहते हैं कि वे कल रात अपने घर पर नहीं थे।” “मेरे वत्स, मुझे पेट वेदना नहीं थी और मैंने तुमको वैद्य से मिलने के लिए नहीं कहा,” गुरु ने कहा, “मुझे विस्तार से बताओ कि तुम्हें क्या लगता है कि क्या हुआ।” विद्यानिधि ने उनकी बात का आदर किया और सब कुछ वर्णन किया। गुरुजी हँस पड़े।

तब गुरुजी ने विद्यानिधि को समझाया, “मेरे वत्स, कल मैं तुम्हें उन्नत आध्यात्मिक जिज्ञासुओं के लिए उपयुक्त उस वेदान्त प्रक्रिया पढ़ा रहा था कि जाग्रत् और स्वप्न अवस्थाओं के जगत्, एक समान ही है। तुम्हें कई सन्देह थे और मैंने तुमसे कल कहा था कि मैं आज तुम्हें स्पष्टीकरण दूँगा।

ईश्वर की कृपा से, तुमने एक ऐसा सपना देखा जिसके कारण, अब मेरा काम आसान हो गया है।

"तुम सो गए। तुम अब सोचते हो कि तुम मुझे पीड़ा में कराहते हुए सुनकर उठ गए थे। परन्तु, वह तुम्हारे सपने का आरम्भ बिन्दु था। तुम्हारा सपना अपनी शय्या पर लौटने के साथ, समाप्त हुआ। तुम्हारे सपने के असामान्य प्रारम्भ और अन्त ऐसे थे कि जागने के बाद भी तुम अपने सपने को अपनी जाग्रदवस्था से अलग नहीं कर पाए। जैसा कि तुम देख सकते हो, तुम्हें प्रत्यक्ष अनुभव हुआ है कि जाग्रदवस्था का संसार, स्वप्न के जगत् के समान है।

"तुम्हारे सपने में, तुम्हें कांटों के सम्पर्क में आने से पहले, पीड़ा नहीं हुई थी, परन्तु तुमने उसे अनुभव तब किया जब कांटे तुम्हारे दाहिने पैर के तलवे में घुस गए। तुमने कांटों को पकड़कर बाहर निकाला। इसके बाद, वेदना धीरे-धीरे कम हो गई। ऐसा ही अनुभव तुम्हें जागते समय होता है। फ़िर तुम्हें जाग्रदवस्था के काँटों को, स्वप्नावस्था के काँटों के समान मिथ्या क्यों नहीं मानना चाहिए?

"तुम्हारे सपने में, आकाश में एक चन्द्रमा ने तुम्हें तुम्हारी यात्रा के लिए आलोक प्रदान किया। इसके अतिरिक्त, तुमने अपनी आगे की और वापसी यात्राओं के समय, उस चाँद को विभिन्न स्थितियों में देखा। तुमने चन्द्रमा की गति के आधार पर, समय बीतने का भी अनुमान लगाया। जब तुम चल रहे थे, तब तुमने अपने आपको धारा के किनारे आगे बढ़ते हुए पाया, परन्तु बैठते समय नहीं। तुम जाग्रदवस्था में इन सबका अनुभव इसी प्रकार से पा सकते हो। तो फ़िर तुम जाग्रदवस्था के चन्द्रमा, समय, स्थान और गति के प्रभाव को, सपने में अनुभव किए गए उनके समान क्यों नहीं मानते?

"तुम मानते हो कि सपने जाग्रदवस्था के वास्तविक अनुभवों पर आधारित होते हैं और जब तुम सपने से जागते हो, तो तुम एक झूठे संसार से एक वास्तविक जगत् में लौट आते हो। वर्तमान में, कल रात अपने सपने के समय, तुम्हारा एक और सपना था, जो प्रकट रूप से मुख्य सपने के तुम्हारे

अनुभवों के आधार पर था। इसके अतिरिक्त, जब तुम दूसरे सपने से जागे, तब तुम मुख्य सपने में वापस लौट आए। क्या तुम्हारे जागने की स्थिति और तुम्हारे मुख्य सपने के बीच का सम्बन्ध, तथा तुम्हारे मुख्य सपने और दूसरे सपने के बीच का सम्बन्ध सममूल्य पर नहीं हैं? फ़िर तुम्हें अपने जागने की स्थिति को मुख्य सपने की तरह अवास्तविक या झूठा क्यों नहीं मानना चाहिए?

"कल रात के तुम्हारे सपने की अवधि में, वैद्य और उनके बेटे ने, स्पष्ट रूप से तुम्हें अपने घर में सोते हुए देखा था, जब तुम अपना दूसरा सपना देख रहे थे। वे प्रमाणित कर सकते थे कि तुम अपनी कुटिया में उड़ते हुए वापस नहीं आए थे, जैसा कि तुम्हारे द्वारा अपने दूसरे सपने में अनुभव किया गया था। फ़िर, जाग्रदवस्था के वे लोग, जो तुम्हें सोते और सपने देखते समय देख सकते हैं, उनको तुम्हारे मुख्य सपने के वैद्य और उनके बेटे के समान तुम्हें क्यों नहीं मान लेना चाहिए?"

अन्त में, गुरुजी ने विद्यानिधि से पूछा, "क्या वेदान्त की कक्षा के अन्त में कल सन्ध्या तुमने जो सन्देह व्यक्त किए थे, वे अब हल हो गए?" "मेरे सन्देह दूर हो गए हैं। मैं अब यह स्वीकार करने की स्थिति में हूँ कि जाग्रदवस्था का जगत् उतना ही अवास्तविक है जितना स्वप्न में देखा गया संसार," विद्यानिधि ने कहा।

गुरुजी ने कहा, "मेरे बच्चे, जब तुम अद्वैत तत्त्व का साक्षात्कार प्राप्त कर लेते हो, तब ही तुम्हें यह अडिग अनुभव होगा कि जाग्रत्, स्वप्न और गहरी नींद — ये अवस्थाएँ भ्रमात्मक हैं और केवल उनका अधिष्ठानभूत शुद्ध चैतन्य ही वास्तविक है। तुम्हारी वर्तमान समझ इस दिशा में एक पग मात्र है। जब तक कोई व्यक्ति इच्छाओं से मुक्त नहीं होता, वह जाग्रत् को स्वप्न के समान नहीं समझ सकता। अध्यात्म पथ पर निरन्तर प्रयास करो। भगवान की कृपा से, सफलता तुम्हारी होगी।"

अपने बृहदारण्यक-उपनिषद् के भाष्य में, भगवत्पाद जी ने समझाया है, "वेद जाग्रत् के अनुभव को केवल एक स्वप्न मानता है," और, "स्वप्नों में,

लोक जो अस्तित्व में नहीं हैं, वे आत्मा के एक भाग होने के रूप में झूठे अध्यारोपित किए जाते हैं। जाग्रत् के संसारों को भी वैसा ही समझना चाहिए ... चूँकि जाग्रदवस्था में और स्वप्नावस्था में भी, स्थूल और सूक्ष्म संसार — जिनमें क्रियाएँ, उनके कारक और उनके परिणाम सम्मिलित हैं — केवल द्रष्टा द्वारा दृश्य वस्तुएँ हैं, इसलिए, वह द्रष्टा — जो चैतन्यस्वरूप आत्मा है — अपनी वस्तुओं तथा उन अवस्थाओं में देखे जाने वाले संसारों से अलग है और निष्कलङ्क है।"

96. मिथ्यात्व का अपरिज्ञान

एक छोटे लड़के ने अपनी माँ से कहा, "कृपया एक कहानी सुनाकर मेरा मनोरञ्जन करें।" उसकी माँ ने अपनी सहमति व्यक्त की और उन्होंने निम्नलिखित पूरी तरह से काल्पनिक कहानी को सुनाया।

तीन सुन्दर राजकुमार एक ऐसे शहर में रहते थे जो पूरी तरह से अस्तित्वहीन था। वे साहसी और धर्मनिष्ठ थे। उनमें से दो का जन्म नहीं हुआ था, जबकि तीसरा अपनी माँ के गर्भ में भी नहीं पहुँचा था। अच्छे विचारों के साथ, वे श्रेष्ठता को प्राप्त करने हेतु निकल पड़े। मार्ग में उन्हें आकाश में लटके हुए फलदार पेड़ मिले। उन्होंने तरह-तरह के स्वादिष्ट फलों को तोड़ा व खाया।

आगे बढ़ते हुए, उन्होंने लहरों से सुन्दर तीन नदियों को देखा। दो नदियों में कभी जल की एक बूँद भी नहीं थी, जबकि तीसरी पूरी तरह से सूखी थी। उन्होंने नहा-धोकर सूखी नदी में खेल-कूद किया। मीठे पानी को अपने मन की तृप्ति तक पी लेने के बाद, वे एक ऐसे शहर में पहुँचे जो अभी अस्तित्व में नहीं आया था और जहाँ लोग आपस में बातचीत करते हुए आनन्द ले रहे थे।

उस शहर में, उन्होंने तीन सुन्दर भवन देखे, जिनमें से दो सर्वथा नहीं बनी थीं, जबकि तीसरे में न तो भित्तियाँ थीं और न ही खंभे। उन्होंने तीसरे

भवन में प्रवेश किया और वहाँ, उन्हें सोने के तीन पात्र मिले। पात्रों में से दो टूट गए थे, जबकि तीसरा पूरी तरह से चूर-चूर हो गया था। उन्होंने चूर्णित पात्र लिया और उसमें सौ मुट्ठी से सौ मुट्ठी कम चावल की मात्रा डाल दी। उन्होंने उस पात्र में चावल पकाया और उससे कई ब्राह्मणों को खिलाया, जिनके मुँह नहीं थे, परन्तु वे बहुत खाने वाले थे। इसके बाद, जो बचा था उसे खा लिया। आखेट और अन्य कामकाजों में स्वयं को प्रसन्न करते हुए, वे एक ऐसे शहर में सन्तुष्ट रहते थे जो अभी तक अस्तित्व में नहीं आया है।

लड़के ने ध्यान से अपनी माँ की बात सुनी। उसने कहानी का आनन्द लिया और इसमें कुछ भी असङ्गत नहीं पाया। जहाँ तक उसका सम्बन्ध था, उसकी माँ ने उसे जो कुछ एक बार घटित हुआ था, उसका पूरी तरह से तथ्यात्मक विवरण दिया था। जिस तरह विवेकहीन बच्चा कहानी को तथ्यात्मक मानता था, उसी तरह अज्ञानी लोग अपने द्वारा देखे गए संसार को वास्तविक मानने की भूल करते हैं। वे नहीं जानते कि ब्रह्माण्ड मायात्मक है; संसार मन की गतिविधि के आरम्भ के साथ प्रकट होता है और उसकी समाप्ति के साथ विलुप्त हो जाता है; और शुद्ध चैतन्यात्मक अद्वैत परब्रह्म के अतिरिक्त, जगत् का कोई अस्तित्व नहीं है।

97. एकत्व की दृष्टि

ऋषि ऋभु सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जी के मानस-पुत्र थे। अपने स्वभाव से, वे अद्वैत परब्रह्म में दृढ़ता से रूढ़ थे और शास्त्र ज्ञान के भण्डार थे। उनका निदाघ नाम का एक शिष्य था। ऋभु द्वारा शिक्षित निदाघ शास्त्र में निष्णात था। हालाँकि, वह अद्वैत सत्य में अडिग संस्थित नहीं था। अपनी पढ़ाई के अन्त में, उसने अपने गुरु की अनुमति ली और एक गृहस्थ के रूप में, देविका नदी

के तट पर वीरनगर में बस गया। उसने गृहस्थ-धर्म का अटल पालन करते हुए, एक पवित्र और धर्मार्थ जीवन बिताया। अनेक वर्ष बीत गए।

ऋभु सुनिश्चित थे कि निदाघ, जिससे वे लम्बे समय से नहीं मिले थे, अभी अज्ञानी ही है। ऋषि ने अपने विद्वान प्रिय शिष्य पर प्रभूत दया की और उसका उत्थान करने के लिए, व्यक्तिगत रूप से वीरनगर जाने का मन बना लिया। निदाघ ने अपना धार्मिक अनुष्ठान पूरा कर लिया था और जब इस बड़ी उत्सुकतापूर्वक आशा के साथ कि कोई अतिथि आए जिसका वह सत्कार कर सके और जिसे खिला सके, अपने घर के द्वार पर खड़ा था, तब उसने ऋभु को देखा। चूँकि ऋषि ने अपनी पहचान छिपाई थी, इसलिए निदाघ ने उन्हें नहीं पहचाना। हालाँकि, उसने ऋभु को आदरपूर्वक अपने घर आमन्त्रित किया और अपने अतिथि के पैर धोए।

ऋभु का विधिवत् सत्कार करने के बाद, निदाघ ने उनसे भोजन करने का अनुरोध किया। ऋभु सहमत हो गए, परन्तु उन्होंने पूछा, "पहले मुझे बताओ, तुम मुझे खाने की कौन से खाद्य पदार्थ परोसोगे?" निदाघ ने उन्हें एक भव्य सूची दी। हालाँकि, ऋभु ने उत्तर दिया कि उन खाद्य पदार्थों में से, उन्हें अपने उपभोग के लिए उपयुक्त वस्तुएँ नहीं मिलीं। फ़िर उन्होंने निर्दिष्ट किया कि वे क्या चाहते हैं जो कि उन्हें दिया जाए; उनकी सूची में मुख्य रूप से खीर और हलवा जैसे मीठे पदार्थ सम्मिलित थे। निदाघ ने अपनी पत्नी को उपलब्ध सामग्रियों में से सर्वोत्तम पदार्थों से, सम्बन्धित व्यञ्जन सज्जित करने का निर्देश दिया। शीघ्र ही, ऋभु को एक ऐसा भोजन परोसा गया जिसमें उनके अभीष्ट सारे व्यञ्जन थे।

ऋभु के खाने के बाद, निदाघ ने उनसे बड़ी विनम्रता से पूछा, "हे महोदय, क्या भोजन ने आपको तृप्त किया है? क्या आपको आराम लग रहा है?" उसने यह जानने की इच्छा भी सम्मानपूर्वक व्यक्त की कि उसके अतिथि कहाँ के रहने वाले हैं, कहाँ से आ रहे हैं और कहाँ जा रहे हैं।

ऋभु ने कहा, "जो भूख का अनुभव करता है, उसे भोजन के बाद तृप्ति मिलती है। मुझे कभी भूख नहीं लगी। तो, मुझे तृप्ति कैसे हो सकती है?

जब पाचन की अग्नि निगले गए व्यञ्जन का पचन करती है, तो भूख उगती है। इसी तरह, जब शरीर में उपलब्ध जलांश कम हो जाता है, तब प्यास लगती है। इस प्रकार भूख और प्यास शारीरिक धर्म हैं। वे मुझसे सम्बन्धित नहीं हैं, जो शरीर नहीं है। शान्ति और सन्तुष्टि मन की होती हैं और मेरी नहीं, जो मन नहीं हूँ। इस तरह, तृप्ति और शान्ति के बारे में आपके प्रश्न मेरे लिए अप्रयोज्य हैं।

“मैं सर्वव्यापी आत्मा हूँ, जो आकाश की तरह सबको व्याप्त करती है। अतः, मेरे किसी स्थान पर रहने, कहीं से आने, या किसी गन्तव्य की ओर बढ़ने का प्रश्न ही नहीं उठता। शरीरों में भिन्नता के नाते, आप, मैं और अन्य अलग-अलग दिखाई देते हैं, परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। आप और मैं सीमित और अलग-अलग नहीं हैं जो हम प्रतीत होते हैं; हम केवल अद्वैत आत्मा हैं।

“जो स्वादिष्ट माना जाता है, वह समय बीतने के साथ अखाद्य हो जाता है और घृणा का कारण बनता है। जो स्वादहीन है, वह कुछ स्वादिष्ट वस्तु में बदल सकता है। इस प्रकार, कोई भी खाद्य पदार्थ आन्तरिक रूप से स्वादिष्ट या अरुचिकर नहीं है। ऐसा कोई खाद्य पदार्थ नहीं है जो अतीत, वर्तमान और भविष्य में स्वादिष्ट बना रहे। इसके अतिरिक्त, भोजन की विभिन्न पदार्थ जैसे चावल, गेहूँ, गुड़, दूध और फल सभी पृथ्वी के ही रूपान्तर हैं।

“सोचते हुए जैसे मेरे द्वारा बताया गया है, तुम्हें अपने मन को समदर्शी बनाना चाहिए। सदैव समदर्शी होना अद्वैत सत्य का ज्ञान प्राप्त करने और संसार के चक्र से मुक्त होने का उपाय है।”

ऋभु के ज्ञान भरे शब्दों को सुनकर, निदाघ ने कहा, “हे भगवन्, मुझ पर कृपा करें। आप मेरा भला करने आए हैं। कृपया मुझे बताएँ कि आप कौन हैं।” ऋभु ने कहा, “मैं ऋभु हूँ, तुम्हारा गुरु। मैं तुम्हें सत्य सिखाने यहाँ आया हूँ। यह जानो कि ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी है, वह आन्तरिक रूप से परब्रह्म है। वास्तव में, कोई विविधता है ही नहीं; केवल अद्वैत आत्मा है।”

निदाघ ने ऋभु को साष्टाङ्ग प्रणाम किया और अपने गुरु की पूजा की। ऋषि ऋभु अपने शिष्य को आशीर्वाद देकर चले गए।

वर्षों बाद, अपनी छलकती हुई दया से प्रेरित होकर, ऋभु अपने शिष्य पर अपनी कृपा बरसाने हेतु एक बार फ़िर वीरनगर आए; वे जानते थे कि निदाघ ने अभी भी सर्वोच्च में स्थिर संस्थिति प्राप्त नहीं की है। ऋभु ने देखा कि उस क्षेत्र का राजा बड़े धूमधाम से नगर में प्रवेश कर रहा है। निदाघ अपने हाथों में जंगल से प्राप्त कुश और यज्ञार्थ समिधा लिए हुए अलग खड़ा था। ऋषि एक अज्ञानी के भेस में निदाघ के पास पहुँचे और उसे साष्टाङ्ग प्रणाम किया। फ़िर, ऋभु ने पूछा, "हे पवित्र महोदय, आप यहाँ अकेले क्यों खड़े हैं?"

निदाघ - राजा आ रहे हैं। चूँकि सड़कों पर भीड़ है, मैं यहाँ प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

ऋभु - ऐसा लगता है कि आप यहाँ की घटनाओं के बारे में अच्छे जानकार हैं। कृपया मुझे बताएँ कि यहाँ देखे गए लोगों में से कौन राजा है और शेष लोग कौन हैं।

निदाघ - बड़े हाथी के सवार नरेश है। शेष उनके परिचारक और अनुयायी हैं।

ऋभु - आपने एक साथ राजा और हाथी की ओर सङ्केत दिया है। कृपया स्पष्ट रूप से बताएँ कि दोनों में से कौन हाथी है और कौन राजा।

निदाघ - नीचे वाला हाथी और ऊपर वाला राजा। सवार और सवारी के सम्बन्ध से वास्तव में कौन परिचित नहीं है?

ऋभु - आपने नीचे और ऊपर की बात की। कृपया स्पष्ट करें कि नीचे और ऊपर के शब्दों का क्या अर्थ है।

निदाघ चिढ़ गया। वह ऋभु के कन्धों पर शीघ्रता से चढ़कर अपने पैरों से सवार होकर बैठ गया। फ़िर, उसने कहा, "अब, राजा की तरह मैं ऊपर हूँ, जबकि तुम हाथी की तरह नीचे हो।" बिना तनिक भी चिड़चिड़ाहट या

झिझक के, ऋभु ने पूछा, "हे महान ब्राह्मण, आपने कहा कि आप राजा के समान हैं और मैं हाथी की तरह हूँ। यदि हाँ, तो आन्तरिक रूप से, आप कौन हैं और आन्तरिक रूप से, मैं कौन हूँ?"

इस प्रकार ऋभु ने निदाघ के मन को उस उपदेश की ओर मोड़ दिया, जो उन्होंने वर्षों पहले दिया था, कि आन्तरिक रूप से, सब कुछ सर्वोच्च परब्रह्म है और वास्तव में कोई विविधता नहीं है। निदाघ नीचे कूद गया, ऋभु के चरणों में दण्डवत् प्रणाम किया और उसने उन्हें अपने हाथों में पकड़ लिया। उसने कहा, "हे प्रभो, आप निस्सन्देह मेरे पूज्य गुरु, ऋषि ऋभु, हैं।"

ऋभु ने दया के साथ कहा, "एक छात्र के रूप में, तुमने बड़ी शुचितासम्पन्नता से मेरी सेवा की। तुम्हारे प्रति प्रेम के कारण, मैं तुम्हें सत्य के बारे में शिक्षित करने यहाँ आया हूँ। प्रत्येक वस्तु में, अद्वैत आत्मा का अपरोक्ष साक्षात्कार करो।" निदाघ प्रबुद्ध हो गया और ऋभु चले गए।

98. शुक जी के जीवन से शिक्षा

महर्षि वेदव्यास ने एक बार कठोर तपस्या की और पूरे मन से भगवान शिव जी की आराधना की। उन्होंने भगवान से प्रार्थना की कि उन्हें पाँच तत्वों — पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश — की दृढ़ता से सम्पन्न पुत्र प्राप्त होने के लिए आशीर्वाद दें। उनसे प्रसन्न होकर, शिव जी उनके सामने प्रकट हुए और बोले, "तुम्हें जिस तरह का पुत्र चाहिए, वह तुम्हारा होगा। महानता से सम्पन्न, वह अन्तरिक्ष और अन्य तत्वों की तरह निष्कलङ्क होगा। वह दृढ़ता से परब्रह्म में रूढ़ होगा और बहुत प्रसिद्धि प्राप्त करेगा।"

अपने अभीष्ट वरदान को प्राप्त करने के बाद, व्यास ने शमी के वृक्ष से दो लकड़ियाँ लीं और आग पैदा करने के लिए उन्हें एक दूसरे से रगड़ा। जब वे ऐसा कर रहे थे तो उन्होंने अप्सरा घृताची को देखा जो शीघ्र ही तोते का रूप

धारण कर उनके पास आ गई। ऋषि से जीव का एक स्फुलिङ्ग अपने हाथ में स्थित छड़ियों के सम्पर्क में आया और उनमें से आध्यात्मिक तेज से उत्तेजित शुक का आविर्भाव हुआ। गङ्गा माता ने स्वयं उन्हें अपने जल से स्नान कराया। उस दिव्य बालक के उपयोग के लिए एक दण्ड और एक मृगचर्म आकाश से गिरे। इसके बाद उमा देवी के साथ भगवान शिव जी वहाँ आए और शुक का उपनयन किया।

भगवान की कृपा से, शुक अपने जन्म से ही प्रज्ञा से सम्पन्न थे और वेदों के जानकार थे। फ़िर भी, वेदों को अनिवार्य रूप से एक गुरु से सीखा जाना चाहिए। इसलिए, अपने उपनयन के बाद, शुक ने एक छात्र के रूप में बृहस्पति से सम्पर्क किया। देवगुरु के चरणों में वेद और शास्त्रों को शीघ्रता से सीखकर, वे अपने पिता के पास लौट आए।

शुक के ब्रह्मचर्य और मन तथा इन्द्रियों पर नियन्त्रण त्रुटिहीन थे और वे अत्यन्त विरक्त थे। उन्हें अद्वैत सत्य का साक्षात् ज्ञान था, परन्तु उन्होंने भूल से कल्पना की कि परब्रह्म को प्राप्त करने हेतु, अभी भी उनके द्वारा बहुत कुछ सीखना और करना बाकी है। उन्होंने अपने पिता से अनुरोध किया कि वे उन्हें सिखाएँ कि वे कैसे मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं।

व्यास ने अपने पुत्र को गम्भीरतापूर्वक निर्देश दिए। फ़िर भी, उन्होंने पाया कि उनका प्रबुद्ध पुत्र, जो योग में एक आदर्श बन गए थे, यह अनुभव करते रहे कि वे अज्ञानी हैं। इसलिए, व्यास ने उनसे कहा, “राजा जनक के पास जाओ। वे मोक्ष के विषय में तुम्हें सब कुछ बता देंगे।” जैसे ही शुक ने मिथिला जाने के लिए स्वयं को तैयार किया, व्यास ने कहा, “अपनी योग-शक्तियों का उपयोग करके वहाँ तक आकाश मार्ग से अपने आप को मत ले जाओ। पैदल जाकर विनम्रता के साथ जनक के पास पहुँचो।”

तदनुसार, शुक ने लम्बी दूरी पैदल ही तय की। मार्ग में उनके सामने आए कई सुन्दर दृश्यों से वे तनिक भी विचलित नहीं हुए। अन्त में, वे मिथिला में जनक के महल पहुँचे। हालाँकि, द्वार पर स्थित आरक्षकों ने उन्हें प्रवेश

करने की अनुमति देने से मना कर दिया। बिना किसी विरोध के बड़बड़ाहट के, शुक प्रवेशद्वार के पास चुपचाप खड़े रहे। यह देखकर कि बालक क्रोध से मुक्त और तेज़ धूप के प्रति उदासीन थे, आरक्षकों में से एक ने उनकी महानता को पहचान लिया और उन्हें श्रद्धापूर्वक महल के एक कक्ष में ले गया।

जनक के मन्त्री ने वहाँ हाथ जोड़कर शुक का स्वागत किया और उन्हें एक अन्य कक्ष से होते हुए, रमणीय उद्यान में ले गया, जिसमें सरोवर, फूलों से सुशोभित कई पौधे और बहुत सारे फलों से भरे पेड़ थे। वहाँ कई अत्यन्त सुन्दर नवयौवनाएँ थीं। मन्त्री ने उन्हें शुक का सत्कार करने का आदेश दिया और वहाँ से चले गए। रंगीलियों ने उनके पैर धोए, उनका विधिवत् सम्मान किया और उन्हें खाने के स्वादिष्ट पदार्थ दिए। शुक के खाने के बाद, उन्होंने उन्हें बगीचे में रुचि की हर वस्तु दिखाई। वे सङ्गीत, नृत्य और आमोद-प्रमोद में कुशल थीं और उनका मनोरञ्जन करने के लिए उन्होंने वह सब कुछ किया जो वे कर सकती थीं।

हालाँकि, शुक के मन-नियन्त्रण और वैराग्य इतना महान थे कि जिस तरह महल के द्वार पर उनके प्रति दिखाया गया अनादर से उनको कोई चिड़चिड़ाहट नहीं हुआ था, उसी प्रकार बगीचे और नवयौवनायों की चेष्टाओं से उनको कोई उल्लास नहीं हुआ। समचित्त होकर, वे उन्हें दिए गए एक आसन पर बैठ गए और अपना सायं सन्ध्यावन्दन प्रारम्भ किया। तत्पश्चात्, वे गहन ध्यान में चले गए। जब तक वे उसमें से निकले, तब तक रात का एक तिहाई भाग बीत चुका था। वे रात के दूसरी तिहाई में सोए। तदुपरान्त, वे उठे और फ़िर से भोर तक योग में लीन रहे। कुछ समय बाद, जनक अपने पुरोहित, मन्त्री और अपने परिवार के सदस्यों के साथ शुक के पास पहुँचे। राजा ने पवित्र बालक को एक रत्नमय आसन पर बिठा दिया और उनकी पूजा की। शुक ने न तो आनन्द का अनुभव किया और न ही व्याकुलता का। उन्होंने राजा को अपना सम्मान दिया और अपनी यात्रा का उद्देश्य समझाया। उनके द्वारा उठाए गए प्रश्नों में से थे — "संसार चक्र से

मुक्ति कैसे प्राप्त की जाती है? इसका साधन क्या ज्ञान है या तपस्या? यदि कोई ब्रह्मचारी ज्ञान तथा इष्ट-अनिष्ट जैसे परस्पर विरोधी द्वन्द्वों से मुक्ति प्राप्त करता है, तो क्या उसके लिए विवाह करना आवश्यक है?"

जनक ने अपने विचक्षणतापूर्ण उत्तर के समय कहा, "केवल ज्ञान और सत्य के अपरोक्ष साक्षात्कार के माध्यम से ही कोई मुक्त हो जाता है। बिना गुरु के मार्गदर्शन के, ऐसे ज्ञान और अनुभव प्राप्त नहीं किए जा सकते। ज्ञान वह नाव है जो संसार के सागर के पार ले जाती है और गुरु नाविक है। जिसका मन अपनी इन्द्रियों की शुद्धता और कई जन्मों में आचरित धर्म के नाते निष्कलङ्क हो गया है, वह अपने ब्रह्मचर्याश्रम में ही मोक्ष प्राप्त करता है। ब्रह्मचर्याश्रम में प्रबुद्ध और मुक्त होने के कारण, वैवाहिक जीवन उसके लिए किसी काम का नहीं है।

"सभी प्राणियों में अपनी आत्मा को और आत्मा में सभी प्राणियों को देखते हुए, बिना किसी भी वस्तु से जुड़े, जीना चाहिए। जो सभी प्राणियों, स्तुति और निन्दा, सुख और दुःख, सुवर्ण और लोहा एवं जीवन और मृत्यु को समभाव से देखता है, वह सर्वोच्च प्राप्त कर लेता है।"

जनक ने आगे कहा, "मैं देख रहा हूँ कि यह सारा ज्ञान जो मैं आपको बता रहा हूँ, वह इसके पहले से ही आप में है। आप मुक्ति के बारे में जानने के लिए आवश्यक सभी विषयों से पूरी तरह परिचित हैं। आपके ज्ञान, सिद्धि और शक्ति, आपकी कल्पना से कहीं अधिक श्रेष्ठ हैं। सत्य का प्रत्यक्ष रूप से साक्षात्कार प्राप्त करने पर भी, कोई सर्वोच्च प्राप्त नहीं करता अगर वह अपने अनुभव पर सन्देह करता या उसे भय रहता है कि वह मुक्त नहीं होगा। जब ऐसी भ्रान्तियाँ दूर की जाती हैं, तो वह तुरन्त सर्वोच्च को प्राप्त कर लेता है। आपने पहले ही सत्य को जान लिया है। आपका मन स्थिर और शान्त है। आप इच्छाओं से मुक्त हैं और वास्तव में समदृष्टि वाले हैं। मैं और मेरे जैसे अन्य लोग आपको अविनाशी स्वतन्त्रता में रूढ़ देखते हैं।" जनक महाराज की बात सुनकर, शुक के सन्देह और चञ्चलता दूर हो गए; वे जीवन्मुक्त बन गए।

उन्होंने सम्राट जनक से विदा ली और उड़कर वहाँ चले गए जहाँ उनके पिता हिमालय में रह रहे थे। लोगों के प्रति दया से, व्यास जी ने वेद को चार विभागों में संहिताबद्ध किया। उन्होंने ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद के प्रसार का कार्य क्रमशः पैल, वैशम्पायन, जैमिनी और सुमन्तु को सौंप दिया। व्यास के चारों महान शिष्य मैदानों के लिए प्रस्थान किए और गृहस्थ बन गए; शुक, जिन्हें व्यास ने उन चार शिष्यों के साथ पढ़ाया था, ब्रह्मचारी बने रहे और वेदों का पाठ करते हुए, अपने पिता के साथ रहे। परीक्षित को भागवत सुनाने का श्रेय शुक जी को जाता है।

एक दिन, जब शुक अकेले थे, देवर्षि नारद जी उनसे मिले और मोक्ष के बारे में उनसे बात की। अपने परामर्श के समय, नारद जी ने कहा, "शास्त्र-विहित कर्मों के अनुष्ठान, जैसे यज्ञ, द्वारा लक्षित धर्म का त्याग करो, एवं शास्त्र-निषिद्ध कर्मों के अनुष्ठान, जैसे हत्या, द्वारा लक्षित अधर्म का त्याग करो। सत्य और असत्य का त्याग करो। इन सबको त्यागकर, उस मन को त्यागो, जिसके द्वारा इन सबका त्याग किया जाता है। कोई सङ्कल्प लेना छोड़ कर, धर्म को त्यागो। वैराग्य से अधर्म का त्याग करो। मन से वाणी को नियन्त्रित करने से, सत्य या असत्य को बोलने से दूर रहो। मन के साथ तादात्म्य रखना छोड़ कर और यह जानने से कि तुम शुद्ध, अद्वैत चैतन्य हो, मन का परित्याग करो।"

शुक ने नारद जी की कही हुई बातों पर विचार किया। उन्होंने यह निश्चय किया कि वे अपनी योग-शक्तियों को संसार के सामने प्रदर्शित करेंगे और तत्पश्चात्, योग के माध्यम से अपने शरीर को त्यागकर, विदेह-मुक्ति प्राप्त करेंगे। नारद जी ने इस पर अपनी स्वीकृति व्यक्त की। शुक वहाँ गए जहाँ उनके पिता थे। अपने पुत्र के आशय को जानने पर, व्यास ने कहा, "मेरे प्रिय पुत्र, आज मेरे साथ रहो ताकि मैं कुछ और समय के लिए तुम्हें देखकर, अपनी आँखों को सन्तृप्त कर सकूँ।" हालाँकि, शुक बहुत ही विरक्त थे और विदेह-मुक्ति के लिए इतने उत्कटता से उत्सुक थे कि उन्होंने विलम्ब नहीं किया।

वे एक पहाड़ की चोटी पर चढ़ गए और कुछ समय के लिए समाधि में बैठे, ब्रह्म के परमानन्द में आनन्दित हुए। उस अवस्था से निकलने के बाद, उन्होंने नारद जी की प्रदक्षिणा की और उन देवर्षि से विदाई ली। फ़िर वे आकाश में उड़ चले। जैसे ही उन्होंने उड़ान भरी, ऋषियों और देवताओं ने उन्हें आश्चर्य से देखा। शुक ने प्रकृति के अभिमानि-देवताओं से अनुरोध किया, "अगर मेरे पिताजी मेरे पीछे आते हैं और बार-बार मुझे अपने नाम से पुकारते हैं, तो कृपया मेरी ओर से उत्तर दें।" समुद्रों, पहाड़ों, नदियों आदि के अधिष्ठातृ-देवता शुक जी से इतना प्रेम करते थे कि शुक जी के अनुरोध के अनुसार करने के लिए तुरन्त सहमत हो गए।

जैसे ही वे आकाश से होकर गुज़र रहे थे, उन्होंने अपने मार्ग में एक दूसरे से लगे हुए दो पहाड़ों की एक जोड़ी को देखा। धीमा हुए बिना, उन्होंने उनसे टक्कर मारकर उनके बीच से अपना मार्ग बना लिया। कई सम्मोहक अप्सराएँ गङ्गा में विवस्त्र खेल रही थीं, जब वे उनके ऊपर से उड़ चले। हालाँकि, उनका वैराग्य और आत्मतत्त्व में उनकी तल्लीनता अप्सराओं के लिए इतनी स्पष्ट थी कि उन्हें कोई लज्जा नहीं आई और उन्होंने अपनी नग्नता को ढँकने के लिए कोई प्रयास नहीं किया। शुक सूरज की दिशा में ऊपर की ओर उड़े और उन्होंने अपने विस्मयकारक योग प्रदर्शन को समाप्त करते हुए, अपने शरीर को त्याग दिया और उन्होंने अद्वैत परब्रह्म में आत्यन्तिक विदेह एकात्मकता प्राप्त की।

इस बीच, शुक के प्रति अपने प्रेम से प्रेरित होते हुए, व्यास ने अलौकिक रूप से अपने आप को उस स्थान पर पहुँचाया, जहाँ से उनके पुत्र ने आकाश मार्ग से उड़ान भरी थी। महर्षि व्यास ने शुक के आकाश-मार्ग का अनुसरण किया और शीघ्र ही शुक द्वारा विभाजित पहाड़ों पर पहुँच गए। व्यास से मिलने पर, ऋषियों ने उनसे शुक के अत्यन्त अद्भुत चमत्कारों का वर्णन किया। व्यास को अपने बेटे के इतने अनुस्मरण आए कि वे विलाप करने लगे और उन्होंने ऊँची ध्वनि में शुक को पुकारा। हर कहीं से प्रतिक्रिया आई, "भो!"

अपने बेटे की — जो वास्तव में सभी की आत्मा बन गए थे — महिमा देखकर, व्यास बैठ गए। जब गङ्गा में खेल रही नग्न अप्सराओं ने उन्हें निहारा, तो वे उद्वेलित हो गईं। लज्जा से भरकर, कुछ अप्सराएँ जल में गहराई तक कूद गईं। उनमें से कुछ बागों में भाग गईं, जबकि कुछ अप्सराओं ने शीघ्रता से अपने कपड़ों से स्वयं को ढक लिया। यह स्मरण करते हुए कि शुक की उपस्थिति में रमणियों को बिना कपड़े पहने रहने में कोई आपत्ति नहीं थी, व्यास को अपने बेटे पर गर्व अनुभव हुआ, परन्तु स्वयं पर लज्जा आई।

भगवान शिव जी व्यास के सामने प्रकट हुए जो अपने पुत्र के वियोग पर शोक से जल रहे थे। ऋषि को सान्त्वना देते हुए शिव जी ने कहा, "तुमने मुझसे एक ऐसे पुत्र के लिए प्रार्थना की थी जो पाँच तत्त्वों के समान हो। तुमने अपनी तपस्या से मनचाहा पुत्र प्राप्त किया। मेरी कृपा से, वह मानसिक रूप से निष्कलङ्क और आध्यात्मिक रूप से अति श्रेष्ठ था। उसने सर्वोच्च अवस्था प्राप्त कर ली है। तो, तुम शोक क्यों करते हो? उसकी ख्याति तब तक बनी रहेगी जब तक यह संसार रहेगा। मेरी कृपा से, अब से तुम्हारे साथ एक शुक जैसी छाया बनी रहेगी जो तुमको दिखाई देगी।" तब प्रभु अन्तर्धान हो गए। व्यास ने अपने बेटे की छाया को निहारा और उसने उन्हें प्रसन्नता से भर दिया।

शुक जी का जन्म सत्य के ज्ञान के साथ हुआ था। ऐसा जन्म सम्भव है, परन्तु अत्यन्त विरल है। एक व्यक्ति, जो प्रबुद्ध होने की देहली पर पहुँचकर मर जाता है, वह अपने अगले जन्म में अनायास जीवन्मुक्त बन सकता है। उपनिषद् बताती हैं कि अपने पिछले कर्म के आधार पर, ऋषि वामदेव ने अपनी माँ के गर्भ में रहते हुए ही, सत्य का अपरोक्ष साक्षात्कार प्राप्त कर लिया।

शुक बिना पढ़ाए वेदों को जानते थे। फ़िर भी, वे उन्हें सीखने हेतु, एक शिष्य के रूप में बृहस्पति के पास गए। उन्होंने ऐसा इसलिए किया क्योंकि यह अनिवार्य है कि वेदों को एक गुरु से सीखा जाए। जो बच्चे नियमित रूप

से वैदिक मन्त्रोच्चार के प्रभाव में रहते हैं, वे विधिवत् सिखाए बिना, वैदिक मन्त्रों का पाठ करने की स्थिति में हो सकते हैं। हालाँकि, वे वैदिक मन्त्र पाठ से जुड़े नियम से मुक्त नहीं होते।

मार्गदर्शन के लिए महात्मा के पास जाते समय, किसी को विनम्रता और सम्मान के साथ जाना चाहिए। यद्यपि शुक के पास आकाश मार्ग से जनक की उपस्थिति में शीघ्रता से पहुँचने की शक्ति थी, तथापि उन्होंने व्यास के परामर्श के अनुसार, मिथिला तक एक कठिन पैदल यात्रा की और जनक से मिलने के अवसर के लिए धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा की।

सन्देह और मिथ्यावधारणाएँ व्यक्ति को अपने अपरोक्ष अनुभव से लाभान्वित होने से रोक सकते हैं। निम्नलिखित दो उदाहरण इस पर बल देते हैं।

एक बार एक व्यक्ति जब अपने घर का पुनर्गठन और शुद्धि कर रहा था, तब उसे अचानक एक थैली दिखाई दी। बरसों पहले उसे छिपाने वाले उसके पिता ही थे। हालाँकि, उसके पिता ने अपने बेटे को उसके बारे में सूचित करना चाहा था, परन्तु वास्तव में ऐसा करने से पहले वे गम्भीर रूप से रुग्ण हो गए थे और व्याधि से उबरे बिना ही उनकी मृत्यु हो गई थी। उस बेटे ने थैली खोला और उसमें उसे 50 आकर्षक हीरे मिले। वे उसे प्रभूत धनराशि दिला सकते थे। उससे वह समुचित रूप से आराम से जी सकता था।

हालाँकि, उसने सोचा, "मेरे पिता ने इनके बारे में मुझसे बात नहीं की। इसलिए, उनके हीरे होने की सम्भावना नहीं है। सम्भवतः, वे काँच के टुकड़े होंगे। अगर मैं उन्हें एक हीरे के व्यापारी के पास ले जाऊँ, तो वहाँ बहुमूल्य हीरों और काँच के मूल्यहीन टुकड़ों के बीच अन्तर करने में असमर्थ होने के कारण, वह सम्भवतः मेरा परिहास करेगा।" अपनी शङ्काओं और मिथ्यावधारणाओं के कारण, उसने थैली को वहीं रख दिया, जहाँ उसने इसे पाया था और वह अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सङ्घर्ष करता रहा।

एक लड़का अपने कमरे में बिजली का बल्ब चालू करना चाहता था और इसलिए उसने उसके स्विच की ओर अपना हाथ आगे बढ़ाया। जैसे ही उसने उसे छुआ, उसे एक बिजली का झटका (electric shock) लगा। जैसे ही उसने अपने हाथ को झटके से वापस लिया, उसने अपनी कोहनी को एक मेज़ पर किसी वस्तु से टकराया। वह लड़का — जिसे पहले कभी बिजली का झटका नहीं लगा था — उसने सोचा, "मेरे मित्रों ने मुझे बताया है कि कोहनी की नस पर चोट लगने पर उन्हें झुनझुनी सा अनुभव हुआ है और इसका कारण है उसके ऊपर से गुज़रने वाली तन्त्रिका पर दबाव। लगभग निश्चित रूप से, मेरी बाँह में तेज़ सनसनी मेरी कोहनी पर लगे आघात के कारण हुई थी।" अपने प्रत्यक्ष अनुभव को पहचानने में असफल होने पर, उसने फ़िर से स्विच को छुआ। इस बार, परिणाम प्राणघातक रहा।

न केवल सांसारिक, किन्तु धार्मिक और आध्यात्मिक, विषयों में भी सन्देह और मिथ्याबोध बहुत हानि पहुँचा सकते हैं। भगवान कृष्ण ने भगवद्गीता में अर्जुन से कहा, "जिसे सन्देह है, उसके लिए न तो इहलोक है, न परलोक और न ही सुख।" मृत्यु के बाद जीवन के अस्तित्व के बारे में सन्देह से घिरा व्यक्ति, शास्त्रों की विधि-नियमों के अनुसार कर्म करने और सद्गति पाने के बारे में अनुत्साहित रहता है। चूँकि वह निश्चित रूप से नहीं जानता कि मृत्यु के बाद कोई जीवन नहीं है, इसलिए वह लौकिक जीवन में, बिना किसी हिचकिचाहट के, एक भौतिकवादी की भाँति जीवन का आनन्द भोगने में असमर्थ रहता है। इस प्रकार, उस सन्देह-ग्रस्त को दोहरा घाटा होता है।

शुक जी के जीवन से पता चलता है कि आत्मा के बारे में सन्देह और मिथ्याबोध, आध्यात्मिक सफलता को किस प्रकार रोक सकते हैं। यद्यपि शुक जी को अद्वैत सत्य का अनुभव था, फ़िर भी वे उसके बारे में दृढ़ विश्वास रखने में विफल रहे और, इसलिए, वे जीवन्मुक्त नहीं बन पाए। जब जनक महाराज ने उनकी अनिश्चितताओं और मिथ्याबोधों को दूर कर दिया, तब ही उन्होंने सर्वोच्च को प्राप्त किया।

आध्यात्मिक साधक के लिए वैराग्य, समभाव और मनोनिग्रह महत्त्वपूर्ण होते हैं। एक ब्रह्मचारी के लिए, जो शुद्ध-चित्त, विरक्त और संसार चक्र से मुक्ति के लिए उत्सुक है, विवाह न केवल अनिवार्य नहीं है, किन्तु सर्वथा निष्प्रयोजक भी है। ये शिक्षाएँ शुक जी के जीवन से प्राप्त की जा सकती हैं।

जीवन्मुक्त बनने के बाद भी एक व्यक्ति को अपने गुरु के प्रति पूज्य भाव से आचरण करना चाहिए। नारद जी ने शुक जी को विस्तृत आध्यात्मिक परामर्श दिया और इस प्रकार एक गुरु की भूमिका निभाई। इसलिए, सर्वश्रेष्ठ जीवन्मुक्त शुक जी ने नारद जी की पूजा की और अपने शरीर को त्यागने और विदेह-मुक्ति प्राप्त करने से पहले, देवर्षि से बिदा ली।

महान व्यक्ति के मन को भी आसक्ति अस्त-व्यस्त कर देती है। व्यास जी निस्सन्देह एक बहुत बड़े ऋषि और तत्त्वज्ञानी थे। फ़िर भी, शुक जी से अपने गहरे लगाव के कारण, जब शुक जी उन्हें सदैव के लिए छोड़कर चले गए, तब वे शोक में डूब गए। शुक जी वैराग्य के एक प्रतीक थे और उन्हें अपने शरीर सहित सब कुछ त्यागने में थोड़ी भी हिचकिचाहट नहीं हुई। सच्चा वैराग्य किसी व्यक्ति को कठोर नहीं बनाता। केवल अपने पिता की भावनाओं को ध्यान में रखने के कारण, विरक्त शुक जी ने प्रकृति के अभिमानी देवताओं से अनुरोध किया कि वे अपने पिता की पुकार पर उनकी ओर से प्रतिक्रिया दें।

परमपूज्य जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्री अभिनव विद्यातीर्थ महास्वामी जी (गुरुजी) एक असाधारण सन्त थे। उन्होंने 14 वर्ष की आयु पूरी करने से पहले ही संन्यास स्वीकार कर लिया था। वे 19 वर्ष की आयु पूरी करने पर कुछ ही दिनों में योग की सर्वोच्च अवस्था निर्विकल्प समाधि, परब्रह्म-साक्षात्कार और जीवन्मुक्ति (जीवित रहते हुए संसार बन्धन से मुक्ति) प्राप्त करके, परब्रह्म में प्रतिष्ठित रहे। वे एक सुप्रसिद्ध जीवन्मुक्त एवं तर्क तथा वेदान्त शास्त्रों में अद्वितीय विद्वान थे। श्रद्धेय श्री शृङ्गेरी शारदा पीठ के 35वें पीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य के रूप में 35 वर्षों तक विराजमान रहते हुए, उन्होंने उस पीठ को अपार महिमा पहुँचाई। अहैतुक करुणा का प्रतीक गुरुजी ने अनगिनत भक्तों को कईं प्रकारों में अपने अनुग्रह से उत्थान किया।

तत्क्षण स्वयं-प्रणीत कथाओं तथा वेद, रामायण, महाभारत, पुराण आदि अन्य कृतियों पर आधारित कहानियों के माध्यम से, अति जटिल आध्यात्मिक तत्त्वों को भी अपनी सहज क्षमता से, गुरुजी ने ऐसी चित्ताकर्षक शैली में अनायास प्रस्तुत किया कि लोग उन्हें आसानी से और समग्र रूप से समझ सकें। परमपूज्य जगद्गुरु श्री अभिनव विद्यातीर्थ महास्वामी जी के सार्वजनिक प्रवचनों से और उनके साथ निजी संवादों से सङ्कलित सौ से अधिक उनकी **शिक्षाप्रद नीतिकथाएँ** 98 शीर्षकों के अन्तर्गत इस ग्रन्थ में सम्मिलित हैं।

ISBN 978-81-957509-5-5

9 788195 750955

Centre for Brahmavidya

List of Publications — June 2022

ENGLISH

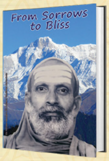

Title: From Sorrows to Bliss
Pages: 232 | Subsidised price: ₹100/-
Author: A Disciple
ISBN: 978-81-944382-4-3

This publication comprises the invaluable teachings of His Holiness Jagadguru Sri Abhinava Vidyatheertha Mahaswamiji, the 35th Jagadguru Shankaracharya of Sringeri Sri Sharada Peetham, presented in four parts, namely, Definitive Answers, Motivating Narratives, Scriptural Expositions and Incisive Essays.

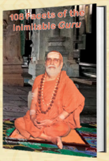

Title: 108 Facets of the Inimitable Guru
Pages: 302 | Subsidised price: ₹100/-
Authors: Dr. Meenakshi Lakshmanan & Dr. H. N. Shankar
ISBN: 978-81-950399-7-5

Elucidation of the Ashtottara-shata-namavali (108 sacred names) of His Holiness Jagadguru Sri Abhinava Vidyatheertha Mahaswamiji, the 35th Jagadguru Shankaracharya of Sringeri Sri Sharada Peetham, composed by His Holiness Jagadguru Sri Bharathi Theertha Mahaswamiji, the 36th Jagadguru Shankaracharya and the reigning Pontiff of the Peetham.

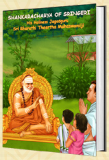

Title: Shankaracharya of Sringeri - His Holiness Jagadguru Sri Bharathi Theertha Mahaswamiji
Pages: 32 | Subsidised price: ₹50/-
Author: A Disciple
ISBN: 978-81-944382-8-1

A pictorial book portraying the life and teachings of His Holiness Jagadguru Sri Bharathi Theertha Mahaswamiji, the 36th Jagadguru Shankaracharya and the reigning Pontiff of Sringeri Sri Sharada Peetham.

HINDI

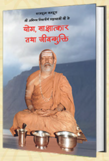

Title: Yog, Sakshatkar Tatha Jivanmukti
Pages: 247 | Subsidised price: ₹100/-
Translator: Vidwan Dr. Satheesha K. S.
ISBN: 978-81-950399-3-7

This is an invaluable wealth of information on the spiritual practices — Karma-yoga, Kundalini-yoga, Samadhi, deep contemplation on Brahman, etc. — of His Holiness Jagadguru Sri Abhinava Vidyatheertha Mahaswamiji, the 35th Jagadguru Shankaracharya of Sringeri Sri Sharada Peetham. It presents the spiritual journey of this great Yogi, an unmatched Advaita-Vedantin and a Jivanmukta par excellence.

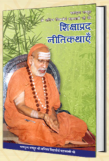

Title: Paramapujya Jagadguru Sri Abhinava Vidyatheertha Mahaswami ji ki Shikshaprad Neetikathaen
Pages: 276 | Subsidised price: ₹100/-
Translator: Sri Divyasanu Pandey
ISBN: 978-81-950399-2-0

His Holiness Sri Abhinava Vidyatheertha Mahaswamiji, the 35th Jagadguru Shankaracharya of Sringeri Sri Sharada Peetham was a rare sage who rendered even highly complex scriptural topics easily intelligible to even common folk through His narratives. This is a compilation of stories conceived by Him on the spot or based on the Vedas, Ramayana, Mahabharata, Puranas, etc.

Title: Dukhon Se Paramanand Tak
Pages: 336 | Subsidised price: ₹120/-
Translator: Hindi Martand Sri K. V. Srinivasa Murthy
ISBN: 978-81-950399-1-3

This publication comprises the invaluable teachings of His Holiness Jagadguru Sri Abhinava Vidyatheertha Mahaswamiji, the 35th Jagadguru Shankaracharya of Sringeri Sri Sharada Peetham, presented in four parts, namely, Definitive Answers, Motivating Narratives, Scriptural Expositions and Incisive Essays.

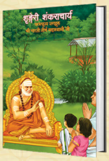

Title: Sringeri Shankaracharya - Paramapujya Jagadguru Sri Bharathi Theertha Mahaswami Ji
Pages: 32 | Subsidised price: ₹50/-
Author: Smt. Jayasree Venkateswaran
ISBN: 978-81-950399-6-8

A pictorial book portraying the life and teachings of His Holiness Jagadguru Sri Bharathi Theertha Mahaswamiji, the 36th Jagadguru Shankaracharya and the reigning Pontiff of Sringeri Sri Sharada Peetham.

Centre for Brahmavidya
SVK Towers, 8th Floor, A25, Industrial Estate, Guindy
Chennai 600032; INDIA
Email: contact@centreforbrahmavidya.org

To place orders:
www.centreforbrahmavidya.org

Contact (WA):
K. Venkataramanan: +91-7397487666
K. Parthasarathy: +91-7358388704

Centre for Brahmavidya

List of Publications — June 2022

❁ TAMIL ❁

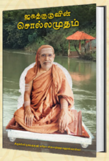

Title: **Jagadguruvin Sollamudam**
Pages: 192 | Subsidised price: ₹80/-
Author: A Disciple
ISBN: 978-81-944382-6-7

This publication comprises the invaluable teachings of His Holiness Jagadguru Sri Abhinava Vidyatheertha Mahaswamiji, the 35th Jagadguru Shankaracharya of Sringeri Sri Sharada Peetham, presented in three parts, comprising His Replies to the questions of His disciples, Scriptural Expositions and Essays.

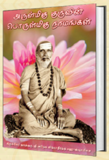

Title: **Arulmigu Guruvin Porulmigu-Naamangal**
Pages: 296 | Subsidised price: ₹100/-
Author: K. Suresh Chandar
ISBN: 978-81-944382-2-9

Elucidation of the Ashtottara-shata-namavali (108 sacred names) of His Holiness Jagadguru Sri Abhinava Vidyatheertha Mahaswamiji, the 35th Jagadguru Shankaracharya of Sringeri Sri Sharada Peetham, composed by His Holiness Jagadguru Sri Bharathi Theertha Mahaswamiji, the 36th Jagadguru Shankaracharya and the reigning Pontiff of the Peetham.

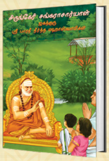

Title: **Sringeri Shankaracharyal - Jagadguru Sri Bharathi Theertha Mahaswamigal**
Pages: 32 | Subsidised price: ₹50/-
Author: Dr. R. Suganya
ISBN: 978-81-950399-4-4

A pictorial book portraying the life and teachings of His Holiness Jagadguru Sri Bharathi Theertha Mahaswamiji, the 36th Jagadguru Shankaracharya and the reigning Pontiff of Sringeri Sri Sharada Peetham.

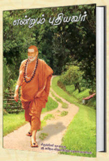

Title: **Endrum Puthiyavar**
Pages: 202 | Subsidised price: ₹80/-
Author: Dr. V. N. Muthukumar
ISBN: 978-81-944382-0-5

This book is a detailed, word-by-word exposition of a Sanskrit verse in veneration of His Holiness Jagadguru Sri Abhinava Vidyatheertha Mahaswamiji, the 35th Jagadguru Shankaracharya of Sringeri Sri Sharada Peetham, composed by His Holiness Jagadguru Sri Bharathi Theertha Mahaswamiji, the 36th Jagadguru Shankaracharya and the reigning Pontiff of the Peetham.

❁ KANNADA ❁

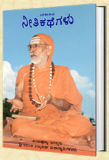

Title: **Tiliheluva Neetikathegalu**
Pages: 246 | Subsidised price: ₹100/-
Author: Dr. H. N. Shankar
ISBN: 978-81-944382-9-8

This book contains a compilation of parables narrated by His Holiness Jagadguru Sri Abhinava Vidyatheertha Mahaswamiji, the 35th Jagadguru Shankaracharya of Sringeri Sri Sharada Peetham. The sources of the parables are His benedictory addresses and private conversations.

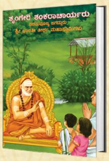

Title: **Sringeri Shankaracharyaru - Paramapujya Jagadguru Sri Bharathi Theertha Mahaswamigalu**
Pages: 32 | Subsidised price: ₹50/-
Author: Prof. R. Muralishankar
ISBN: 978-81-950399-5-1

A pictorial book portraying the life and teachings of His Holiness Jagadguru Sri Bharathi Theertha Mahaswamiji, the 36th Jagadguru Shankaracharya and the reigning Pontiff of Sringeri Sri Sharada Peetham.

Centre for Brahmavidya
SVK Towers, 8th Floor, A25, Industrial Estate, Guindy
Chennai 600032; INDIA
Email: contact@centreforbrahmavidya.org

To place orders:
www.centreforbrahmavidya.org

Contact (WA):
K. Venkataramanan: +91-7397487666
K. Parthasarathy: +91-7358388704